

कहानी का

विशिष्ट कथा साहित्य का संवाहक

सहस्राब्दी उपहार

भारतीय कथानुवाद
विशेषांक (दो)

१५ खण्डक
कहानियाँ

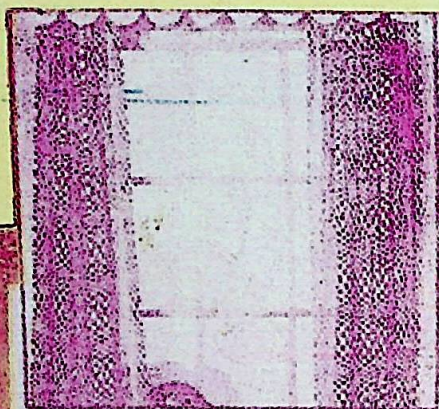
५०१

● छत्र अंशक ज्येष्ठ—तकपो शिवराजकर पिल्ले, एम. मुकुन्दन, सआदत हुसन मंटो, वाकाटि गौड़, रंगाराव, के. एम. सीतारामय्या, परेश नायक, जयकांतन, भूपेन महापात्र, समरेश वसु, नरसिंह देव मन्हास, जसवंत सिंह/विरदी तथा अन्य की सशक्त कहानियाँ।

● अन्य आकर्षण—मैरी रचना प्रक्रिया (नासिरा शर्मा) ● कुछ स्याह-कुछ सफेद मुलाकात ● राग-विराग ● समकालीन कहानी ● कहानी और कहानी ● गोष्ठी प्रसंग ● खबर (मि) ली है ● प्रगतिशील आंदोलन ● नयी किताबें ● कविता फलक ● अंदाजे बर्षा और ● आपने लिखा है ● परिहास पृष्ठ ● आकलन ● इतिहास के गवाक्ष से ● कविताएँ...



- ☆ पर्दे के कपड़े
- ☆ सोफा के कपड़े
- ☆ टेपेस्ट्री
- ☆ बेड कवर
- ☆ चादरें
- ☆ तौलिया
- ☆ पायदान
- ☆ कम्बल
- ☆ लोई
- ☆ शाल दुशाले
- ☆ जयपुरी रजाइयाँ



घनश्याम टैक्सटाइल्स

6,7, मेडिकल संघ भवन, लहुराबीर, वाराणसी

फोन-३५४७६६

9.1

उनके लिये,
जो करते हैं
क्वालिटि से प्यार

कुछ दिनों

श्रीमद्भगवद्गीता

साड़ीज गैलरी

नवीनतम डिजाइनों में उत्कृष्ट
साड़ियों का विशाल संग्रह

श्री सिल्क प्रिंट श्री बनारसी श्री साउथ सिल्क श्री साउथ
काटन श्री पोचमपल्ली श्री कांजीवरम् श्री राजकोट
श्री पटोला श्री पानेत्तर श्री घाटचोला श्री तांत सिल्क
श्री फैन्सी इक्स्क्लूसिव प्रिंट श्री इम्प्रॉयडरी आदि में
नूतन, अधुनातन, मनभावन चयन के लिए

रथयात्रा मार्केट, प्रथम तल

(बी.पी.एल. गैलरी के ऊपर)

वाराणसी-221010, फोन : 392112

सहयोगी प्रतिष्ठाता : बी.पी.एल. गैलरी

● विचार-पृष्ठ—

गरीबी दूर करने के लिए
 चरखे से बढ़कर
 और कोई उपाय नहीं है.
 आप चाहे हिंदू हों
 या मुसलमान,
 इसाई हों या पारसी,
 पूरब के रहनेवाले हों
 या पश्चिम के
 परंतु यदि भारत की जनता के साथ
 अपना भाईचारा मानते हैं
 जिसके साथ
 आपका भाग्य जुड़ा है,
 जिसके बीच आप पैदा हुए हैं,
 तो आप केवल हाथकती, हाथबुनी,
 खादी के (स्वदेशी) वस्त्रों का
 उपयोग कीजिए.



—महात्मा गांधी

श्री वृजपाल दास जी
 पावन स्मृति में
 श्री अरविन्द कुमार
 सुंदरविला
 मकबूल आलम रोड
 वाराणसी के सौजन्य से.



● विचार-पुच्छ—

भारत के किसानों को रोटी
 अपनी जमीन से
 मिल रही थी
 मैंने उनको चरखा दिया
 ताकि उन्हें
 थोड़ा मक्खन भी मिले
 कताई को
 सहायक धंधे के रूप में
 अपनाने से
 हजारों परिवारों को
 रोजी रोटी मिलती है
 कताई से आसान
 कम खर्च का
 सर्वोत्तम धंधा
 दूसरा कोई नहीं.

● —महात्मा गांधी

श्री श्रीप्रेम कुमार गुप्त की
 प्रावण स्मृति में

श्री अंबरीष कुमार गुप्त
 सेवा उपवन, लंका
 वाराणसी के
 सौजन्य से

फोन—३६६६०३, ३६६२४२

● विचार-पृष्ठ

शिक्षा को आजीविका का
साधन समझकर पढ़ना
नीच वृत्ति कहा जाता है
आजीविका का साधन तो
देह है
पाठशाला तो चरित्र गठन का
स्थान है
विद्यार्थी को
यह पहले से ही जान लेना जरूरी है कि
हमें
आजीविका को
अपने बाहुबल से ही
प्राप्त करना है

●

—महात्मा गांधी

श्री अमृत लाल 'इंदरत' की
पावन स्मृति से
श्री दीपक मधोक
भगवानपुर, लंका
वाराणसी के सौजन्य से
फोन—३१३२७६, ३१२७८५

● विचार-पुष्ट—

देश में करोड़ों लोग ऐसे हैं,
 जिन्हें दिन में एक ही बार खाकर
 संतोष करना पड़ता है.
 उस भोजन में भी
 सूखी रोटी और
 चुटकी भर नमक के सिवाय
 कुछ नहीं होता.
 इसलिए हमारे पास जो कुछ है,
 उस पर हमारा और आपका
 तब तक कोई अधिकार नहीं है,
 जब तक कि उन लोगों के पास
 पहनने के लिए कपड़ा
 और खाने के लिए अन्न नहीं हो जाता.
 हमें अपनी जरूरतों का
 नियमन करना चाहिए,
 जिससे उन गरीबों का
 पालन-पोषण हो सके
 और उन्हें कपड़ा और अन्न मिल सके.

● —महात्मा गांधी

श्री सी० पी० एन० केजरीवाल
 से० वाराणसी बाटलिंग प्रा० लि०
 सेंहड़ीगंज, राजाजालाब
 वाराणसी के सौजन्य से
 फोन-निवास : ३११७२३,
 ३१३०१६

● विचार-पृष्ठ—

हमारी तुरंत समस्या यह है कि
 हमें खाना और कपड़ा कैसे मिले
 सन् १९१८ में कपड़ा खरीदकर
 हमने साठ करोड़ रुपये
 देश से बाहर भेजे
 अगर इसी पैमाने पर
 विदेशी कपड़ा खरीदना चालू रहा तो
 बदले में कोई काम दिए बिना
 अपने बुनकर और कस्तिनों को हर वर्ष
 हम उतनी रकम से वंचित रखते हैं.
 लाखों गांवों में पहले कताई-बुनाई
 होती थी
 कातने बुननेवाले को जितना
 कपास चाहिए
 उतना कपास भी पैदा होता है
 फिर भी कपास बाहर भेजकर
 उस कपास से
 विदेशों में तैयार कपड़ा पहनते हैं
 यह हमारे दुर्भाग्य और
 अज्ञानता का परिणाम है.



—महात्मा गांधी

श्री श्रीगोपाल गोयल

श्री कृष्ण कला कुंज

२/११८ भदवैनी वाराणसी के

सौजन्य से

फोन-प्रतिष्ठान : ३११७१५

निवास : ३११८१५

● विचार-पृष्ठ

स्वर्ग
 और
 पृथ्वी
 सब
 हमारे भीतर है
 हम
 पृथ्वी से तो
 परिचित हैं
 पर
 अपने अंदर के
 स्वर्ग से
 अपरिचित
 हैं

—महात्मा गांधी

डा० सिद्धार्थ राय

अधिसासी निदेशक (विकास)

हेरिटेज हॉस्पिटल्स

हेरिटेज हॉस्पिटल्स लिमिटेड

लंका, वाराणसी के सौजन्य से

फोन-३६६७२६, ३६६७२८, ३६७९७७, ३६६६७८

फक्स : ९१-५४२-३६६९७९

● विचार-पृष्ठ—

सूरज हमेशा
 रोशनी और गर्मी
 देता
 है
 मगर
 जो सूरज से
 भागकर
 ठंड में ठिठुरें
 और
 अंधेरे में घुसें
 उनके लिए
 सूरज भी
 क्या करे ?

● —महात्मा गांधी

श्री अरविंद अग्रवाल
 प्रबंध निदेशक
 डायमंड हॉटल
 भेलूपुर, वाराणसी के
 सौजन्य से
 फोन-३१०६६६ (पांच लाइनें)
 केबल—डायमंड हॉटल

● विचार-पुल--

आपकी सारी विद्वतां,
आपका शेक्सपियर तथा वर्डस्वर्थ का
सारा अध्ययन बेकार हो जाएगा,
यदि आप साथ-साथ अपना चरित्र
निर्माण नहीं करते और अपने विचारों
तथा कार्यों पर पूर्ण नियंत्रण नहीं रखते.
मैं संयम न सीखूँ,
गुलामी छोड़ने का ककहरा न सीखूँ,
तब तक और सब बेकार है.
कानून और वैद्यक का ज्ञान न मिले तो
हिंदुस्तान रसातल में नहीं चला जावेगा.
मनुष्य किसी की बड़ी हुकूमत से दबकर
अपने शुद्ध उद्गार प्रकट न कर सके,
इसी का नाम गुलामी है.
इस गुलामी को मिटाना ही
राष्ट्रीय शिक्षा का पहला पाठ है.

—महात्मा गांधी

सर्वश्री राज मेहरा, विनीत मेहरा
विकास मेहरा. रघु मेहरा

● मे० सुजाता सारीज

सी. के. ३८/५३ दूसरी मंजिल, आसभैरव, वाराणसी
फ़ोन-प्रति० : ३३३३११, ३५३०२८
निवास : ३५०५९३, फैक्ट्री : ३७०४३३

● सुजाता एक्सपोर्ट्स

डी. १५/१८ बिग इंडस्ट्रियल इस्टेट, चांदपुर
वाराणसी. फ़ोन : ३७०४४८, ३७०४३३

● विचार-पूछ

मैं उच्च शिक्षा का दुश्मन नहीं हूँ,
 लेकिन जिस रूप में शिक्षा दी जा रही है
 उसका दुश्मन हूँ. आज पांच रुपये
 (१९२६) में उदर निर्वाह करनेवाला
 किसान, पचास रुपये में गुजर करनेवाले
 शिक्षित मनुष्य से अधिक काम करता है.
 उसकी मेहनत से देश में
 अन्न पैदा होता है, वस्त्र पैदा होता है,
 धन पैदा होता है,
 शिक्षित उसी का उपभोग करता है.
 पढ़े-लिखे युवक को अपना घर अच्छा
 नहीं लगता, गांव अच्छा नहीं लगता,
 अपने मां-बाप की आदतें अच्छी नहीं
 लगतीं. उसे खाने-पीने की अनेक
 वस्तुएं चाहिए, अनेक पोशाक चाहिए.
 इसलिए वेतन भी ज्यादा चाहिए.
 जिन संस्थाओं में हम पढ़ते हैं, उनमें
 कृत्रिम जीवन की आदत पड़ जाती है
 और हाथ पैरों से काम लेने में
 शर्म आने लगती है. यह कुदेव सुधारें.
 तब शिक्षा फलीभूत होगी.

—महात्मा गांधी

श्री मोहन लाल डिडवान्नी

श्री ओम प्रकाश बडलानी

मे० रिवाडिंग लीजिंग एंड फाइनेंसिंग लि०

२६ ए कस्तूरबा नगर. फोन-२२३६४१

डी. ५२/५५ सिद्धगिरी बाग

वाराणसी के सौजन्य से

फोन-कार्या० : ३५२४३३, ३५२६२३, ५३५२६७.

फैक्स : ०९९१५४२-३५२६१३

● विचार-पृष्ठ

बिना
आचार-विचार
के
कोरा
बौद्धिक ज्ञान
वैसा ही
है
जैसा कि
बदबूदार
मसाला
लगाया हुआ
मृतक

● —महात्मा गांधी

श्री उमाशंकर सिंह

मे० विश्वनाथ प्रकाशन

नवापुरा (बड़ा गणेश)

वाराणसी के

सौजन्य से

फोन कार्यालय : ३३१८८६

● विचार-पृष्ठ—

हमारी
सारी कठिनाइयाँ
अपनी
अकुशलता में हैं
कुशलता आई कि हमें
आज जो
कष्टकारक
प्रतीत होता है
वही
आनंद देनेवाला
मालूम होगा.
तंत्र सुव्यवस्थित और
सात्विक होगा तो
कभी कष्ट
मालूम न होना चाहिए

—महात्मा गांधी

श्री सांजीव अग्रवाल
जेवर कोठी
रामकटोरा क्रासिंग
वाराणसी के
सौजन्य से
फोन—प्रतिष्ठान : ३४३२३८
निवास : ३३२३४६

● विचार-पुष्प—

जो
अपने
जीवन की
आहुति
देता
है
वही
अमर जीवन
प्राप्त
करता
है



—महात्मा गांधी

श्री सुरेंद्र कुमार अग्रवाल
मे० इंटरनेशनल पब्लिसिटी सर्विस
कार्यस्थल-सी २७/२७६ दूसरी मंजिल
निर्मल कंप्लेक्स, मलदहिया
वाराणसी के सौजन्य से
फोन प्रति० : ५१११२५, ५१११२६
फैक्स : ६१-५४२-३३४४३६

● विचार पृष्ठ —

सूर्योदय में
जो नाटक है
जो सौंदर्य है
जो लीला है
वह और कहीं नहीं
मिल सकती
ईश्वर सरीखा
दूसरा सूत्रधार
नहीं मिल सकता
और आकाश से बढ़कर
भव्य रंगभूमि
दूसरी नहीं मिल सकती,

● —महात्मा गांधी

श्री केवल खन्ना
से० राजन सिंह क स्टोर
न्यू मार्केट, आसमौरव
वाराणसी के
सौजन्य से
फोन प्रलि०-३५३६६२, ३५३४३५

● विचार-पुछ—

✓
जैसा आहार वैसा ही आकार. जो मनुष्य अत्या-
चारी है, जो मनुष्य आहार में कोई विवेक या मर्यादा
नहीं रखता, वह अपने विकारों का गुलाम है. जो स्वाद
को नहीं जीत सकता, वह कभी भी जितेंद्रिय नहीं हो
सकता. इसलिए मनुष्य को युक्ताहारी और अल्पाहारी
बनना चाहिए. शरीर आहार के लिए नहीं है, आहार
शरीर के लिए है. शरीर अपने आपको पहचानने के लिए
हमें मिला है. अपने आपको पहचानना अर्थात् ईश्वर
को पहचानना. इस पहचान को जिसने अपना परम
विषय बनाया है, वह विकार के बश नहीं होगा.

—महात्मा गांधी

श्री राधे कृष्ण अग्रवाल

(काजू बाबू)

मे० नवनीत दास मुकुंद दास

लक्खी चौतरा, वाराणसी-२२१००१

फोन : ३२०१३४, ३६३६७४

सहयोगी प्रतिष्ठान—

- मदन मोहन दास एंड संस, लक्खी चौतरा
- मदन मोहन कला केंद्र, चौखंभा
- अग्रवाल ट्रेडिंग कंपनी, लक्खी चौतरा
वाराणसी के सौजन्य से.

● विचार पृष्ठ—

आदमी
फूल बनके
महके
और
सूरज बनके
चमके
प्रकृति
मूक भाषा में
प्रतिदिन
यही
संदेश
दे
रही
है



—अज्ञात

श्री नन्दलाल अग्रवाल

मे० भैरव प्रसाद एंड संस

गोलघर, वीराणसी के

सौजन्य से

फोन-३३३२८६, ३३२६६६



संपादक—

कुसुम चतुर्वेदी

डा० सुब्बा

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साहित्य शोध संस्थान की त्रैमासिकी

आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य शोध संस्थान की ओर से आलोचना और समीक्षा की शोध त्रैमासिकी 'मानदंड' का प्रकाशन राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त लेखकों की रचनाओं के साथ हो रहा है—अब तक के उल्लेखनीय प्रकाशित विशेषांकों में— ● आचार्य रामचंद्र शुक्ल विशेषांक ● भक्तिकाल की प्रासंगिकता और राष्ट्रीय नवजागरण ● उत्तर आधुनिकता विशेषांक ● कथालोचन विशेषांक ● दलित साहित्य विशेषांक ● भाषिक चेतना ● सदी के अंत में हिंदी आदि ● आगामी प्रस्तुति —स्त्री लेखन विशेषांक एवं डा. रामविलास शर्मा विशेषांक

एक प्रति रु. ४०/- वार्षिक मूल्य (चार अंकों का) रु० १६०/-

आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य शोध संस्थान, दुर्गाकुंड, वाराणसी

कहानीकार सदस्यता कूपन

व्यवस्थापक

दिनांक.....

के. ३०/३७ अरविंद कुटीर (निकट भैरवनाथ) वार गसी-२२१००१

महोदय

मैं साहित्यिक पत्रिका 'कहानीकार'का सदस्य बनना स्वीकार करता हूँ/ करती हूँ. इस हेतु मैंने ६ अंकों के लिए सदस्यता शुल्क ६०) धनादेश (एम०ओ०)द्वारा, जिसकी पौस्ट रसीद संख्या.....है दिनांक.....को भेज दिया है अथवा इस हेतु आप वर्तमान अंक को रु० ६०) की ह्ली० पी० पी० (वार्षिक सदस्यता शुल्क तथा डाक-व्यय सहित) मेरे नाम भेज दीजिए

नाम.....

पूरा स्पष्ट पता.....

हस्ताक्षर

- इस कूपन के द्वारा सदस्य बनने पर या रु० ४ का टिकट भेजने पर पत्रिका का एक पूर्व प्रकाशित अंक आपको अतिरिक्त (निःशुल्क) भेजा जाएगा.

स्टेनलेस स्टील

कैं आकर्षक

वर्तन

सम्पन्नता

आधुनिकता और

स्वच्छता की

पहचान हैं

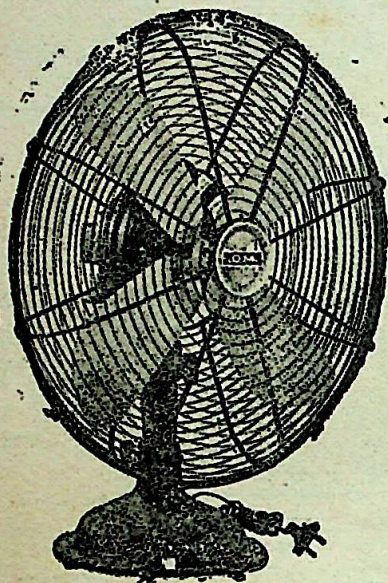


कम कीमत में
वसकतार भलबल
स्टेनलेस स्टील
के वर्तन

स्टेनलेस स्टील पैलेस

डी. ११/२५, कोतवालपुरा विश्वनाथ गल्ली, वाराणसी

फोन: प्रतिष्ठान-३२५७७४, निवास-३६५१६२



OSWAL
OSWAL
OSWAL

QUALITY IS TWO MUCH SUPERIOR

TABLE FAN, CEILING FAN, PUMP, JUICER, MIXER,
GRINDER & OTHER APPLIANCES ETC.

DISTRIBUTORS

Pandey
Electrical
Appliances

D 13/34 Bansphatak Varanasi

Phone : 329428 352389 352274

the right people.

BRIGHT

COLOUR LAB

Quality Monitoring Service

BY

Kodak

BRILLIANT COLOR PRINTS

LIFE-LIKE BLOW-UPS

Exclusive Color Slide Processing

BRIGHT

STUDIO

PORTTRAITS, In B&W and COLOR
TABLE TOPS.

INDUSTRIAL PHOTOGRAPHY.

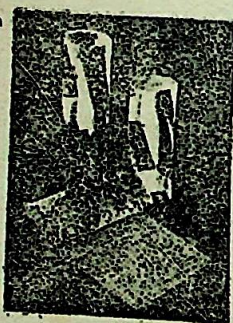
BRIGHT

& CO

Exclusive Show Room for the range of
Kodak, Fuji, Konika, Agfa Films.
Canon, Kodak, Konika, Minolta Cameras.

GODOWLIA, VARANASI- 392607
327113

When it comes to Bandages do not compromise on quality



Pick up the Best

**Anand —
For best healthcare**

For details contact



Anand Bandages P.Ltd.
Above Dena Bank, Motiwala Towers,
Post-Bhullanpur, P.A.C. Varanasi
Phone : 0542-373405

START

With

Any

Film

FINISH

With

Us



-
- **HEAD OFFICE :** D-47/179,
Luxa Road, Varanasi. Phone : 320789
 - **BRANCH :** Sankatmochan Road
Below Canara Bank, Varanasi
Phone : 315547.
-

सहस्राब्दी पर

नयी सदी

अनिश्चय-

बार-बार घेरता है

हर शपथ के बीच-

अश्वत्थामा उठ खड़ा होता है

चरम हर्ष और-

चरम विषाद के

स्पर्श बिंदु पर-

मृत्यु निश्चित है,

जीवन

कोतूहल से-

देखता है

ऊपर-

पुच्छल तारे-सी-

बीतती सदी को.

एक अंजुलि-

मंगलकामनाओं की

अभिशापों के काले कतान पर-

रूई-सी घिर आती है.

न जाने क्यों-

बार-बार हंसती है

मासूम लड़की

उसकी आंखें कहती हैं

कहीं नहीं जाएगी

यह सदी

बस लौटकर

मुड़ आएगी तुम्हारी ओर....

—डा० मुक्ती

भारतीय कथानुवाद

विशेषांक

कहानी का र



विशिष्ट कहानियों की

त्रिका

ई-अग. (संयुक्तांक) ९९

तत्-दिस. (संयुक्तांक) ९९

पं ३१ : पूर्णांक १४०

संपादक

डा० कमल गुप्त

□

सह संपादक

डा० कौशल्या गुप्त

डा० मुक्ता

□

वार्षिक : साठ रुपये

स्थानों के लिए नब्बे २०

देश में (एयरमेल) ३०० २०

(कुल छः अंकों के लिए)

प्राजीवन : ५०१ रुपये

□

कार्यालय—

के. ३०/३७ धरविंद कुटीर.

निकट धरवनाथ, वाराणसी

पिन : २२१००१

मोन: ३३३४००, ३३३५००

□ कहानीकार

तकषी शिवशंकर पिल्ले / बाढ़ में (मलयालम) १६

एम. मुकुंदन / विराजपेट्टा से आई औरत. (मलया०) २२

रानी लक्ष्मी कुमारी चुड़ावत / पिंड जाता पाणी रहे २८

सलाम बिन रजाक / उसका बचपन (उर्दू) ३४

समादत हुसन मंटो / मृत्री (उर्दू) ४०

वाकाटि पांडु रंगाराव / मानचित्र (तेलुगु) ४२

के. एम. सीतारामय्या / पैसे का विचार (कन्नड़) ५०

डा. विजय शास्त्री / दूसरा मो.क. गांधी (गुजराती) ५८

परेश नायक / अकुलाहट (गुजराती) ६२

जयकांतन / मीन एक भाषा (तमिल) ६८

भूपेन महापात्र / खोल (उड़िया) ८४

समरेश वसु / प्राण-पिपासा (बांग्ला) ८८

नरसिंह देव मग्हास- / नया ग्राहक (डोगरी) १००

डा. अ. कु. मुखोपाध्याय / पैरवी-भैरवी (बांग्ला) १०६

जसवंत सिंह धिरदी / पहली रात (पंजाबी) ११०

□ स्त्री रचना प्रक्रिया (४५)

नासिरा शर्मा / आत्मविश्लेषण १३२

□ स्थाई स्तंभ

डा. कमल गुप्त / कुछ स्याह : कुछ सफेद ११४

डा० मुक्ता / मुलाकात ११८

रवींद्रनाथ त्यागी / राग-विराग १२६

रुबी सरकार / कहानी और कहानी १५०

डा० शुक्रदेव सिंह / समकालीन कहानी १५८

मधुर / शास्त्री जी १६६

खबरदार / खबर (मि) ली है १७०

□ अस्थायी स्तंभ

प्रगतिशील आलोचना का पुनर्मूल्यांकन १३९

नयी किताबें / राजेंद्र उपाध्याय १४७

कविता फलक / एच. एल. शिव प्रकाश १६४

सहस्राब्दी पर शताब्दिक/डा. विश्वनाथ प्रसाद १७३

इतिहास के गवाक्ष से / पं. नाथूराम शंकर शर्मा १८८

गोष्ठी प्रसंग, परिहास, कविताएं, आपने लिखा है....

घोर बिजली संकट के कारण पत्रिका में हो रहे विलंब का हमें खेद है—सं०

मलयालम कहानी

बाढ़ में

तकषी शिवशंकर पिल्लै

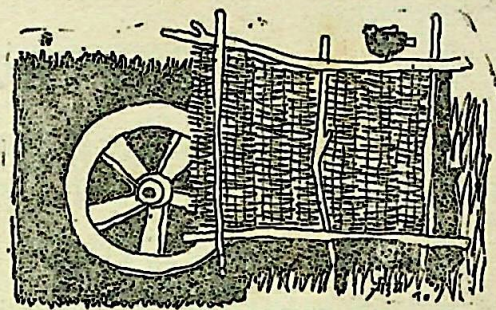
(अनु. बी. डी. कृष्णन नंपियार)

गाव के ऊँचे स्थान पर एक मंदिर है। वहाँ देवता गले तक पानी में डूबा खड़ा है। पानी, सब कहीं पानी-ही-पानी है। सभी गांववाले बसेरा ढूँढ़ने चले गए हैं। जिसके घर नाव है, उसके यहाँ घर की रखवाली के लिए एक आदमी रह गया है। मंदिर की तीन कमरोंवाली छत पर सड़सठ बच्चे थे। तीन-सौ-छप्पन लोग कुत्ता, बिल्ली, मुर्गा जैसे पालतू जानवर भी। सभी एकजुट होकर रह रहे थे। कोई झगड़ा नहीं था।

चेन्नन्* को पानी में खड़े एक रात और एक दिन हो गया। उसके नाव नहीं है। उसके यजमान को प्राण सहित किनारे पहुँचे तीन दिन हो गए। जब पानी क्षोपड़े के अंदर पहुँचने को हुआ तो टहनियों और लट्ठों से ताक और मचिया बना ली थी। यह सोचकर कि पानी जल्दी उतर जाएगा, वह दो दिन तक उसी पर बैठा रहा। अलावा इसके चार-पाँच केले के गुच्छे और फूस का अंवार भी तो था। वहाँ से चल दिया तो सारी चीजें कोई चालाक उड़ा ले जाएगा।

अब तो ताक और मचिया पर भी घुटनों पानी है। छप्पर छानेवाले नारियल के पत्तों

* हरिजन जाति का एक व्यक्ति



की दो पवित्रियाँ पानी के नीचे हैं।
अंदर से चेन्नन् चिल्लाया, पर
सुनेगा कौन ? पास है कौन ?

गर्भवतो पत्नी, चार बच्चे, एक बिल्ली और एक कुत्ता—इतने प्राणी उसी पर आश्रित हैं।
उसे निश्चय हो गया कि झोंपड़े के अंदर से पानी निकलने में तीस घंटे से कम नहीं
लगेँगे। अब तो अपना व परिवार का अंत आसन्न है। मुसलाधार वर्षा तीन दिनों से
लगातार हो रही है। झोंपड़े के ऊपर के नारियल-पत्ते हटाकर चेन्नन् किसी प्रकार
बाहर आया। चारों ओर देखा। उत्तर की तरफ बड़ी नाव जा रही थी। उसने जोर
लगाकर नाववालों को पुकारा। नाववाले सौभाग्य से, बात समझ गए। उन्होंने नाव
झोंपड़े की ओर मोड़ी। चेन्नन् अपने बच्चों, पत्नी, कुत्ते और बिल्ली को एक-एक
करके छप्पर से बाहर ले आया। तब तक नाव भी आ गई।

बच्चे नाव पर चढ़ने लगे। “चेन्नन् भाई, सुनो जरा !” पश्चिम की ओर से कोई
बुला रहा था। चेन्नन् ने मुड़कर देखा। “इधर आओ !” वह कुंजप्पन था। अपनी
मचिया पर से बुला रहा था। चेन्नन् ने पत्नी का हाथ पकड़कर उसे नाव पर बिठाया।
उसी ताक में बिल्ली भी नाव पर चढ़ गई। किसी को कुत्ता याद नहीं आया। वह
झोंपड़े के पश्चिमी ओर इधर-उधर कुछ सूँघता फिर रहा था।

नाव चल दी।

कुत्ता छप्पर पर लौट आया। तब तक चेन्नन् की नाव दूर पहुँच गई थी। वह मानों
उड़ रहा था। कुत्ता मर्मांतक पीड़ा से किकियाने लगा। बेसहारे मनुष्य की-सी आवाज
उसने दी पर कौन था उसे सुनने को ? झोंपड़े के चारों ओर फिरा। कहीं-कहीं सूँघा
और फिर किकियाया।

एक मेढक आराम से मचिया पर आ बैठा था। यह अप्रत्याशित शोरगुल सुन वह
डर गया और कुत्ते के सामने से पानी में कूद पड़ा, घुटीम्- कुत्ता डरकर कांपने
लगा और पीछे उचककर पानी को देखता रहा, पानी हिल रहा था।

शायद खाना खोज रहा होगा, कुत्ता इधर-उधर सूँघने लगा। कोई मेढक उसकी
नाक में पेशाब करके पानी में कूद गया। कुत्ते को बेचैनी में छींकें आने लगीं। वह
सिर हिला-हिलाकर छींका। फिर आगे के पैर से मुख पोंछ लिया।

मूसलाधार वर्षा फिर शुरू हो गई. कुत्ता उकड़ू बनकर सहता रहा. उसका मालिक अंपलपुषा पहुंच चुका था.

रात हो गई. एक भयंकर घड़ियाल पानी में अनडूबी श्लोपड़ी को छूते हुए धीरे-से बह गया. कुत्ता भय से पूंछ हिलाते हुए भौंका. घड़ियाल बह गया मानों कुछ नहीं जानता हो.

मचिया पर उकड़ू बैठा कुत्ता भूख से पीड़ित हो, काले बादलों और अंधेरे से युक्त वातावरण को देख किकिया उठा. उसकी दीनता भरों रलाई दूर तक सुनाई दे रही थी. सहानुभूति से पवनदेव उसे लेकर आगे बढ़े. घर की रखवाली करनेवाले कुछ हृदयालुओं ने कहा होगा—हाय ! छत पर बैठा कुत्ता किकिया रहा है. समुंदर के किनारे उसका मालिक उसी रात का खाना खा रहा होगा. खाना खत्म करके उसने अपने कुत्ते के लिए आज भी मुट्ठी-भर भात अलग रख छोड़ा होगा.

कुत्ता कुछ देर तक लगातार ऊंचे स्वर में किकियाता रहा. फिर आवाज मंद होकर बंद हो गई. उत्तर की दिशा में कोई अपने घर बैठे रामायण बांच रहा था. कुत्ते ने उस तरफ देखा, मानो उसे वह सुन रहा हो. वह गला फाड़कर दूसरी बार भी थोड़ी देर तक किकियाया.

निस्तब्ध निशीथिनी के मधुर स्वर में रामायण-पाठ एक बार और सुनाई पड़ा. कुत्ता कान लगाकर देर तक उसे सुनता रहा. शीतल पवन में वह शांत मधुर गान घुल-मिल गया. हवा के झोंके और लहरों की आवाज को छोड़ और कुछ सुनाई नहीं पड़ा.

मचिया के सबसे ऊपर चेलन का कुत्ता लैट गया और लंबी सांसें लेने लगा. बीच-बीच में निराश होकर किकियाता भी रहा. तभी मेढक ने छलांग लगाई. कुत्ता फिर बेचैन हो उठा.

सवेरा हो गया. कुत्ता धीमी आवाज में फिर किकियाने लगा. उसने हृदयविदारक राग छोड़ा. मेढकों ने उसे घूरकर देखा. पानी की सतह पर उछलते-कूदते मेढकों को वह एकटक देखता रहा.

पानी के ऊपर दीखते श्लोपड़े के पत्तों को उसने आशा से देखा. सब ओर विजन ! कहीं पर चूल्हा भी नहीं जल रहा था. कुत्ता उन मक्खियों पर लपक रहा था जो उसके शरीर को खुशी से काट रही थीं. पिछले पैरों से चिबुक को बार-बार खुजलाकर वह मक्खियों को भगाने लगा.

थोड़ी देर के लिए सूरज निकला. सवेरे की धूप में वह थोड़ा सोया भी. उस के



के पत्ते की छाया मचिया पर पड़ रही थी, जो मंद पवन में हिल-डुल रहा था। कुत्ता उस पर भी लपक उठा। वह एक बार फिर भौंका।

बादलों से सूरज छिप गया। सब कहीं अंधेरा। हवा ने पानी को तरंगित कर दिया। पानी की सतह से जानवरों की लाशें बह रही थीं। लहरों में पड़कर उनका प्रवाह और तेज हो गया था। वे जहां कहीं स्वच्छंद बहती जा रही थीं। कुत्ते ने चाब से उन सबको देखा और फिर किकियाते लगा।

दूर कहीं कोई छोटी नाव तेजी से जा रही थी। वह उठकर दुम हिलाने लगा। उस नाव की गति वह देखने लगा, पर वह जल्दी ही छिप गई।

पानी बरसने लगा। कुत्ते ने उकड़ू बैठकर चारों ओर देखा। उन आंखों में किसी को भी ढलानेवाली निस्सहाय स्थिति प्रतिफलित हो रही थी।

पानी बंद हो गया। उत्तर के घर से एक छोटी नाव आई और एक नारियल के ङ के पास रुक गई। कुत्ता दुम हिलाते और जम्हाई लेते हुए किकियाया। नाववाला नारियल के पेड़ पर चढ़कर कच्चे नारियल तोड़ने के बाद नीचे उतरा। वह नाव पर ही नारियल का पानी पीकर डांड ले नाव खेने लगा।

दूर किसी पेड़ की डाली से एक कौआ उड़कर आया और उस सड़ीगली लाश पर उतरा, जो एक मोटे भैंसे की थी। चेन्नू का कुत्ता चाब से उसको देखकर भौंक उठा। कौआ भैंसे का मांस चिकोटने लगा था। फिर संतुष्ट होकर वह भी उड़ गया।

एक हरी चिड़िया क्षोपड़े के पास खड़े केले के पेड़ पर आ बैठी और चहकने लगी। कुत्ता बेचैन होकर फिर भौंका। वह चिड़िया भी उड़ गई।

पहाड़ों से बहे आ रहे पानी पर चींटियों का एक झुंड था, जो जाकर क्षोपड़े से घटक गया। फिर बच गया। खाने की चीज समझकर कुत्ता उसे सूंघने लगा। वह एक-दम छींक उठा। उसका मुलायम चेहरा लाल होकर थोड़ा-सा सूज गया।

दोपहर बाद एक छोटी नाव में दो आदमी उस तरफ आए। कुत्ता दुम हिलाकर उन्हें देख भौंकने लगा। वह अपनी भाषा में कुछ बोला, जो मनुष्य की भाषा-जैसी थी। पानी में उतरकर नाव पर चढ़ने को वह तैयार खड़ा था—

“देख, एक कुत्ता खड़ा है。” उनमें से एक ने कहा। कुत्ता एक बार फिर किकियाया, मानों वह उनकी सहानुभूति का आभार प्रकट कर रहा हो, “वहीं रहने दे,” दूसरे आदमी ने कहा।

कुत्ता मुंह बंद करके कुछ बोलने लगा, एक-दो बार उस ओर लपकने का प्रयास भी किया।

नाव दूर चली गई। कुत्ता और एक बार किकियाया, नाववालों में एक ने मुड़कर

देखा,

—हाय !

यह नाववाले की नहीं, कुत्ते की आवाज थी.

—हाय !

उसकी थकी-भांती और हृदयस्पर्शी दीन खलाई दूर हवा में विलीन हो गई. फिर लहरों का अनंत नाद. किसी ने फिर मुड़कर नहीं देखा. कुत्ता उसी तरह, नाव के गायब हो जाने तक खड़ा रहा. वह भीकता हुआ मचिया पर चढ़ गया मानो कह रहा था कि अब दुनिया से अंतिम विदा ले रहा है; शायद कह रहा हो. कि वह आगे कभी किसी मनुष्य को प्यार नहीं करेगा.

उसने थोड़ा पानी पिया, फिर ऊपर उड़नेवाली चिड़ियों को देखा. लहरों में बहता हुआ एक सांप उसके पास आया. कुत्ता झट से मचिया पर जा पहुंचा. चेन्नू और परिवार जिस सेंध से बाहर निकले थे, उसी से सांप अंदर रेंग गया. कुत्ते ने सेंध की ओर झांका. वह फिर भीकने लगा. फिर किकियागा. उसमें प्राणों का डर और भूख दोनों मिल गए थे. वह भाषा कोई भी भाषा-भाषी, यहां तक कि ग्रहवासी भी समझ सकता था. इतनी संवेदनशील थी उसकी भाषा.

रात हो गई. भयंकर तूफान आया, वर्षा हुई, छप्पर पानी के थपेड़ों से हिल-डुल रहा था. दो बार कुत्ता ऊपर से नीचे गिरने को हुआ, एक लंबा सिर पानी के ऊपर उठा. वह एक मगर था, कुत्ता प्राण-पीड़ा से भीकने लगा; पास ही कहीं मुंगियों की एक साथ रोने की आवाज सुनाई दी.

“कुत्ता कहां से भीक रहा है ? यहां से लोग गए नहीं क्या ?” केले के पेड़ के पास एक नाव आई जो फूस, नारियल और केलों से भरी हुई थी.

कुत्ता नाववालों की ओर मुड़कर भीकने लगा. वह क्रुद्ध होकर, पूंछ उठाए, पानी के पास गया और फिर भीका. नाववालों में से एक केले के पेड़ पर चढ़ गया,

“भाई, लगता है कि कुत्ता लपकेगा.”

कुत्ता आगे की ओर लपका भी. केले पर से वह आदमी गिर पड़ा. दूसरे ने उसे हाथ देकर नाव पर चढ़ाया. इतने में कुत्ता तैरकर मचिया पर जा पहुंचा और शरीर झटकारते हुए क्रुद्ध होकर भीकने लगा.

चोरों ने केले के गुच्छे काट लिए. “तुझे मिल जाएगा.” गला फाड़ भीक रहे कुत्ते से उन्होंने कहा. फिर उन्होंने फूस नाव में डाला. अंत में एक आदमी मचिया के ऊपर चढ़ा तो कुत्ते ने उसका पैर काट लिया. कुत्ते के मुंह में मांस भर गया.



“हाय !” वह आदमी रोते हुए कूदकर नाव पर जा चढ़ा।

नाव में खड़े आदमी ने डांड लेकर कुत्ते के पेट पर दे मारा।

“कैं—कैं—कैं !” कुत्ते की आवाज मंद पड़ गई। जिसे कुत्ते ने काटा था, वह नाव पर रो रहा था।

“अरे ! चुप रह, कोई....” दूसरे ने उसे ढाढ़स बंधाया। वे आगे बढ़ गए। बहुत देर बाद कुत्ते ने उस ओर देखा और भौंका, जहां से नाव चली गई थी।

आधी रात के करीब का समय। एक मोटी गाय की लाश बहती हुई झोंपड़े से आ लगी। कुत्ता उसे ऊपर से देख रहा था। वह नीचे नहीं उतरा। लाश धीरे-धीरे बहने लगी। कुत्ता किकियाया। नारियल के पत्ते को छीला। दुम हिलाई, अलग हट रही गाय की लाश के पास गया और दातों से उसे पास खींचकर खाने लगा। भयंकर भूख मिटाने को उसे काफी भोजन मिल गया था।

‘ठै’ एक प्रहार ! कुत्ता दिखाई नहीं पड़ा। गाय की लाश थोड़ी डूबकर बह गई।

तब से सिर्फ तूफान की गर्जन, मेंढक की टरं और लहरों की आवाज ही सुनाई दे रही थी। और कुछ नहीं। सब ओर सन्नाटा ! घर की रखवाली करनेवाले लोगों ने फिर कुत्ते की दारुण रुलाई नहीं सुनी। सड़ी-गली लाशें जल की सतह पर इधर-उधर बह रही थीं। किसी पर बैठे कीआ मांस नोच-नोचकर आराम से खा रहा था। कोई बाघा रुकावट नहीं। चोरों को भी अपने काम में व्यवधान नहीं पड़ा, सभी ओर एकांत !

थोड़ी देर बाद वह झोंपड़ा गिर पड़ा और पानी में डूब गया। उस अनंत जलराशि पर कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। अपने मालिक के घर की रखवाली उस वफादार कुत्ते ने आखिरी दम तक की। वह चला गया। पर झोंपड़ा तब तक पानी की सतह पर खड़ा रहा, जब तक उस कुत्ते को मगर नहीं पकड़कर ले गया। अब वह झुककर पानी में पूर्णतः डूब चुका था।

पानी उतरने लगा। चेन्नन् कुत्ते की खोज करता हुआ वहां आया। किसी नारियल के पेड़ के नीचे कुत्ते की लाश पड़ी हुई थी। लहरें उसे धीरे-से चला रही थीं। पैर के अंगूठे से चेन्नन् ने उसे हिलाया, उसे उलटकर देखा। उसे निश्चित नहीं हो सका कि यह उसी का कुत्ता है। उसका एक कान कट गया था। खाल सड़ जाने से रंग का भी पता नहीं चल रहा था ■

विराजपेट्टा से

आई

औरत



एम. मुकुन्दन

एपुत्तच्छन् अस्सी वर्ष की उम्र में मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए थे। उनकी आखिरी इच्छा थी—सति नंपियार का हाथ एक बार पकड़ना,

यह सति नंपियार है कौन ?

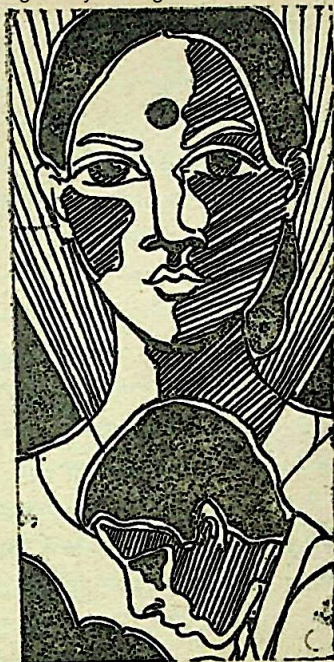
पी० के० नंपियार की धर्म-पत्नी,

तब पी० के० नंपियार कौन है ?

हमारे प्रदेश का सबसे बड़ा धनवान और ठेकेदार,

इस कहानी के समय सति नंपियार की शादी हुए छः वर्ष पूरे हो चुके थे, पाँच और तीन साल की दो संतानों की मां बन चुकी थी

एपुत्तच्छन् की अजीब इच्छा सुनकर उनके सगे-संबंधियों ने आपस में एक-दूसरे को देखा। वे तो उनकी पुरानी झोंपड़ी और दीमक लगी बहलीज पर खड़े थे। उनके



आंगन में खड़े पड़ोसी आपस में कुछ फुसफुसाए,
वे क्या कानाफूसी कर रहे थे ?

“सभी मर्द ऐसे ही होते हैं, मरते दम भी
दूसरे की औरत का विचार है।”

पड़ोस के नारायण मास्टर की बीवी फुस-
फुसाई, “मरनेवालों पर इल्जाम नहीं लगाना,
श्री देवीजी,” मैंने, जो कि एषुत्तच्छन् के प्रदेश
का रहनेवाला और प्रशंसक था, कहा, “सब गलतियों और कर्मियों को भुलाने का यह
अवसर है, आज एषुत्तच्छन् और कल हम.....”

वैसे एषुत्तच्छन् थे बड़े दयालु और भक्त. एक जमाने में सारा मुहल्ला खरीदने
की संपत्ति थी उनके पास. सब कुछ दान दे दिया. दान दे-दिलाकर घर बरबाद कर
दिया. बेटे कहीं न कहीं चले गए. आखिर में बचा यह छोटा-सा झोंपड़ीनुमा घर, जहां
दिन को भी सूरज की किरणें नहीं पहुंचती थीं, और एक बेटी. बेटी भी एक रोज
उन्हें छोड़कर अपनी राह चली जाएगी. मैं जानता था कि उसकी आंखें एषुत्तच्छन् के
बचे कुछ पैसों पर लगी हुई थीं.

एषुत्तच्छन् की बेटी का क्या नाम है ?

सुजाता सुदर्शन.

क्या मिस्टर सुदर्शन एषुत्तच्छन् के आखिरी वक्त उनकी सेवा-सुध्रूपा करने आ
गया था ?

हां, आ गया है.

कमरे में रोशनी कम थी. मैंने मृत्यु-शय्या के पास खड़े होकर, अगरबत्ती की
सुगंधित और सफेद धुएंवाली सांस लेते हुए उनके चेहरे की ओर देखा. वह थके-मांड़े
ये बच्चे की तरह लेटे थे, बिना हिले-डुले. मुझे तब बड़ा दुःख हुआ था, जब मुझे

मालूम हुआ कि वह धीरे-धीरे मर रहे थे. एषुत्तच्छन् बड़े दानी थे. धन-दीलत खूब दे चुके थे पर उन्होंने मुझे कुछ नहीं दिया था, वैसे वह दें भी क्यों? उन्होंने अपने खर्च से घोड़ी के बेटे कज्जन को ए० ए० एस० बनाया था, मुत्तप्पन् के मंदिर की घमंशाला उन्होंने ने बनवाई थी. वर्षा के मौसम में गरीबों को सिर छुपाने की सुविधा ऐसे मिली.

सब लोग मारे डर के उन्हीं को देख रहे थे. तब एषुत्तच्छन् ने धीरे-से आंखें खोली. उन सफेद आंखों में मोह की सफेदी खिली. वह कुछ बुदबुदाए.

“क्या है बाबूजी?” बेटा ने उनकी तरफ मुख किया.

“सति आ गई?” एषुत्तच्छन् ने पूछा, सुनकर बेटा, पिताजी की ओर देखे बिना सिसक उठी. सुदर्शन की आंखों से चिनगारियां निकलीं. फिर सब कहीं मौन छा गया. बाहर घूप ढल रही थी.

“तो क्या होगा, जल्दी तय कर लें,” नारायण मास्टर ने एषुत्तच्छन् के पैर छूकर देखा. एकदम ठंडा है. सुदर्शन ने मास्टर की बात मानो अनसुनी कर दी. क्रोध और लज्जा के मारे उसके कान लाल हो गए, अब कैसे बाहर जाऊं? लोगों का मुख कैसे देखूं? इससे ज्यादा बेइज्जती क्या होगी? उसे लगा मानो किसी ने उसका मान भंग किया हो.

“तय करने की कोई बात नहीं....” सब लोगों ने मेरी ओर देखा,

“इस आदमी ने देश और देशवासियों के लिए क्या नहीं किया? फिर मरते दम कोई छोटी-सी तमन्ना हुई तो हम चुप क्यों हो जाएं? वाह रे!”

“तू जो कहता है, वह ठीक है, अनंत! पर नंपियार की बीबी मानेगी क्या? कौन जाकर नंपियार से बात करेगा? किसमें इतना साहस है?” नारायण मास्टर ने बारो-बारी से सबको देखा, सब ऐसे खड़े रहे मानो कुछ सुना ही न हो. किसी ने शर्ट के अंदर से अपनी छाती को टटोला और कहा, “हाय, कैसी गर्मी है!”

“क्यों, कोई कुछ बोलता क्यों नहीं?” नारायण मास्टर ने पूछा. किसी ने कुछ कहा नहीं. सभी ने आसमान में काले बादलों को ढूँढ़ा, “वर्षा का कुछ लक्षण तक नहीं.” उन लोगों ने कहा.

मैं एषुत्तच्छन् के पास खड़ा था. मुझे लगा कि अपनी सांस बंद हो रही है. आंख की पुतलियां कभी-कभी ऊपर उठतीं, मैंने अपने इष्टदेव को याद किया.

“तू कहां जा रहा है, अनंत?” नारायण मास्टर दहजीज पर रखा अपना टायर का चप्पल पहनकर मेरे पीछे आए.

ठेंकेदार होने पर भी पी० के० नंपियार बी० ए० पास थे, अंग्रेजी अखबार मंगाने



वाले हमारे इलाके के अपूर्व व्यक्तियों में से थे वह. बात कह दें तो वह समझेंगे. और एपुत्ताच्छन् की अंतिम इच्छा कितनी मामूली था. मात्र सात नंभियार का हाथ छूना चाहा था उन्होंने, चाहते तो एपुत्ताच्छन् इससे बड़ी कोई चीज मांग सकते थे.

आत्मविश्वास के साथ मैं पी० के० नंभियार के बंगले की ओर गया. तब तक पीली धूप ढलने लगी थी.

पगडंडी से तारकोल की बनी सड़क पर आया तो पीछे हांफने की आवाज सुनकर मैंने मुड़कर देखा, नारायण मास्टर मेरे साथ आ रहे थे.

“तू अकेला मत जा अनंत, उसने कुछ कर दिया तो, तेरे भी बीबी-बच्चे हैं.”

अस्सनार की दुकान के सामने आया तो एक बीड़ी फूंकने को जी चाहा, पर एपुत्ताच्छन् का ख्याल मुझे आगे ले गया. तीन नंबर की शराब की दुकान के सामने पहुंचा तो अंदर जाने को जी ललचा. तब एपुत्ताच्छन्, जो कि मर रहे थे, के विचार ने मुझे जाने नहीं दिया. मैं धोती ठीक से पहनकर जल्दी चला. मौके के अनुसार ऐसा जल्दी चलने की शक्ति मेरे पैरों में थी, जिसके लिए मैंने मुत्ताप्पन को शुक्रिया अदा किया.

आगे थोड़ी दूर पर पेड़-पौधों के बीच क्या दीख रहा है ?

नंभियार जी का बंगला !

इतना सुंदर बंगला हमारे इलाके में नहीं था. उसको बनाते वक्त लोगों ने सड़क पर से आश्चर्य से उसे देखा था. मवेशी-मेले के दिन पूरब से आनेवाले गंवार लोग मवेशी बेचने-खरीदने के बाद लौटते हुए यह बंगला देखा करते थे वे. मवेशियों की रस्सी हाथ में लिए सांझ तक वहां मुंह खोले खड़े रहा करते थे.

नारायण मास्टर थोड़ी दूर पर खड़े होकर अपना चश्मा उतारकर हाथ में पकड़ा. वह हांफ रहे थे, उन्हें पसीना आ रहा था.

“तू बंगले की ओर जा, मैं इस पेड़ के नीचे खड़ा होकर थोड़ी हवा खाता हूं.

“हाय ! कैसी गर्मी है....”

मास्टर आसमान में वर्षा के बादल ढूँढ़ने में लग गए. कुछ हल्के से बादल आस-के नीचे से लड़ते चले आ रहे थे.

“कौन है वह ?” खाकी शर्ट और ट्राउजर पहने एक आदमी गेट के पास आया. चपरासी या माली होगा. उसने पूछा—

“क्या चाहिए तुझे ?”

“मालिक से मिलना है”

“अब मिल नहीं पाएगा.”

मेरी फटी शर्ट और छोटी देखकर ही वह ऐसे गर्व से बोल रहा होगा. खैर..... उससे गप्पें लड़ाने को मेरे पास समय नहीं था. दयावान एषुत्तच्छन् मर रहे थे. खाकी शर्टवाले की अनुमति का इंतजार किए बिना आगे बढ़ा. उसने मुझे रोकने की कोशिश की. उसका फल उसने भोगा भी.

“चोर, चोर आया है,” नीचे से उठने की कोशिश करते हुए वह जोर चिल्लाया.

नंपियार जी ने, जो कि एक पैर पर दूसरा पैर रखे अंग्रेजी अखबार पढ़ रहे थे मेरी तरफ देखा तो मैंने सिर झुकाकर उनको नमस्ते किया. वह पढ़े-लिखे जानकार आदमी है, इसलिए जानते होंगे कि चोर ऐसे नमस्ते नहीं करते. शायद इसलिये नंपियार जी के चेहरे पर जरा भी घबराहट दिखाई नहीं दी.

चौड़ी-काली धारियोंवाली छोटी और जुराब पहने थे नंपियार जी. उसके गले सोने की माला ढलती धूप में चमक रही थी.

“तुम कहां से आए हो ? क्या चाहते हो ?” वह कुर्सी पर हिलकर बैठे. उन्होंने मुझसे बरामदे में चढ़ने या बैठने को नहीं कहा. उसकी मुझे शिकायत भी नहीं. अनंत और पी० के० नंपियार में क्या समानता है ? वह कितने बड़े आदमी हैं ! हज़ार अनंतों से ज्यादा मूल्य है उस एक व्यक्ति का.

कैसे शुरू करूं ? कहां से शुरू करूं ? मैं हिचककर खड़ा रहा.

फिर मैंने भरे मन से मुत्तप्पन का स्मरण करके एक ही सांस में सब बता दिया नंपियार जी ने सब कुछ ध्यान से सुना. उनके चेहरे पर कोई भाव नहीं था.

“सारी मिस्टर.” उन्होंने कहा, “एषुत्तच्छन् से कहना कि इतनी बड़ी आकांक्षा मन में लिए चलना आपत्तिजनक होगा ? तुम जा सकते हो.”

नंपियार जी ने अखबार पढ़ना जारी रखा.

“मरने के पहले यह छोटी-सी तमन्ना पूरी न हो तो उसकी आत्मा को शांति नहीं मिलेगी जी.”

“आत्मा जैसी कोई चीज है ही नहीं. विज्ञान ने यह साबित किया है. इसलिए मोक्ष का सवाल ही नहीं उठता. तुम जाओगे कि तुम्हें मुझे यहां से निकालना होगा.....”

“सर.....” मैंने झुककर उनके मोटे और सुखं पैरों को छुआ—“भगवान् विचार करके...”

“भगवान् भी नहीं है. विज्ञान ने यह भी साबित किया है....” वह जोर से हँसे उनके सोने के दांत ढलती धूप में चमक रहे थे.



मैं थोड़ी देर और वहाँ खड़ा रहा, इस आशा से कि शायद उनका मन बदले। उससे कोई फायदा नहीं हुआ। वह मेरी परवाह तक किए बिना अखबार पढ़ते रहे। अब आगे वहाँ खड़ा रहना बेकार था, यह समझकर मैं वहाँ से चल आया।

“अब हम क्या करेंगे?” नारायण मास्टर, जो कि पेड़ की छाया में हवा खा रहे थे, मेरे साथ चले।

“आप चलिएगा। एपुत्ताच्छन् से कहना कि अभी नहीं मरना। कहना कि आध घंटे तक मैं उनकी इच्छा पूरी कर दूँगा....”

“अनंत, तू कहां जा रहा है?”

“मल्लिका के पास....”

“क्या?” उनके चेहरे से लगा कि शायद आसमान टूट गया है। वह वैसे ही मुंह खोले खड़े रहे कि मैं मल्लिका के घर की ओर गया। सब जानते हैं कि वह कौन है! अगर ऐसा कोई हो जो यह नहीं जानता, तो ऐसे सज्जनों के लिए बता देता हूँ— हमारे इलाके की एक वेश्या है मल्लिका। वह बिराजपेट्टा से आकर हमारे यहाँ बस गई है। वह कोंकणी, तमिल और मलयालम बोलती है। गहरे रंगों की साड़ियाँ पहनती है। सस्ता पा डडर लगाती है।

“एपुत्ताच्छन् जी....” मैंने खाट पर बैठे हुए उन्हें घुलाया।

“एपुत्ताच्छन् जी, देखिए सति नंपियार आ गई। आंखें खोलिए。” मुझे मालूम हो गया कि एपुत्ताच्छन् अब आंखें नहीं खोलेंगे। और खोलें भी, तो हमें पहचान नहीं पाएंगे।

मैंने झकझोर दिया। एपुत्ताच्छन् की देह बरफ की तरह ठंडी हो गई थी। सब लोग आंखें बंद किए। से खड़े थे कि एपुत्ताच्छन् की सूखी सिकुड़ी पलकें थोड़ी-सी हिलीं।

“एपुत्ताच्छन्, सति....सति आई है。”

मैंने मल्लिका का हाथ उठाकर एपुत्ताच्छन् की छाती पर, जो कि खाली घोंसला बन गई थी, रखा। यद्यपि उनकी आंखें नहीं खुलीं फिर भी उनका दायां हाथ थोड़ा-सा हिला। सूखी उंगलियाँ हिलीं। उनका कांपता दायां हाथ जाकर उसे छू गया। उनके चेहरे पर, जहां मृत्यु उतर रही थी, एक विदुर सूर्योदय की प्रतिच्छाया पड़ी।

मैंने जो किया, वह ठीक था कि गलत? कितने सालों से यह सवाल मैं अपने से पूछ रहा हूँ। एपुत्ताच्छन् को मरे पूरे बारह साल बीत चुके। मैं उस घटना का स्मरण करता हूँ जो हाल ही में घटी। ठेकेदार पी० के० नंपियार के सिर से खून निकला। मशहूर डाक्टरों के भगोरथ प्रयत्नों से भले ही उनकी जान बची हो पर उनके दोनों हाथ हमेशा के लिए सुन्न हो गए। सिर से खून निकले, तो हाथ सुन्न कैसे हो जाएंगे? वैद्यक संबंधी विषयों में मैं एकदम अनभिज्ञ हूँ। फिर भी जब मालूम हुआ कि नंपियार जी के हाथ सुन्न हो गए हैं तब आज—लंबे छब्बीस वर्षों बाद, एपुत्ताच्छन् की अंतिम घड़ियां याद आ गईं। ■

राजस्थानी कहानी

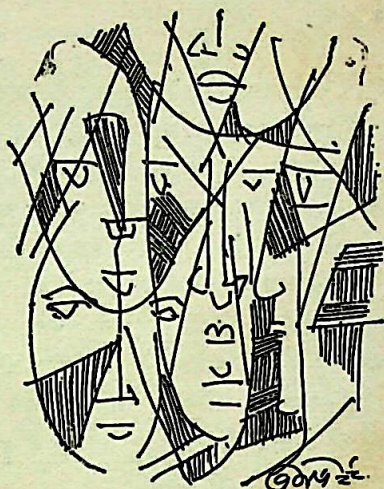
पिड़ जातां
पाणी रहे



रांनी लक्ष्मी कुमारी चूड़ावत

(अनु० सत्यनारायण स्वामी)

राणा रामसिंह जी की कई रानियां थीं. युवराज कुमार सुलतान सिंह बाल्यावस्था में ही मातृस्नेह से वंचित हो गया. प्रथा के अनुसार मेवाड़ के अधिपति होने का अधिकार सुलतानसिंह को था. किंतु छोटे राजकुमार सरदार सिंह की मां के मन में कुछ और ही था. उसने चाहा—उसका पुत्र सरदारसिंह राज्य का अधिकारी हो. राज्य-लोभ के आगे पाप और पुण्य कुछ भी नहीं दिखता. उसने राणा जी के कान भरने शुरू किए. हर समय सुलतानसिंह की ही खोटी-खरी सुनाती रहती. जब कोई भी उपाय कारगर नहीं हुआ तो अंत में एक अफवाह फैला दी. राणा जी के एक 'दुहागिन' रानी थी जो सुलतान सिंह को खूब चाहती थी. कुंवर भी सीतेली मां के पास बहुत बार



आता-जाता था, उसका मान रखता था और उसे चाहता भी था. छोटे से को बड़ा किया था अतः सीतेली मां होते हुए भी वह रानी उसका बड़ा दुलार रखती और उसे अपने बेटे की तरह ही मानती थी.

रानी ने मां-बेटे के पवित्र प्रेम से ही पाप की माला गूँथ डाली. राणा जी ने कहा—“मैं नहीं मानता, जब तक अपनी आंखों नहीं देख लूँ !”

रानी ने हाथ जोड़कर अर्ज की—“आपको दिखा दूँ तब तो मानेंगे न !”

राणा जी बोले—“आंखों दिखा दोगी तो इस गुर्ज से उसका सिर तोड़ डालुंगा और नहीं तो, झूठ बोलने पर तुम्हारा.”

रानी मौके की ताक में लगी. सावन के दिन थे ! जाम नगर से राखी के द सिरोपाव आए—दोनों एक सरीखे, एक राणाजी के लिए और दूसरा कुंवर के लिए. कुंवर का सिरोपाव तो उसके पास भिजवा दिया और राणा जी वाला रानी ने अपने पास रख लिया.

भादों की अंधेरी रात ! बिजली रह-रह कर कौंध रही थी. राणा जी और रानी गोखे में बैठे. रानी ने अपनी एक दासी को जाम नगर से आया हुआ सिरोपाव पहनाया और उसे समझा दिया. वह मौका देखकर जानबूझकर लुकती-छिपती और धीरे-धीरे चुपचाप आने का नाटक करती हुई उस ‘दुहागिन’ रानी के महल से निकली. उसी समय बिजली कौंधी. रानी ने पास बैठे राणाजी का हाथ दबाया, “देखिए, कुंवर-साहब जा रहे हैं च ? मेरी कहीं आप नहीं मान रहे थे, आज प्रत्यक्ष देख लीजिए.” बिजली फिर कौंधी. राणा जी ने साफ-साफ देखा—कुंवर लुकते-छिपते दुबकते पांव धर से आ रहा है. सिरोपाव पहचाना—वही था जो जामनगर से आया था.

राणा जी को क्रोध तो यों ही खूब आता था. अपनी आंखों दुष्कर्म देख लें और और फिर चुप रह जाएं ? वे क्रोध में अंधे हो छटे. गुर्ज हर समय अपने हाथ में रखते ही थे—उसे रखा कंधे पर और चल दिए सीधे कुंवर के महल की ओर. कुंवर और उसकी दोनों पुत्रियां साथ-साथ बैठे खाना खा रहे थे. बाहर दासियां खड़ी थीं. रात

को ऐसे समय राणाजी को बेटा-बहू के आंगन में आते देखकर उनके होश उड़ गए, एक बंठी थी सो तत्काल उठ खड़ी हुई, एक दौड़कर भीतर गई—“अन्नदाता पधारे हैं!”

कुंवर को विस्मय हुआ ! हाथ का कोर धाली में डाल वह खड़ा हो गया, कुंवराजी की नजर बाहर गई, राणा जी हाथ में गुंज लिए खड़े थे, क्रोध के मारे उनके होठ कांप रहे थे, राणाजी रुद्र बने बैठे थे.

पल-भर में कुंवराजी को अतथ्य की आशंका हो आई, उसने झट से फाटक को खींच कर बंद कर लिया, कुंवर ने घमका मारकर फाटक खोला—“मेरे पिताजी तो बाहर खड़े हैं और आप हैं कि मुझे भीतर ही रोक रही हैं.”

कुंवर फाटक खोलकर बाहर निकल हो रहा था कि इतने में उसके सिर पर राणा जी के हाथ की गुंज पड़ी, खोपड़ी के टूक-टूक हो गए और वह वहीं घराशायी हो गया, राणा जी लौट पड़े.

शहर में हाहाकार मच गया.

कुंवर के धामाई (घाय के पुत्र) ने राणा जी से कहा—“आपने यह क्या अनर्थ कर डाला ? कुंवर—जैसे सच्चरित्र व्यक्ति को.....? पराई स्त्री का तो पल्ला तक उसे नहीं छू पाया था, वह उसे साक्षात् मातेस्वरी मानता था, आपने वहम के वशीभूत हो यह जो दुष्कृत्य किया है, इसके लिए आप प्रायश्चित्त कीजिए, आप एक महान और सपूत पूत से हाथ धो बैठे.”

जोश उतरा तो राणा जी को होश आया—अरे, बिना सोच-समझे मैंने यह क्या कर डाला !

प्रातः काल होते ही दोनों कुंवराजियाँ सती का वेश धारणकर पति का शव लिए राणा जी के क्षरोखे के नीचे आ खड़ी हुई—“अन्नदाता से अर्ज कीजिए, हम सवारी में जा रही हैं, इसलिए दर्शन देने की कृपा करें !”

राणाजी तो दुःख और ग्लानि से दबे जा रहे थे, सती पुत्रवधुओं को मुंह दिखाते भी लाज आ रही थी, नीचे से सतियों ने अपनी प्रार्थना पुनः दुहराई—“हम जा रही हैं, दर्शन दीजिए.”

सतियों की बात कैसे टल सकती है ? आत्मग्लानि से भरे राणाजी ने पास ही के ‘दीप-दान’ से झट-से दीये की कालिख लेकर मुंह पर चुपड़ी और क्षरोखे के भीतर से मुंह निकालकर बोले....“यह देखिए, काला मुंह !”

नीचे से एक सती शाप देती हुई जोर से बोली—“आपने अपने निर्दोष पुत्र को मारा है, इस गद्दी पर सात पीढ़ियों तक कोई बाप अपने बेटे का मुंह नहीं देख सकेगा—यह मेरा आप है.”



दयाल यों ही बैठ-बैठा कटारी को देख रहा था कि उसकी अंगुलियों के बीच वह पत्र आ गया। सोचा कोई जरूरी कागज तो मेरे साथ नहीं आ गया है निकालकर देखा, पढ़ा। साफ षडयंत्र ! राणा को आज के भोजन में जहर खिलाने की पूरी योजना ! दयाल का चेहरा सफेद हो गया। गजब हो जाएगा। मालिक के साथ यह नमकहरामी। आज राज सिंह जी के ही प्रताप से मेवाड़ हरा-भरा हो रहा है।

राणाजी को इस भूल का बड़ा सदमा पहुंचा। वे रानी से नाराज रहने लगे। रानी रोचने लगी—सुलतान सिंह का कांटा तो दूर हुआ। अब तो राज्य मेरे बेटे का ही है। किंतु राणाजी आजकल नाराज रहते हैं, कहीं और कोई गड़बड़ न कर बैठें। उसने राणाजी को विष देकर मार डालने की सोची। पुरोहित उसके साथ मिला हुआ था। रानी ने उसे पत्र द्वारा सूचित किया कि सुलतान सिंह को तो मरवा डाला, अब अगला काम हमें यह करना है। पुरोहित ने अधिकांश सरदारों से हस्ताक्षर करवा लिए कि राणाजी के बाद गद्दी पर सरदार सिंह को बिठाया जाएगा। पुरोहित ने वे कागज कटारी की 'पड़दी' में रख दिए।

दीवाली का दिन ! पुरोहित महलों से मुजरा करके घर लौटा। कपड़े उतारने लगा। एक छोकरी (दासी) शीशा लिए खड़ी थी। दयाल नामक नौकर कमर बंधे के पेंच उधेड़ रहा था। पुरोहित की पोशाक उतर रही थी। मोका देखकर छोकरी बोली—
“दयाल आज रात को विदा मांग रहा है।”

“कहां जाएगा ?”

“आज दीवाली है, इसलिए बहू को लाने अपनी ससुराल जा रहा है。”

समंग में आकर पुरोहित बोला—“अच्छा ! ससुराल जा रहा है ? जा, पांच सेर मिठाई की चिट्ठी भी लेता जा। और इन कपड़ों से ससुराल जाएगा ? ससुरालवाले कहेंगे—“दीवाली पर ऐसे गंदे कपड़ों में ही पुरोहित की हवेली का यह आदमी ससुराल आ गया है। हवेली की निंदा होगी। ले, ये मेरे कपड़े ही पहन ले。” इतना कह कर पुरोहित ने अपना कमर बंधा, पगड़ी, अंगरखी ज्यों की त्यों दयाल को दे दी। दयाल मुजरा करके चलने लगा।

पुरोहित ने विदा होते दयाल को आवाज लगाई—“अरे आ, मार्ग में नाहर या चीता मिल गया तो ससुराल याद आ जाएगी। ले, कटारी भी साथ लेता जा。” कटारी दयाल को सौंप दी, वही कटारी, जिस की 'पड़दी' में रानी का भेजा पत्र था !

उमंगभरा दयाल विदा हुआ। उसकी समुराल उदयपुर से दो कोस दूर देवाला गाँव में ही तो था।

समुराल गया। जंवाई को आया देखकर समुरालवालों ने बड़ी खातिर की। लपट और चावल बनाए जाने लगे। दयाल यों ही बैठा-बैठा कटारी को देख रहा था कि उसकी अगुलियों के बीच वह पत्र आ गया। सोचा, कोई जरूरी कागज तो मेरे सामने नहीं आ गया है। निकालकर देखा, पढ़ा—साफ पड़्यंत्र। राणा जी को आज के भोजन में जहर खिलाने की पूरी योजना ! दयाल का चेहरा सफेद हो गया। गजब हो जाएगा मालिक के साथ यह गद्दारी ! आज राज सिंह जी के ही प्रताप से मेवाड़ हरा-भरा हो रहा है। ये नहीं रहे तो दिल्ली की फौजें सुख की एक सांस भी इसे नहीं लेने देंगी। कुछ भी हो, राणाजी के प्राणों की रक्षा करनी ही है।

वह उठ खड़ा हुआ। समुरालवालों ने पूछा—“अभी-अभी तो आप पधारे हैं और अभी वापिस चल दिए, ऐसा क्या हो गया ?”

दयाल तो प्रत्युत्तर दिए बिना ही भागा और सीधा उदयपुर की जनानी ड्योढ़ी जाकर रुका।

डावड़ी (दासी) को बुलाकर कहा—“राणाजी से अर्ज कर कि यदि आप मेरी अर्ज सुने बिना, भोजन को हाथ भी लगाया तो आप को एकलिंगजी की आन है। पहले मेरी बात सुनें, उसके बाद भोजन करें।” और डावड़ी से कहा—“तुम्हें एकलिंगजी और राणाजी की आन है यदि तू ज्यों-की-त्यों जाकर अर्ज नहीं करेगी तो।”

राणाजी से ज्यों-की-त्यों अर्ज की गई थाल बाजोट पर आ लगे और राणाजी को कोई यों कह दे; किंतु एकलिंग जी की आन जो थी ! गुंज उठाई और खीझते हुए राणाजी बाहर निकले।

दयाल ने दूर से ही हाथ जोड़कर आवाज लगाई—“यदि मुझे मारा तो आपको एकलिंगजी की आन है। पहले यह पत्र पढ़ लें, फिर आपकी जो मर्जी हो वैसा कीजिएगा।”

पत्र पढ़ा, पढ़ते ही राजसिंह जी क्रोध में बावले हो उठे। रानी को गुंज की ऐसी मार मारी कि वह तत्काल ठिकाने लग गई। पुरोहित को घर से बुलाकर उसे भी गुंज की भेंट चढ़ा दिया।

कुंवर सरदार सिंह को पता लगा कि घटना-चक्र इतना कुछ चल चुका है और वे बिल्कुल बेखबर ही रहे ! उन्हें झुंझलाहट हुई—इतने बड़े दुष्कृत्य मात्र मेरे कारण हुए हैं। उन्होंने यह दूहा लिखकर सिरझने रखा और जहर की पुड़िया खाकर सो गए—

पाणी पिंड लणांह, पिंड जातां पाणी रहे.

चीतारसी घणांह, सपना ज्यूं सरदारसी.

(सम्मानार्थ शरीरधारियों की प्रतिष्ठा उनके देहावसानोपरान्त भी बनी रहती है सरदार सिंह की याद कइयों को सपनों में भी सताएगी,) ■

कार

स्कूटर

ट्रक

तथा

मकानों में

इस्तेमाल होनेवाले

सुविख्यात

विविध स्टैंडर्ड कंपनियों के

विविध पेंट व वार्निश

के

थोक और फुटकर

विक्रेता



मे० नवभारत पेंट एंड हाडवेयर कं.

एस ११/१५ चौकाघाट, वाराणसी - २

फोन : प्रतिष्ठान - ३३२४०२

निवास - ३४३६८०

उर्दू कहानी

उसका बचपन

सलाम बिन रजाक

(अनु० मुनव्वर हुसेन)

साढ़े ग्यारह की ट्रेन भी जा चुकी और आज कमाई के नाम पर रुपया सवा से रुपया से ज्यादा नहीं मिला. अंधी मन-ही-मन पछाड़ खा रही थी. उसका बश चलता तो वह आज गप्पू को ट्रेन के नीचे ढकेल देती.

—हरामजादा....बालिस भर का छोकरा....अभी से कित्ता दिमाग है इसको....सत

सुबह सात के भोंपू के साथ ही वह लोग स्टेशन के गेट पर आकर बैठ जाते थे. नई यह उनकी दिनचर्या थी. अब साढ़े ग्यारह हो गए थे.

—रोजाना इत्ते बखत में चार-पांच रुपये की कमाई हो जाती थी. जाने हरामजादे को क्या हो गया है. अब कोई आसा नहीं. कमाई का बखत गुजर गया. सबेरे सात बजे से ग्यारह बजे तक लोगों के नौकरी-धंधे पर जाने का बखत होता है. ऐसे में कोई मिखारी सामने पड़ जाए तो सगुन के लिए कुछ दे देते हैं लोग....

यह गुर दोनों को लंगड़े ने बताया था.

—कित्ता होसयार है लंगड़ा अपने धंधे में—कैसे-कैसे गुर याद हैं उसे भीख मांगते



कि. जब से लंगड़ा बीमार पड़ा है, धंधा बहोत मंदा हो गया है. हलकट बीमार नहीं होगा तो क्या होगा. दारू, चरस, बीड़ी-कोई नसा नहीं छोड़ता. पीता है तो पीता ही जाता है. नसे में तो बिल्कुल जनावर हो जाता है. जनावर. उसे तो कपड़े की तरह निचोड़कर रख देता है. ऐसे बखत कित्ता ही मना करो; नई

मानता. जाने कां से इत्ता बल आ जाता है उसमें. ऐसा झिझोड़ता है कि बोटी-बोटी दुखने लगती है. सवेरे उठा बी नई जाता. मगर हाँ, खिलाता-पिलाता बी खूब है. सवेरे ईरानी के होटल से कीमा-पाव ज़रूर लाता है. खिलाने-पिलाने में कोई कोर-कसर नई रखता लंगड़ा. मगर वही दिन भर खाओ-पियो और रात को उसकी चाकरी करो. मगर जब से बीमार हुआ है बात नई करता. अबकी बहोत दिन बीमार हो गया है. बीस रोज से ज़ियादा हो गए होंगे, ईरानी का कीमा खाए हुए....रात खाली मसकरी से बोली थी तो कित्ता बिगड़ गया था. हलकट मतलबी है पक्का ! अपन अच्छा था तो रोज-रोज सताता था और मैं बीस रोज बाद जरा बोली तो एकदम भड़क गया. हरामी दवा भी नई खाता. अच्छा कां से होगा—आज तो बहोत नाराज होगा. होने दो. मैं क्या करूँ. यह कुरो का पिल्ला मेरी कां सुनता है. जाने कौन छिनाल जनकर चली गई सूअर को. लंगड़ा बोलता है मर गई. लोग बोलते हैं भाग गई. भाग इच गई होगी, नई तो. यह लंगड़े के पास कौन टिकेगा ? क्या रक्खा है इसके पास ? मेरा छोड़ो, मैं कां जाऊँगी. एक अंधी का हाथ कौन पकड़ेगा. पन सुरसतिया कहती थी—गप्पू की मां खबसूरत थी. बोलते हैं, लंगड़ा सताता बी बहोत था उसको. क्या करती. कब तक लंगड़े के पास पड़ी रहती. अच्छा हुआ चली गई. पन यह पाप की पोटली छोड़ गई मेरी छाती पर. छह-सात बरस का है मगर अभी से इत्ता बेईमान है कि कटी उंगली

पर पेसाब करने को तैयार नहीं. मेरे को तो 'मां' बोलताच नहीं. अरे बाप की सुनता, मेरी क्या सुनेगा हरामी. मैं तो कहती हूँ यह बीज लंगड़े का हैच नहीं. एक दिन बोली थी तो लंगड़ा कित्ता गरम हो गया था. अरे अगर गप्पू की मां खूबसूरत तो फिर कुत्ते लोग उसके आगे-पीछे फिरते होंगे. लंगड़ा उसकी टांगों का दारोणा तो था नहीं कि हर घड़ी उसकी हिफाजत करता. अब मैं इच अगर चाहूँ तो किसी की पास चली जाऊँ. लंगड़े को क्या मालूम पड़ेगा. पन लोग बी बहोत हरामड़े होते हैं. मेरे पास काए को आएंगे, अंत्रो हूँ न ! लंगड़ा कहता था मुंह पर माता के बड़े-बड़े दाग भी हैं, रंग बी काला है. गोरा रंग कैसा होता होगा ? मरद लोग तो गोरी चमड़ी के पीछे दीवाने होते हैं, लंगड़ा हरामी आज बी गप्पू की मां को याद करते रोता रहता है....

“हड़....ड़....कुत्ता है....”

“अरे गप्पे ! मर गया क्या ? कां चला गया, देखचे चाट के जा रीले है, डक्क देखकर बी नहीं भगाता.”

गप्पू कैटीन के पास खड़ा था, कांच के मर्तबान में क्रीम लगे बेक के टुकड़े रखे थे, जिन्हें वह ललचाई नजरों से घूरता हुआ गिनने की कोशिश कर रहा था.

“एक....दो....तीन....चार....पांच....दस.....बारह.....” गप्पू को गिन नहीं आती.

“बाप रे—कित्ते केक ! मेरे को मिलें तो सब खा जाऊँ, भुजिया तो खारा होता है, जलेबी मीठी होती है, यह क्रीमवाला केक कैसा होता होगा ?”

“अरे गप्पे ! हरामी कां चला गया ?”

—अंधी चिल्ला रीली है, मरती बी नहीं साली. कहां से आ गई ? बाप उसकी सुनता है. बोलता है, इसको मां बोलूँ, मैं नहीं बोलूंगा अंधी को मां. मेरी मां कितनी अच्छी थी, एकदम सामने लगे फोटू के माफिक. बाप रे ! कितनी बड़ी-बड़ी आंखें फोटू की. मां की आंखें भी ऐसी इच बड़ी-बड़ी थीं. कां चली गई, मेरे को छोड़ के मां ? मां थी तो अपनी कित्ती मजा थी. रोज बाप की चोरी दूधवाले भैया के पास से दूध लेकर पिलाती थी, कभी-कभी जलेबी भी, रसवाली जलेबी मीठा-मीठा रस....SS...आह....बाप को मालूम पड़ता था तो कित्ता बोम-बोम करता था. बाप रे ! मां को कित्ता मारता था बाप. साला लंगड़ा बाप बहोत खराब है, अब ऊपर से अंधी को मां, ऊंह.....!

अंधी की आवाज पर उसने मुड़कर देखा, अंधी थूथनी ऊपर उठाए उसका नाम लेकर पुकार रही थी. उसने मर्तबान में रखे केकों पर आखरी निगाह डाली और



ढीले-ढीले कदमों से अंधी के पास चला गया।

“कां चला गया था रे....हरामी ! कब से चिल्ला रोली हूँ, तू घर को चल, देख आज तेरी कीसी चंपी कराती हूँ, खा-खा के सूअर को बहोत चर्बी चढ़ गई है,”

गप्पू चुपचाप आकर उसके सामने बैठ गया।

“देख अब ट्रेन आनेवाली है, इधर आ, हां इधर सरककर बैठ मेरी गोद में....हां ऐसा देख अबकी दफा अगर नहीं रोया तो बहोत मार खाएगा. लंगड़े से बोल तेरी दोनों टांगें तोड़ने को लगाऊंगी. चूतड़ों से घिसकर चलना पड़ेगा. हां देख, ट्रेन आ गई, तैयार हो जा, लोग आ रीले हैं, आ रीले हैं न ? अरे मुंह से बोल छिनाल के, माटी मिले, तेरे मुंह में गधी का पेसाब. आज तेरे को क्या हो गया है ? लंगड़े से मेरे की बो मार खिलाएगा सूअर, रो....जोर-जोर से रो, देख लोग आ रीले हैं, रो....हरामी रो..”

“बाबा....! बच्चा भूखा है. भगवान के नाम पर पांच-दस पैसा....अल्लाह के नाम पर....बाबा....देखो बच्चा रो रीला है.”

“अरे रो कुतरे....रोता क्यों नहीं.” अंधी गप्पू को जोर-जोर से चुटकियां काटती है. मगर गप्पू टस-से-मस नहीं होता. वह उसी तरह शांत बैठा है. अंधी बिलबिला कर अबकी बार पूरी शक्ति से चुटकी काटती है. गप्पू वहीं बिल-बिलाकर रह जाता है. मगर रोता कत्तई नहीं.

“बाबा ! भगवान के नाम पर....बच्चा भूखा है.” अंधी दांत किटकिटाती है.

“अरे कुत्ते रोता क्यों नहीं. रो....ना....रो....रो....”

चुटकियां काटते-काटते अंधी की अंगुलियां दुखने लगीं मगर गप्पू उसी तरह चुपचाप बैठा है. धीरे-धीरे ट्रेन से उतरे सारे यात्री स्टेशन के गेट से गुजर जाते हैं. सामने बड़े टीन के डिब्बे में टन्....टन् की आवाज के साथ सिर्फ दो-चार सिक्के गिरते हैं. अंधी उन्हें निकाल लेती है अंगुलियों से छूकर गिनती है.

“दो बीस पैसा, दो दस पैसा और एक पांच पैसे का सिक्का और....आज लंगड़ा जिंदा नहीं छोड़ेगा. सब पैसे मिलाकर सवा रुपया भी नहीं होता है. आठ आने की तो लंगड़े की गोली इच आएगी. अब बाकी पैसों में पांव-भाजी और चा कां से आएगी. इस भूखे को आज क्या हो गया है. रोतांच नहीं मुर्दा. किस्ते जोर से चिकोटी कि हरामी की पीठ खून-खून हो गई होगी. पन रोताच नहीं.”

उसने एक जोर की धप् गप्पू की पीठ पर रसीद की.

“क्यों रे भंगी के ! आज क्या हो गया है तेरे को ? रोता क्यों नहीं ?”

“नहीं रोजंगा....”

“अरे कुतरे क्यों नहीं रोवेगा ?”

“नहीं रोजंगा. कबरी नहीं रोजंगा.”

“आज तू घर को चल, देख लंगड़ा तेरी क्या हालत करता है. हरामी रोवेगा नहीं तो खाएगा क्या ?”

अंधी ने टोन का डिब्बा उठाया और गप्पू की बांह पकड़कर उसे लगभग घुंटी तक ले गई अपने झोंपड़े की ओर चली। गप्पू कसाईबाड़े की ओर ले जाए जाने का किसी जानवर की तरह घिसटता हुआ उसके साथ चलने लगा। उसकी बांह पर की गिरफ्त काफी मजबूत थी। दर्द से उसकी बांह की हड्डी टूटने लगी। मगर उस होठों से एक कराह तक नहीं निकली। उसने अपने होठ सख्ती से भींच रखे थे। वहाँ में अथाह दुःख और चेहरे पर अटूट जिद का तनाव था। अंधी उसे रह-रह कर घसीटती और कदम-कदम पर गालियाँ देती चल रही थी।

“देख आज तो तेरा मुर्दा गिराएगा लंगड़ा। मैं तो लंगड़े के लिए गोली बीज लूंगी। कां से लूँ? एक रुपया बीस पैसे में पाव आएंगे, भाजो आएंगी, चा आएंगी गोली आएगी। मेरे को क्या करने का ! मैं तो बोल दूंगी इस हरामड़े के साथ मैं नहीं मांगती। कोई दूसरा गुर बता। मेरी तो यह सुनताच नहीं। रो बोलेंगे तो रो नहीं। घड़ी-घड़ी टीसन में चला जाता है। पुकार-पुकारकर गला सूख जाता है। भुलाने छो बोलेंगे तो बोलेगा, मेरे को केक चढ़ए। तीन दिन से बोलता है मेरे को केक चढ़ए। अरे मुर्दे ! क्रीम का केक कित्ते का मिलता है, मालूम है। चालीस नई पचास पैसे का एक इत्ता-सा केक ! तेरे को क्रीम-केक खिला देंगे तो हम क्या खाएँ तेरी मां का कलेजा ! बाप को रोज आठ आने की गोली चढ़ए। बेटे को क्रीम-केक चला....घर को चल....अच्छे से खिलाती हूँ क्रीम-केक तेरे को..”

जब अंधी और गप्पू झोंपड़ी में दाखिल हुए तो लंगड़ा झोपड़ी में लेटा उन्हीं इंतजार कर रहा था। अंधी दरवाजे के बाहर ही से मनमनाती आ रही थी—

“मैं क्या झूठ बोलती हूँ, जाने किसका पाप है, हरामी किसी की सुनताच नहीं।
“क्या हुआ री ! क्यों कुत्ते के माफिक भूक रीली है ?”

“पूछ, अपने हरामी पिल्ले से पूछ.”

“क्या हुआ रे ?” लंगड़ा उठकर बैठ गया।

गप्पू गर्दन झुकाए चुनचाप खड़ा था। उसका चेहरा अब भी किसी कमान की तरह तना हुआ था। लंगड़े की आवाज सुनकर उसने गर्दन उठाई।

“अरे बोल ! सूअर के बच्चे. देख क्या रीला है, दीदे निकाल लूंगा”

गप्पू बदस्तूर चुप रहा।

“देख ले यही हाल है सुन्नु से. घुच्चू के माफिक खाली-पीली घूरता है, मुझे कुछ नहीं बोलता,”

“अरे जाने दे ना, नहीं बोला तो नहीं बोला, तेरा क्या जाता है. ला गोली और.....”

“काए की गोली.वही तो बोलने जा रीली हूँ. आज एक रुपया बीस पैसेच मिड
“क्यों ?”



“पूछ न इसी कुत्ती के जाने से.”

“अरे तू क्यों नहीं बोलती हरमड़ी कि अब उठकर दिखाऊं तेरे को बा.”

“मेरे को मालूम था. तेरे को गोली नहीं मिली कि तू ऐसाच काटने को दीड़ेगा.”

“देख अब जासती भकस मत कर. नहीं तो सच्ची हाथ डाल कर जबान खींच लूंगा.”

“मार डाल, मार डाल, मेरे को.....तेरा नरक भरते-भरते मैं तो परेसान हो गई....यह ले....यह पैसा मिला है. अब इसमें तू गोली ला, नहीं तो मेरा कफन ला”

छन्....न्....न्....न्. अंधी ने सब ...सब पैसे लंगड़े के सामने फेंक दिए. लंगड़े ने जमीन पर बिलखी रेजकारी पर एक उचटती-सी नजर डाली. फिर बोला, “अरे मैं और तो पूछ रोला हूं. इत्ता कम पैसा क्यों मिला ?”

“आज यह रोयाच नहीं. मैं क्या करूँ.”

“रोयाच नहीं....क्यों नहीं रोया. चिमटी जरा जोर से लेने का था.”

“कित्ते जोर से लूं. देख ले पीठ की चमड़ी छिल गई होगी. मगर रोताच नहीं था. पूछती हूं तो बोलता है—नहीं रोऊंगा.”

लंगड़े ने खतरनाक निगाहों से गप्पू की ओर देखा. गप्पू बिस्कुल शांत खड़ा था. उसकी आंखें लंगड़े के चेहरे पर जमी हुई थीं.

“क्यों रे हरामजादे! क्यों नहीं रोया आज ?”

गप्पू चुपचाप खड़ा रहा.

“अरे बोल मादर.....नहीं तो टुकड़े-टुकड़े कर डालूंगा.” लंगड़े ने अपना डंडा उठाया और उसका एक सिरा गप्पू के पेट में चुभो दिया.

गप्पू थोड़ा-सा पीछे को सरक गया. मगर बोला अब भी नहीं. लंगड़ा तैश में आ गया. उसने लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे अपनी ओर खींचता हुआ दूसरे हाथ से एक जोरदार चाटा रसीद किया. गप्पू जमीन पर लुढ़क गया. लंगड़े ने बैठे-बैठे ही अपनी इकलीती टांग चलाई. लात गप्पू की कमर पर पड़ी. गप्पू दर्द से दोहरा हो गया.

फिर दूसरी थप.

“हरामजादे, बोल क्यों नहीं रोया ? जान से मार डालूंगा,....बोल...”

गप्पू जमीन पर पड़े-पड़े ही चिल्लाया, “नहीं रोऊंगा....”

“अरे क्यों नहीं रोएगा. तेरी मां का सूअर मारूँ क्यों नहीं रोएगा ?”

चट....एक तमाचा और.

“मेरे को अब रोना इच नहीं आता बाप, मैं नहीं रोऊंगा.”

लंगड़ा चौंक पड़ा.

“क्या बोला....रोना इच नहीं....”

“हां....रोना इच नहीं आता.”

गप्पू फर्श से उठने की कोशिश कर रहा था. लंगड़े ने देखा कि उसकी नंगी पीठ पर नाखूनों की अनगिनत खरोंचें भी पड़ी हुई थीं

उर्दू कहानी

मूत्री

सआदत हसन मंटो

(अनु० मुनवर हुसेन)

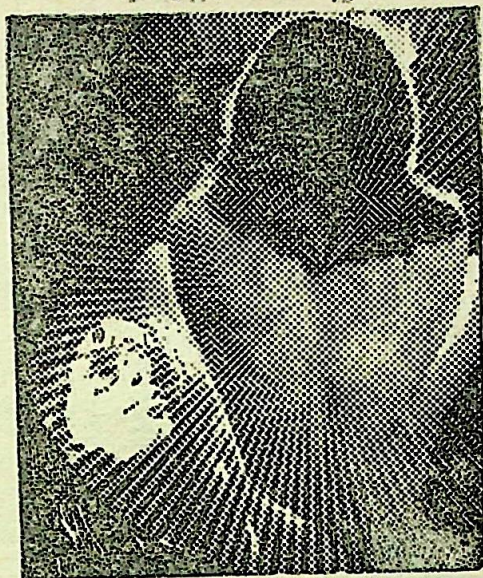
कांग्रेस हाउस और जिन्नाहाल से थोड़ी ही दूरी पर एक मूत्रालय है, जिसे बंबई में मूत्री कहते हैं। आस-पास की इमारतों का सारा कूड़ा-कचरा इस दुर्गंध भरी कोठरी के बाहर ढेरों की सूरत में पड़ा रहता है। इस कदर बदबू होती है कि लोगों की नाक पर हमाल रखकर बाजार से गुजरना पड़ता है।

इस मूत्री में लघुशंका के लिए एक बार उसे सजवूरन जाना पड़ा। नाक पर खमाल रखकर, सांस बंद करके, वह दुर्गंध के इस भंडार में प्रविष्ट हुआ। फर्श पर गलाजत बुलबुलों की सूरत में फट रही थी—“दीवारों पर स्त्री-पुरुष के गुप्तांगों के चित्र बने थे—सामने कोयले से किसी ने शब्द लिखे हुए थे—

‘मुसलमानों की बहन का पाकिस्तान मारा ?’

इन शब्दों ने बदबू को सिद्धत और भी तेज कर दी। वह जल्दी-जल्दी बाहर निकल आया।

जिन्नाह हाल और कांग्रेस हाउस दोनों पर सरकार का कब्जा है। लेकिन थोड़ी ही दूरी पर जो मूत्री है, पूरी तरह आजाद है। आस-पास की इमारतों का कूड़ा-कचरा अब कुछ अधिक ढेरों की सूरत में बाहर पड़ता दिखाई देता है।



चित्र—अनजान

एक बार फिर गजबूरन उस मूत्री में जाना पड़ा. नाक पर रुमाल रखकर और सांस बंद करके वह इस कोठरी में प्रविष्ट हुआ—'फर्श पर पतले पाखाने की पपड़ियां जम रही थीं. दीवारों पर स्त्री-पुरुष के गुप्तांगों के चित्रों की संख्या में वृद्धि हो गई'—'मुसलमानों की बहन का पाकिस्तान मारा' के नीचे किसी ने मोटी पेंसिल से ये घिनावने शब्द लिखे हुए थे—

'हिंदुओं की मां का अखंड हिंदुस्तान मारा.'

इस तहरीर ने मूत्री की दुर्गंध में एक तेजाबी कैफियत पैदा कर दी. वह जल्दी-बाहर निकल आया.

महात्मा गांधी की बिना शर्त रिहाई हुई. जिन्नाह की पंजाब में पराजय हुई. जिन्नाह हाल और कांग्रेस हाउस दोनों को पराजय हुई, न रिहाई. उन पर सरकार का और उसके थोड़ी ही दूर पर जो मूत्री है उस पर दुर्गंध का कठरा जारी रहा.

तीसरी बार फिर उसे मूत्री में जाना पड़ा. नाक पर रुमाल रखकर और सांस बंद करके वह गलाजती की इस कोठरी में प्रविष्ट हुआ—फर्श पर कीड़े चल रहे थे. दीवारों पर स्त्री-पुरुष के गुप्तांगों के चित्रों के लिए अब कोई स्थान शेष न रहा था—'मुसलमानों की बहन का पाकिस्तान मारा' और 'हिंदुओं की मां का अखंड हिंदुस्तान मारा' के शब्द सख्तिम पड़ गए थे. मगर उनके नीचे सफेद चाक से खिले हुए ये शब्द उभर रहे थे—

'दोनों की मां का हिंदुस्तान मारा'

इन शब्दों ने यकायक मूत्री की दुर्गंध गायब कर दी. वह जब आहिस्ता-आहिस्ता बाहर निकला तो उसे यों लगा कि उसे दुर्गंध के इस भंडार में एक मामूली-सी महक आई थी. सिर्फ एक क्षण के लिए

तेलुगु कहानी

मानचित्र

बाकाटि पांडु रंगाराव

(अनु० वाई. सी. पी. वेंकटारेड्डी)

चिन्ना राव की उम्र दस साल की है.

वह पांचवीं कक्षा में पढ़ रहा है.

पढ़ना उसके लिए अवस्यमेघ यज्ञ करने के समान है.

एक दिन सोशल स्टडीज के अध्यापक ने भारत का मानचित्र खरीदने को कहा था उसमें उचित रंग भरकर लाने की आज्ञा दी.

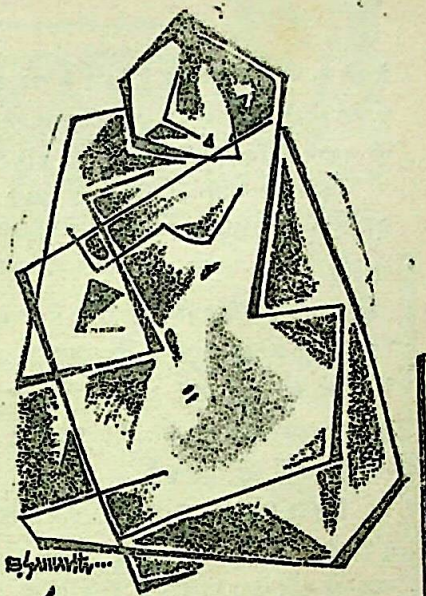
मानचित्र का दाम दस पैसे है. चिन्ना राव ने अपने पिता से पैसे मांगे तो उसने नहीं दिया.

चिन्नाराव के पिता का नाम नागन्ना है. वह रिक्शा चलाकर जीविका कमाता है.

चिन्नाराव ने अपनी मां को सताया तो उसने डांट-डपट कर दस पैसे दिए.

चिन्नाराव ने मानचित्र खरीद लिया. अब रही रंग. पेंसिलों की बात. उसके पास रंग पेंसिलें नहीं हैं, खरीदने के लिए पैसे भी नहीं हैं.

खेल-कूद में साथ देनेवाले साथी कृष्णकुमार से चिन्नाराव ने पेंसिल मांगी. उसने



पेंसिल के दो टुकड़े दिए--एक नीली पेंसिल का, दूसरी हरी.

कृष्णकुमार ने पेंसिल के टुकड़े ऐसे-वैसे नहीं दिए, दस बार मांगने पर दिए, उसकी पुट्टे की पेटी भर में रंग पेंसिलें हैं. पुस्तकें रखने की भी एक चमकदार पेटी है. स्कूल जाने के लिए रिक्शा है. वे जिस बंगले में रहते हैं, वह एक आलीशान महल है. वह देखने में ऐसा लगता है, जैसे सिनेमाओं में आलीशान महल होते हैं.

चित्र—भाऊ समर्थ

जब कभी कृष्णकुमार के बारे में सोचता है तो चिन्ना राव को दुःख होता है. वह अपने मां-बाप के साथ गंदे नाले के किनारे, ताड़ के पत्तों की झोंपड़ी में क्यों रहता है? उसकी समझ में नहीं आता. अपनी गरीबी के बारे में एक बार उसने अपने अध्यापक से पूछा तो वह हंसकर चुप रह गए.

नीली पेंसिल श्रीकृष्ण के मोर पंख की तरह चमक रही है.

यद्यपि कृष्णकुमार अमीर मां-बाप का लड़का है. फिर भी घमंडी नहीं है. खेल-कूद में वह सदा चिन्ना राव के दल में ही रहता है. चिन्नाराव जितनी तेजी से दौड़ता है, उतनी तेजी से कृष्णकुमार नहीं दौड़ सकता. रनिंग रेस में चिन्नाराव ही फर्स्ट आता है. जब चौथी कक्षा में पढ़ता था तब रनिंग रेस में विजयी हुआ था. उस समय उसे 'रजत पदक' दिया गया था. उसे लाकर मां को दिखाया तो वह आनंद विभोर हो गईं. उसने कहा, "हमारा चिन्नी बड़ा अफसर बनेगा !"

मां की प्रसन्नता देखकर चिन्ना राव को लगा कि वह सचमुच बड़ा बन गया है; खाकी नेकर और कुर्ता पहनकर हाथ में छड़ी ली है, लगा कि लोग उसे सल्यूट कर रहे हैं. वही पदक पिता को दिखाया तो उसने कहा, "अरे, बेवकूफ यह क्या है? इसे

वेचने से भी क्या मिलता है ? कम से कम आधी कुजरी ताड़ी भी मिलती है क्या ? एक ब्रैकेट सीटी आती है ? ऐसी बेमतलब की पढ़ाई से क्या फायदा है रे पागल ? चाय की दुकान में दिन भर प्याले धोएगा प्रति दिन तो एक रुपया मिलेगा."

पिता की बातें सुनकर उसे क्रोध आया. उसने पिता को पीटना चाहा, लेकिन तत्काल डर लगा कि बाप रे ! पिता को पीटना जिससे मुहल्ले के सब लोग डर जाते हैं.

शाम को अंधेरा घिर आते ही पिता घर आते तो मां के लिए त्योहार-सा है, ऊँट दिन चूल्हा जलेगा, खाने के लिए जरा गरम खाना मिलेगा लेकिन हफ्ते में चार दिन पिता जी घर नहीं आते. अनेक घरों में दिन भर काम करके थकी-मांदी मां घर आती है. यदि तब तक पिता जी घर नहीं लौट आते तो दूँढ़ती हुई जाती है कि किस शराबखाने में पड़े मिलते हैं.

चिन्ना राव ने एक बार लक्ष्मी टाकीज में 'रामायण' देखी. उसमें सीता देवी को दूँढ़ते हुए श्री रामचंद्र जी जाते हैं. यहाँ तो पिता को दूँढ़ती हुए मां जाती है. सिने-माओं में क्यों ऐसा दिखाते हैं ? असल में सिनेमा में अच्छे-अच्छे कपड़े पहननेवाले, कारों में बैठनेवाले, डांस करनेवाले कितने सुंदर होते हैं....मालूम नहीं कि वे सब कहां रहते हैं....उन सब को निकट से देखने का मौका एक बार मिले तो...ओह ! लेकिन, यहां कोई उनकी तरह नहीं होते....क्यों ? हमारे मुहल्ले में तो लोग बड़े गंदे होते हैं !

चिन्ना राव के हाथ से पेंसिल फिमलकर नीचे गिर पड़ी. नोक टूट गया. चिन्नाराव ने उसे सावधानी से उठाया और ब्लेड से उसे छीला. नोक नुकीला बन गया. उसे देखकर चिन्नाराव खुश हो गया.

लेलुगु नोट-बुक पर मानचित्र फैला दिया. फर्श ऊँचा-नीचा है. पुस्तक को इधर-उधर खींचकर देखा. कहीं भी फर्श सपाट नहीं है. ऊँचकर उसने पुस्तक गोद में रख ली. उस पर मानचित्र फैलाकर बायें हाथ से उसे पकड़ लिया.

अध्यापक जी ने कहा कि देश के तीन ओर समुद्र है. यानी ? शायद वैसे होंगे जैसे हमारे मुहल्ले के चारों ओर गंदे नाले हैं. अध्यापक जी ने और एक बात कही—मान-चित्र पर पानी की जगह नीला रंग भरना है. हमारी झोंपड़ी के पीछे के नाले में पानी हमेशा काला और गंदला होता है न, फिर नीला रंग क्यों भरना है ? यह तो मेरी समझ में नहीं आता.

जो भी हो, अध्यापक जी ने कहा है न कि समुद्र का पानी नीला होता है. चिन्ना-राव सावधानी से मानचित्र के तीनों ओर नीला रंग भरने लगा.



उनकी झोपड़ी के पीछे एक नाला है। जिस तरह हमारी राज-

नीति का गलीज बहता है। उसी तरह वह गंदा नाला बह रहा है।

राजनीति में जिस तरह राजनैतिक नेता तैरते रहते हैं, उसी तरह इस नाले में तरह-तरह की मछलियां तैर रही हैं, इस नाले में मछलियां जिस तरह डुबकियां लगा रही हैं, उसी तरह आधा किलोमीटर की दूरी पर सिगन्ना, अप्पन्ना, कोडय्या नटराज आदि ताड़ी और शराब में डुबकियां लगा रहे हैं...

उस मुहल्ले में जो एकमात्र नल है उसके पास औरतों में झगड़ा शुरू हो गया। बगल की झोंपड़ीवाली नांचारम्मा और चाय दूकानदार की बीबी हसीना बी में तकरार प्रारंभ हुआ। तकरार का कारण है—तेरा कलश पहले भरना है या मेरा घड़ा पहले भरना है। यह तकरार उग्र राज्यों के अभिप्राय भेद के स्तर तक बढ़ गया। वहां अणु आयुध है तो यहां नाखून और चोटियां हैं। वहां भाषणों की झड़ी है तो यहां गालियों की बाढ़ है। वहां राकेट उड़ते तो यहां जाकेट (चोलियां) फटती हैं। नांया-रम्मा के कूड़े को हसीना बी ने सरकाया तो उसके जस्ते के कलश को नांयारम्मा ने फेंक दिया। उस झटके से छिड़के पानी की बूंदें चिन्नाराव के मानचित्र पर पड़ीं। उसे बड़ा दुःख हुआ। तब तक तीसरे महायुद्ध के लिए आवश्यक हालात तैयार हैं। इस हालात में चिन्नाराव के मानचित्र की ओर किसका ध्यान जाता ?

चिन्नाराव ने अपने कुर्ते के पल्ले से पानी की बूंदों को सोखने की कोशिश की। मानचित्र ने जो आंसू बनाए उनको मुंह से फूंक दिया। बंगाल की खाड़ी को पूरा करके हिंद महासागर में नीला रंग लगाने लगा।

“हाय! बाप रे !....मार दिया ! भगवान !....” चिल्लाहट सुनाई पड़ी तो चिन्नाराव चौंक पड़ा।

पेरम्मा लड़खड़ाते हुए भाग रहा है। उसके पेट से खून बह रहा है। मुहल्ले में खलबली मच गई। वहां जो दो सौ मतदाता मौजूद थे, वे सबके सब ऐसे दीड़-दीड़ कर आए जैसे चूहे बिलों से निकल आते हों।

मालूम हुआ कि बेंकटराव ने पेरय्या को दो रुपये दिये थे; आज दूंगा—कल दूंगा कहते हुए पेरय्या छः महीने से हीला-हवाली कर रहा है, आज बेंकटराव ने जबर-दस्ती की। पेरय्या गुलियां देने लगा और दो रुपये देने से इनकार कर दिया। बेंकटराव खंजर से जवाब देकर चला गया।

चिन्नाराव किताब और मानचित्र वहीं छोड़कर भीड़ के साथ दीड़ पड़ा।

पेरया को इस्पताल पहुँचाया गया, हाथ-तोबा मचाती हुई उसकी पत्नी भी वहाँ पहुँच गई। आघ घंटा बीत जाने के बाद पुलिस आई। पूछताछ करके कुछ लोगों को वैन में बिठाकर ले गई, लेकिन उनमें दॅकटराब नहीं है।

नल में पानी चंद हो गया, नायिकाओं ने नियुद्ध संधि प्रकट की। गुट निरपेक्ष और गुटबंध राज्यों की तरह मुहल्ले के सब लोग खंजर-दार की चर्चा करने लगे पैंडरया ने अपनी ब्रैकेट दूकान भी बंद कर दी।

शाम के छः बज गए, अभी अंधेरा नहीं था, लेकिन दुर्जन को देखकर सज्जन जिस तरह हट जाता है, उसी तरह प्रकाश पीछे की ओर मुड़ने लगा।

चिन्नाराब ने चित्र में रंग भरना चाहा तो रोशनी काफी नहीं थी। बाजार की प्रतीक्षा में वह बैठा रहा।

उनकी झोंपड़ी के पीछे एक नाला है। जिस तरह हमारी राजनीति का गलीब बहता है, उसी तरह वह गंदा नाला बह रहा है। राजनीति में जिस तरह राजनैतिक नेता तैरते रहते हैं, उसी तरह इस नाले में तरह-तरह की मछलियां तैर रही हैं। इस नाले में मछलियां जिस तरह डुबकियां लगा रही हैं उसी तरह आधा किलोमीटर की दूरी पर सिगन्ना, अप्पन्ना, कौंडरया, नूकराजु आदि ताड़ी और शराब में डुबकियां लगा रहे हैं।

उस मुहल्ले में जहां दिनदहाड़े प्रकाश नहीं होता, अंधेरा छा गया है। चुनावों के आश्वासनों की तरह आठ में एक दीप जल रहा है।

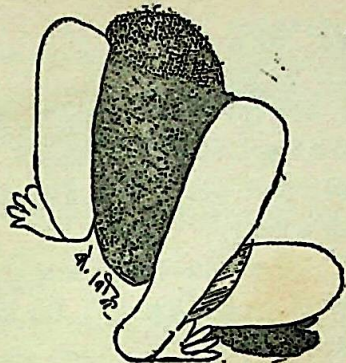
उस दीप की रोशनी में बैठकर चिन्ना राब अरब सागर में नीला रंग भरने लगा।

उन झोंपड़ियों की टेढ़-मेढ़ी गलियों में कुछ रिक्शे ऐसे आए मानों ऊंट सैर करने आए हों। विदेशों से जहाजों पर आए शरीर रूपो रेगिस्तान उन झोंपड़ियों में जो गरीब ओयासिसे हैं, उनके पास पहुँचे हैं।

चिन्नाराब का पिता नागन्ना उस रात को घर नहीं आया। उसकी तलाश में लच्चम्मा निकल पड़ी।

झोंपड़ी से निकलती लच्चम्मा ने चेतावनी दी कि बेटा, सावधान रह ! कुत्ते झोंपड़ी में घुस गए तो बरतनों को चाट जाते हैं। लेकिन नीला रंग लगाने में चिन्नाराब ने भूल की थी। नीला रंग अरब सागर का किनारा पार कर गया था। इसलिए सीमा की गड़बड़ी हो गई। उसके संबंध में सोचते हुए चिन्नाराब ने यंत्रवत सिर हिलाया। उसने मां की बात पर ध्यान नहीं दिया।

कुछ समय बाद लच्चम्मा अपने पति की ढोती-बसोटती ले आई। वह उसे डांटती-उपटती है तो नागन्ना अपनी बीबी को कोस रहा है। झोंपड़ी में कदम रखते ही उसने



खाना मांगा. झिगे का सालन मांगा. इससे लचचम्मा काली भाई बन गई.

“क्या, बकता है रे बदयाश ? मैं सोचती रही कि तू आकर पैसे देगा. लेकिन तू तो पेट भर ताड़ी पीकर वहीं धूल में लोटता रह गया. तमाम कमाई पीने में खर्च करते हो तो खाने के लिए खाना कैसे मिलता ? मेरे पास पैसे होते तो मैं शराब खाने के पास क्यों जाती ? सवेरे मांड पिए बच्चे को कुछ खाना देने की चिंता भी नहीं है तुझे.... जब पिता को यह चिंता नहीं है तो मैं क्या करूं ?”

नागन्ना ने अपनी बीबी की चोटी पकड़कर उसे झुकाया और उसकी खूब मरम्मत की. लचचम्मा फर्श पर पड़कर रो पड़ी.

चिन्ना राव भी रोया, उसे क्रोध भी आया, सोचा कि उसे जल्दी बड़ा होना है, बड़ा होकर पिता को खूब पीटना है. अरब सागर में रंग भरकर मानचित्र को तेलुगु पुस्तक में रखा और पुस्तकों की थैली को एक कोने में फेंककर चला गया.

सामने की झोंपड़ी में सूरक्का रहती थी. शोरगुल सुनकर वह आई. उसने नागन्ना और लचचम्मा को डांटा और डपटा. चिन्नाराव को लेकर वह अपनी झोंपड़ी में गई, उसे खाना खिलाया और दो बिस्कुट दिए.

चिन्ना राव ने पूछा, “ओह, ये कितने बढ़िया हैं बहिन ! तुम्हें किसने दिए ?”

सूरक्का हंस पड़ी.

“किसी ने जापान से लाकर दिया है.” उन दिनों की जब वह भूखी रहती थी, याद करके सूरक्का ने कहा.

सूरक्का ने उसे गले से लगाकर कहा, “अरे, भाई ! तुम कभी भूख के मारे परेशान नहीं होना....तू जो चाहता है, मैं दे दूंगी....खाकर अच्छी तरह पढ़ ले....सुना क्या ?....खूब पढ़ना ! पढ़कर राज के जैसे अच्छी नौकरी कर ले....कमा कर यहां से चला जा....मेरी तरह....अपने मां-बाप की तरह और इस गंदे नाले की तरह मत जी... बड़े मजे से....गोदारी माता की तरह ठाट-बाट से जी....” कहकर उसे चूमती रही तो उसकी आंखों से पानी की बूंदें टपक पड़ीं.

चिन्ना राव को बड़ी खुशी हुई. लगा कि उस समय वह कृष्णकुमार से भी बढ़ कर

है. जरूर पढ़ने का निर्णय कर लिया, सोचा कि बड़ा होने पर नौकरी कर लेनी है. नौकरी करके पैसे कमाने चाहिए, पैसे कमाकर सूरक्का और माता को ले जाकर ए बड़े बंगले में रखना है. पिता, वैकट राव और शराब खाने के मालिक को पास फटकने न देना है.

हस्पताल गए लोग लौट आए. मालूम हुआ कि गेरय्या का पेट सी दिया गया. नल सो रहा है. हसीना बी के सिर में जो जुएं हैं, उन्हें नांचारम्मा बाखूनों से दवा कर मार रही है.

चिन्ना राव ऊंध रहा था कि उसे ले जाने लच्चम्मा आई. सूरक्का कहानी सु रही थी और चिन्ना राव सुन रहा था, इसलिए उसने मां के साथ जाने से इनकार कर दिया.

सूरक्का ने कहा, "बहन, अब यहीं रहने दो."

लच्चम्मा चली गई.

थोड़ी देर में चिन्ना राव सो गया.

ग्यारह बज गए कि बाहर रिक्शा रुकने की आहट हुई. सूरक्का उठकर बाहर आई और कहा, "आज किसी को अंदर आने की इजाजत नहीं है, अंदर बच्चा सो रहा है."

जो आए थे वे चले गए.

सूरक्का अंदर जाकर चिन्ना राव की बगल में लेट गई. उसे लगा कि शरीर और मन की अशांति दूर हो गई.

थोड़ी देर में वह भी सो गई.

हरिजनों की बस्ती में चुप्पी फैली हुई है. कुछ कुत्ते और दो-चार मनुष्यों के सिवा कोई नहीं. सब दवा की दवा नींद उस बस्ती में राज्य कर रही है.

कोई चिल्लाया, बहुत-से लोग चौंकर उठे.

"आग....आग.....लपटें....बाप रे लपटें....बुझाओ घसीट लाओ.....बच्चा सावधान....अरे अप्पन्ना....सामान लाओ....बाप रे ! अम्मा !....कहां है मां.....?"

चिल्लाहटें....डांट....डपट....त्राहि....

किसी ने सिगरेट का टुकड़ा फेंक दिया. उसकी आग से ताड़ का पत्ता सुलग गया. ताड़ के पत्ते से शोपड़ी में आग लग गई.

शोपड़ी की लपटों से सारी बस्ती में आग लग गई.

उस बस्ती के सारे दुःख ने आग के रूप में बढ़कर प्रकट होकर, हजारों जीवों से चंद्रमा को छूने का प्रयत्न किया.

रेत आई, पानी से भरी बाल्टियां आईं. फायर इजंस आए.



ज्वालाएं बुझ गईं. धुआं कम हो गया. जली हुई झोंपड़ियों का काला भस्म पानी से मिलकर यमुना के जल की तरह बह गया.

जब तक गड़बड़ी थमी तड़का हो गया.

सूरजका के साथ-साथ चौंक उठे चिन्नाराव इस शोरगुल को सहमकर देख रहा है, उसकी तंद्रा पूरी तरह नहीं टूटी..

चिन्नाराव को अचानक मानचित्र की याद आई.

वह दौड़कर झोंपड़ी के पास गया. वहां झोंपड़ी नहीं है. उसके स्थान पर राख है. उसका कलेजा धकधक करने लगा. आंखों में आंसू आए.

किसी ने डांटकर कहा, "क्या देखता है रे बदमाश ? क्या चाहिए ? लो, सब की चीजे वहां हैं ! जाकर देख ! तेरे मां-बाप तेरी तलाश कर रहे हैं !"

आश्चर्य से....

दुश्मनी से....

क्रोध से....

दुःख से....

दूँड़ा उस ढेर में नन्हें चिन्नाराव ने.

हनुमान जी ने सीता का पता लगाने के लिए जिस तरह तमाम अशोक वन को छान डाला, उसी तरह उस ढेर की चिन्नाराव ने तलाशी ली.

है !

ओह !

उसकी पुस्तकों की थैली है !

थैली में तेलुगु पुस्तक है !

तेलुगु पुस्तक के पन्नों के बीच सुरक्षित है भारत का मानचित्र ! भले ही वह जरा पिस गया-सा है. दो रंग पेंसिलें भी हैं.

चिन्नाराव ऐसा प्रसन्न हुआ मानो एवरेस्ट शिखर पर चढ़े तेनसिंग नाकें हो.

उसे सांत्वना हुई कि आज ले जाकर अध्यापक को दिखाया जा सकता है.

वह, वहीं दुर्गंध से भरे उस नाले के किनारे घुएं से भरे वातावरण में, राख से भरी पृथ्वी पर बैठकर, झोंपड़ी की बुझती हुई आग की रोशनी में मानचित्र को अपनी गोद में सावधानी से रखकर उसमें पेंसिल से हरा रंग भरने लगा.

पूरब आकाश के चित्र पर बालाकं सोने की पेंसिलों से रंग भरने लगा ■

कन्तड़ कहानो

पैसे का विचार



के. एम. सीतारामय्या

(अनु० के. के. नंबियार)

राव जी को फौरन बेंगलूर जाना चाहिए था. पर अब बस या रेल गाड़ी कुछ भी मिलने की आशा नहीं थी. आखिरी बस शाम के साढ़े-चार बजे जाती थी. रेल गाड़ी तो दुपहर दो बजे ही चली गई थी.

उनको 'टेलीग्राम' मिला शाम के ६ बजे.

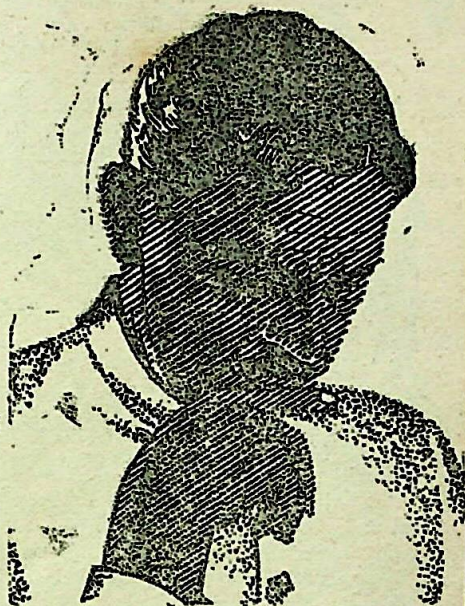
'परीक्षा शुल्क जमा करना है; कल आखिरी तारीख है. फौरन सौ रुपये का टी. एम. ओ. भेज दें.' सुपुत्र ने तार भेजा था. वे क्लब में बैठे ताश खेलने में मशगूल थे, तभी तार उनके हाथ में पहुंचा.

"अभी घर में दे गया था, ले आया हूं," राव जी का छोटा लड़का तार को पिता जी के हवाले करके उनकी कुर्सी के पीछे खड़ा खेल का निरीक्षण करने लगा.

राव जी ने तार पर एक नजर डाली.

"खैर, यह तो हुई मामूली बात." उनके मुँह से निकल पड़ा.

"घर में तुम्हारी मां ने इसे देखा कि नहीं?" उन्होंने पुत्र से पूछा.



“हां.”

“क्या बात है, राव जी,” राव के एक मित्र ने प्रश्न किया।

“कोई खास बात तो नहीं है, सिर्फ़ पैसे की बात है.”

“बेटे ने तार दिया होगा ?”

“हां, और कौन है देनेवाला ?”

“भेज दीजिए न. सी की मांग है या दो सी की ?”

“मांग कितने की भी हो, फिक्र काहे की ? आज उतना पैसा यहीं कमाया है,” एक दूसरे मित्र ने व्यंग्य किया.

“बेटा, घर जाओ.” राव जी ने बेटे से कहा.

“नहीं जाऊंगा” असहमति में सर हिलाता हुआ पुत्र ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा.

“जाने को कह दिया तो जाना चाहिए. लड़कों का यहां क्या काम ?”

राव जी ने तेवर बदलकर कहा.

पर बेटा टस से मस न हुआ. बाप के सामने पड़े हुए नोटों और पैसों की राशि पर नजर गड़ाता हुआ वह खड़ा रहा.

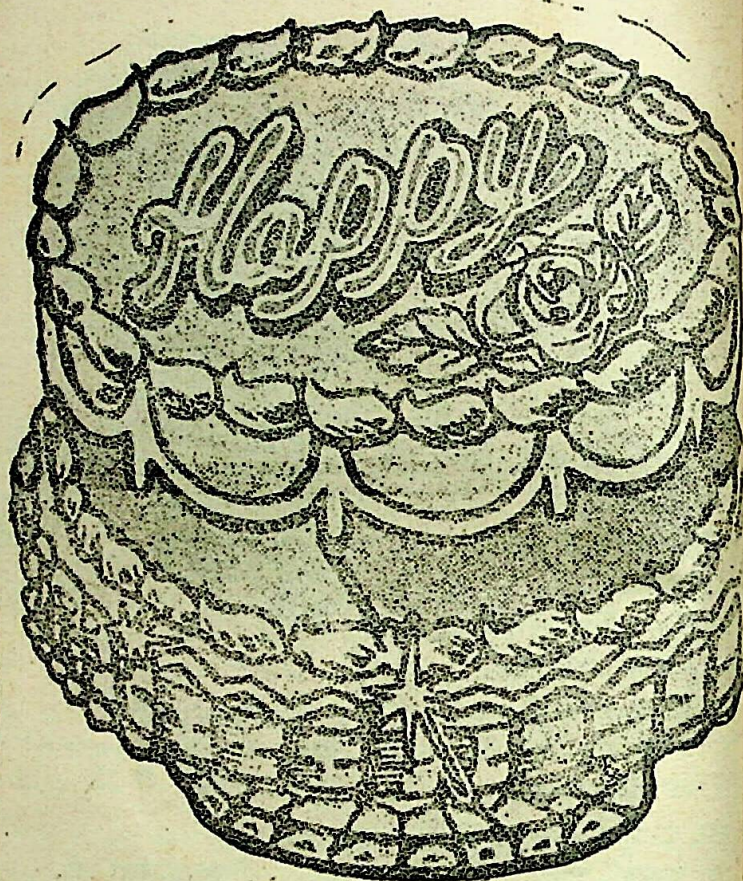
“शाबाश ! जैसा बाप, वैसा बेटा. रुपये लेकर ही जाना. खूब मजा करना. आज तेरे पिता ने हम सब को लूट लिया है.”

मित्र की बात सुनकर राव जी की मन-ही-मन अपने ऊपर गर्व होने लगा.

खिलाड़ियों के चेहरों पर दृष्टि गड़ाते हुए वे गर्व की हंसी हंसे.

“पिता जी.....!” बेटे ने फिर राग आलाप और ललचाई नजरों से पैसे की ओर देखा.

“बस बस; ले जा,” उन्होंने दो रुपयों का एक नोट उसके हाथ में थमा दिया.



बर्थ-डे केक, पेस्ट्री, नमकीन, बिस्कुट

व

मिल्क ब्रेड के विक्रेता

पापुलर बेकर्स एण्ड कन्फेक्शन

भेलूपुर (ललिता सिनेमा के पास) वाराणसी. फोन-३२३१

ब्रांच-शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, दुकान नं. ७ बेनियाबाग, वाराणसी



लड़का घर की ओर भाग गया.

राव जी कुछ देर तक तार के बारे में ही सोचते रहे.

—इसको क्या कहूँ, कुछ भी सूझता नहीं. अभी, परसों ही परीक्षा शुल्क के लिए एक सौ, होस्टल फीस के लिए एक सौ पचास, कुल मिलाकर दो सौ पचास का चेक भेजा है. हजम कर लिया होगा पाजी ने. पिछले साल भी यही किया. फीस का पैसा सिनेमा और होटलों ने चाट लिया और अंतिम घड़ी में तार दिया कि प्राण छोड़ दूंगा. इतनी उम्र हो गई है, अब भी अकल ठिकाने नहीं है इसकी. अब भी भगवान जाने कहां-कहां कितना बाकी रखा होगा. कहता है—परीक्षा शुल्क भरने की कल आखिरी है और यह अंतिम परीक्षा है. खुद जाकर देखूंगा कि कमवस्त ने क्या-क्या अनर्थ कर दिया है.

बेटे के बारे में सोचते-सोचते अनजान में राव जी ने खेल में एक 'रांग शो' कर दिया. दूसरे सब खिलाड़ी ठहाका मारकर इस कदर हंस पड़े, मानो किसी शेर को मारा हो.

राव जी ने छड़ी उठाई. "बस आज काफी खेल चुका."

"यारों डांटो मत, अभी तक जो कुछ कमाया, एक ही बार हार चुका हूँ," उन्होंने हंसते हुए कहा और घर की राह ली.

घर जाकर पत्नी से तार के बारे में विचार-विमर्श किया.

"मैं खूद बैंगलूर जाऊंगा. कोई लारी मिल ही जाएगी."

"रात का समय है, लारी में क्यों जा रहे हैं? रेल से जा सकते हैं," पत्नी ने टोकते हुए कहा.

"मेरे लिए यह क्या कोई नयी बात है? गाड़ी जाएगी रात के दो बजे. अब लेट जाऊँ तो बाद में उठना मुश्किल होगा."

पत्नी उनके स्वभाव से परिचित थी; वह चुप हो गई.

"मालती, मेरी किट तैयार करना," राव जी ने बेटी को आदेश दिया.

फिर राव जी का भोजन और पान-वान हुआ. उन्होंने छड़ी देखी.

"समय हो गया है. मैं कल शाम तक लौट आऊंगा. घर के बारे में होशियार रहना." पत्नी और बच्चों को चेता कर उन्होंने किट संभाली और निकल पड़े.

इलाके की तहसील के पार सरकारी माध्यमिक पाठशाला है. बैंगलूर जानेवाली लारियों को वहीं पर पकड़ना होगा. बस चूकनेवाले उसी पाठशाला की चहारदीवारी पर बैठकर लारी का इंतजार किया करते हैं. राव जी वहां जाकर एक बत्ती के खंभे के पास खड़े हो गए. किट नीचे रखकर जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाई और—

और एक-दो कश लेकर धुआं छोड़ने लगे. ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी. राव जी को लगा कि ऐसे समय यात्रा करने में भी एक मजा है. उनके मन में सुख की एक लहर सी उठी. उनका मन अनायास ही आज के ताश के खेल की ओर चला.

—आज मैदान मेरे ही हाथ रहा. जीतना हो तो यों जीतना है. सब सुस्त हो चले थे. तो, आज पैसा कितना आया ?

ताश में कमाए पैसे को अलग जेब में रखने की उनकी आदत थी. झट से अधजली सिगरेट का टुकड़ा फेंक दिया और जेब से पैसा लेकर गिनने लगे—तिरासी, चौरासी, पचासी, छियासी—छियासी रुपये कमाए थे घंटे भर में ! इतना पैसा कभी भी एक बार भी नहीं मिला था. अंतिम खेल में वह 'रांग शो' करके यों ही दस रुपये गंवा दिए. नहीं तो वह भी बच जाता और फिर खेलकर और सात-आठ रुपये कमाता. बेटे को दो रुपये अलग देने पड़े. जो भी हो, आज अच्छा मौका हाथ आया था.

"बाबू जी, बाबू जी, कुछ दे दो" कोई भिखारी का लड़का हाथ में एक टूटा बरतन लिए हुए उनके सामने आकर खड़ा हो गया.

"ए भाग, भाग जा यहां से." उसकी ओर देखे बिना राव जी ने उसको धमकाया.

"बाबू जी, तीन दिन का भूखा हूं. कुछ न कुछ दे दो, तुम्हें पुण्य मिलेगा." अब तक वह एकदम पास आ गया था.

"भाग जा यहां से. एक बार कह दिया तो जाना चाहिए. ये बदमाश कहीं भी चैन लेने नहीं देंगे."

"बाबू जी", आवाज घीमी करके वह और किसी राहगीर की ओर देखने लगा.

—वह एक 'रांग शो' करके बड़ी बेवकूफी की. पूरे गुट में मैं ही एक हूं जो 'रांग शो' नहीं किया करता. राव जी फिर सोचने लगे, मोहन ने तार दे दी, उसी के बारे में सोचता हुआ यह भूलकर बैठा.

"बाबू जी, कुछ न कुछ दे दो न." बरतन हिलाता हुआ लड़का फिर गिड़गिड़ाते लगा.

"जा, भाग जा ! बदमाश कहीं का !" अबकी बार राव जी के कोप ने उग्र रूप धारण कर लिया.

"बाबू जी,..." वह जाने का नाम नहीं लेता था.

राव जी ने उसे घूरकर देखा. लगभग सात-आठ वर्ष का होगा. एक फटे जांघिये के सिवा उसके बदन पर कपड़े का नाम तक नहीं था. सर के बाल घने होकर बढ़ आए थे और दोनों कानों को और माथे को भी ढके हुए थे.

—मैं सबकी आगाह किया करता हूं कि पहले तय करना होगा कि 'जोकर' कौन सा है; 'रांग शो' करना नहीं. और मैंने ही आज 'रांग जोकर' चला कर....



ताना में कमाए पैसे को जेब में रखने की उनकी आदत थी.

झट से अधजली सिगरेट का टुकड़ा फेंक दिया और जेब से पैसा निकालकर गिनने लगे—तिरासी, चौरासी, पचासी—छियासी रुपये कमाए थे घंटे भर में. इतना पैसा कभी भी एकबारगी नहीं मिला था. अंतिम खेल में वह 'रांग शो' करके यों ही दस रुपये गंवा दिए. नहीं तो वह भी बच जाता—

“बाबू जी, एक पांच पैसा इधर फेंक दो न बाबू जी.”

“यह कहां की बला आ पड़ी. अरे, भाग जा यहां से, मेरे पास पैसा नहीं है. भागता है कि नहीं?” दांत पीसकर रावजी गरज उठे.

“एक पैसा दे दो, बाबू जी ! तुम्हारे पांव पड़ता हूं.”

“बसस्टैंड जाकर काम करो. अभी से यह बुरी लत पड़ी है.” राव जी का मन फिर खेल की ओर गया—मैंने बड़ी जल्दीबाजी की कि दस रुपये का जुमाना मिला. नहीं तो कम से कम वह दस रुपये बच जाते. तब तो छियासी और दस-छियानवे और मोहन को जो रुपये दिए—कुल मिलाकर अठानवे रुपये बन जाते. बस बेटे के परीक्षाशुल्क का पैसा जम जाता !

“बाबू जी....”

“अरे कंबख्त, तू अब भी खड़ा हुआ है? भाग जा यहां से, जाता कि नहीं!” राव जी इधर-उधर देखने लगे, मानो कोई पत्थर या छड़ी ढूँढ़ रहे हों. उनकी आंखें गुस्से से लाल बन गई थीं.

“सिर्फ पांच पैसा.....”

—लगता है, उसने परीक्षा फीस के लिए भेजा पैसा उड़ा लिया है.

—उसका शौक तो देखो, अभी से शुरू हो गया. सिगरेट भी पीता होगा.

सिगरेट की याद आते ही उनको लगा एक सिगरेट पीनी है. जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाई.

—इतना समय हो गया है, एक लारी भी आई नहीं, खीझ मरी निगाहों से उन्होंने घड़ी देखी. भोजन करके आराम से सोकर दो बजे की गाड़ी में जा सकता था. यह तो बला का इंतजार हुआ. कभी-कभी एक के पीछे एक होकर लारियों का तांता-सा लग जाता है. कभी-कभी यों भी....

“बाबू जी...”

“अब्रे, क्यों जान खाता है ? जा, जा मेरे पास छुट्टा नहीं न”, राव जी चीख पड़े.

खड़े-खड़े उनके पैर दुखने लगे थे. पाठशाला की चहार दीवरी पर बैठकर जरा सुस्ताने के इरादे से उन्होंने अपनी ‘किट’ उठाई और उस ओर कदम बढ़ाए.

‘बाबू जी !’ उनको जाते देखकर हताश हो बड़े ही दीन स्वर में लड़के ने पुकारा। राव जी मुड़े नहीं। सिगरेट का लंबा कश लेते हुए जाकर चहारदीवारी पर एक जगह बैठ गए।

निराश हो लड़के ने सिर लटका दिया।

उसी समय झट उसे उस जगह, जहां राव जी खड़े थे, एक कागज का टुकड़ा-सा दिखाई दिया। पल-भर में उसकी आंखें चमक उठीं, चेहरा खिल उठा। लपककर उसने उसे उठा लिया।

दस रुपये का नोट !

बत्ती के पास लाकर उसने उलट-पलटकर उसको देखा। संदेह का कोई प्रश्न नहीं था, वह दस रुपये का नोट ही था।

तुरंत वह राव जी की ओर दौड़ पड़ा।

“बाबू जी बाबू जी,” वह चिल्लाने लगा।

अबकी बार उसकी आवाज में कोई हिचक नहीं थी।

“फिर क्यों आए हो ? सैतान का बच्चा !” राव जी उस पर बरस पड़े।

“बाबू जी, ले लो, आपका नोट है。” हांफता-हांफता वह बोल पड़ा और उनकी ओर बढ़ाया।

“नोट !”, राव जी ने हाथ से सिगरेट का टुकड़ा वहीं फेंक दिया और झट से लड़के के हाथ से उसे छीन लिया।

“हां बाबू जी, नोट है। अभी जब पैसे गिन रहे थे, आपके हाथ से गिर पड़ा होगा。”

विस्फारित नेत्रों से लड़का राव जी का चेहरा देखता रहा।

राव जी ने भी उलट-पलटकर नोट की परीक्षा की, दस रुपये का नोट है !

“कहां मिला तुझे यह ?”

“उसी खंभे के नीचे बाबूजी, जहां आप खड़े थे。”

“खैर, ठीक है。”

वह दस रुपये का बड़े ‘साईज’ का नोट था, उन्हें याद नहीं आई कि वैसा नोट उस दिन उसके पास कब आया था। क्लब में केवल नये नोट ही चले थे।

राव जी ने आश्चर्य के साथ और एक बार नोट की परीक्षा की।

“बाबू जी”, अब लड़के का पेशे वाला स्वर फिर सुनाई पड़ा। उसकी आवाज में इतनी गिड़गिड़ाहट थी, मानों वह भूल गया था कि अभी-अभी उसने दस रुपये का नोट इनके हाथ में थमा दिया है।

— यह नोट जरूर मेरा नहीं, किसी अभागे के हाथ से गिर पड़ा होगा। खैर रहने



दी. वहाँ 'रांग शो' करके दस रुपये से हाथ धोया था, वही वहाँ मिल गया, बस. तो अब कुल, कितना हुआ ? छियासी और ये दस—छियानवे. वह एक रांग शो न होता तो वे दस रुपये भी बच जाते. तब तो बराबर एक सौ ६ और हां मोहन को जो दो रुपये दिए वह भी मिलाकर एक सौ आठ बन जाते ! इतना पैसा आज के हिसाब आ जाता.

"बाबू जी एक पांच पैसा इधर दे दो" लड़के ने मशीनी ढंग में कहा.

राव जी ने अबकी बार जेब टटोला.

"छुट्टा नहीं बच्चे, अब जाओ भी; जिस किसी भी जेब में हाथ डालो, नोट ही निकलता है."

उनकी दुलार-भरी ध्वनि सुनकर लड़के को लगा कि अब ज्यादा तकरार करना उचित नहीं है. मुड़-मुड़कर उनकी ओर देखता हुआ. वह अंधेरे में विलीन हो गया.

राव जी ने और एक बार हाथ में पड़े नोट को गौर से देखा. बत्ती के पास ले जाकर तीसरी बार उसकी जांच की. जमीन की ओर भी एक सरसरी नजर डाली कि वहाँ और कोई नोट तो पड़ा नहीं है ! पर वहाँ कुछ भी नहीं था.

"परवाह नहीं, नोट तो असली ही है. और मजे की बात तो देखो यह नोट उसी लड़के को मिलना चाहिए था ?"

राव जी ने निर्विकार भाव से इधर-उधर देखा—वह लड़का कहीं दिखाई नहीं दिया.

"लैर, रहने दो. आखिर पैसा जो ठहरा. ऐन वक्त पर काम आयेगा ही." बीरे से उन्होंने नोट को जेब के हवाले कर दिया ●

गुजराती कहानी

दूसरा मो. क. गांधी

डा विजय शास्त्री

(अनु० डा कमल पुंजाणी)

उसका नाम तो मोहनदास था, पर शायद ही कोई उसे 'मोहनदास' कहकर बुलाता था. जब उसकी शादी हुई, तब उसके ससुर उसे 'मोहनदास' जरूर कहते थे, किंतु वे ज्यादा दिन जीवित न रह पाए. फिर उसे 'मोहनदास' कहकर पुकारनेवाला कोई न रहा.

उसके पिता का नाम करसन था. इसलिए संक्षिप्त हस्ताक्षर करते समय वह 'मो० क०' ही लिखता था, पर उसका कुलनाम (सरनेम) 'गांधी' नहीं था.

वह हमेशा सोचा करता था कि पुरखों ने अगर 'गांधी' कुलनाम धारणकर लिया होता, तो वह भी गांधी बापू की भांति 'मो० क० गांधी' के रूप में प्रसिद्धि पा लेता.

आखिर एक दिन उसकी यह इच्छा भी पूरी हो गई और वह 'गांधी' हो गया. हरिजन होने के कारण उसे एक स्कूल में चपरासी की नौकरी मिल गई. हस्ताक्षर करते समय उसने 'मो० क०' लिखा तो सब उसे 'मो० क० गांधी' कहने लगे.



प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी स्कूल में २ अक्टूबर के दिन बड़ी धूम-धाम से गांधी-जयंती का समारोह मनाया गया। राज्य के शिक्षा-मंत्री ने समारोह की अध्यक्षता की। अनेक गण्य-मान्य व्यक्तियों ने महात्मा गांधी के आदर्श पर लंबे भाषणों दिए। स्कूल के बच्चों ने मधुर कंठ से महात्मा जी का प्रिय भजन 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' गाकर सुनाया।

भाषण-भजन के बाद चाय नास्ते का दौर शुरू हुआ। नास्ते की टोकरियां जिस कमरे में रखी गई थीं, उसकी देख-रेख का काम चपरासी मोहन को सौंपा गया था। उसका मन कई बार टोकरियों के अंदर झांकने को मचल उठता, पर स्कूल के प्रिंसिपल ने उसे टोकरियों को छूने की छूट भी नहीं दी थी। उसकी जेब में सिर्फ एक रुपये का सिक्का ही बच पाया था, जो बस के टिकट के लिए जरूरी था।

उसे बीड़ी पीने की इच्छा हुई, लेकिन जेब में अतिरिक्त पैसे न होने के कारण वह अपनी छोटी-सी इच्छा भी पूरी न कर पाया।

कार्यक्रम पूरा हुआ। सब मिल-बैठकर चाय-नास्ता करने लगे और कुछ देर बाद मुखवास के साथ गांधी बापू के नाम का चर्वण करते हुए बाहर निकले। बचा हुआ नास्ता पैकेट में बांधकर मो० क० को दिया गया।

मो० क० के मन में फिर बीड़ी पीने की तलब जाग उठी। उसने एक क्लर्क से बीड़ी मांगी, पर वह सिगरेट पीता था। मो० क० एक बार सिर मन मारकर बैठ गया।

सबके चले जाने के बाद उसने स्कूल के दरवाजे पर ताला लगाया और वह घर की ओर चल पड़ा।

बस-स्टॉप पर बड़ी भीड़ लगी थी, फिर भी कंडक्टर ने मो० क० को बस में ले लिया। वह भी हरिजन था और मो० क० को भली प्रकार पहचानता था।

मो० क० ड्राइवर के पासवाली सीट पर बैठ गया। इस सीट के नीचे एक बच्चे ने बमन कर दिया था, इसलिए नीचे से बदबू आ रही थी, पर मो० क० ने उसकी

● विचार पृष्ठ

एक ऐसा समय
 अवश्य आना चाहिए
 जब हम कह सकें
 कि हम
 जितने भारत के
 नागरिक हैं,
 उतने ही विश्व के
 नागरिक भी हैं
 लेकिन ऐसा
 तब तक नहीं आएगा
 जब तक कि
 हम स्वस्थ भारत के
 नागरिक बनन की कला
 नहीं जान लेते



—महात्मा गांधी

श्री गौरीशंकर शुक्लशुक्लवाला
 मो० बंसल केमिकल कारपोरेशन
 जे. १२/१६ ए, रामकटोरा
 वाराणसी के
 सौजन्य से
 फोन-प्रतिष्ठान : ३४३६१०



और ध्यान नहीं दिया.

कंडक्टर सबको टिकट देने लगा. बस सड़क पर दौड़ने लगी और लोग अपने-अपने स्टॉप पर उतरने लगे. मो० क० ने दो-तीन बार दबी आवाज में कंडक्टर को अपने पास बुलाने की कोशिश की, किंतु वह न आया. मो० क० का मन अंदर से कह रहा था कि कंडक्टर न आए तो अच्छा ! वह पैसे और प्रामाणिकता—दोनों को सुरक्षित रखना चाहता था ! टिकट से बचे पैसे बीड़ी खरीदने में काम आ सकते थे.

बस आखिरी स्टॉप पर आकर रुक गई. मो० क० उतरने के लिए आगे बढ़ा. कंडक्टर पहले उतरकर कंट्रोल केबिन की ओर जा रहा था. मो० क० के पैसे बच गए.

लेखकों से निवेदन

रचना भेजते समय उसकी प्रतिलिपि अपने पास कृपया सुरक्षित रखें. केवल वही अस्वीकृत रचनाएं सुरक्षित रखीं और लौटाई जा सकेंगी जिनके साथ लेखक का पता लिखा, टिकट लगा लिफाफा होगा, मात्र टिकट नहीं. 'नये लेखक रचना के साथ अपना व्यक्तिगत एवं साहित्यिक संक्षिप्त परिचय, प्रकाशित रचनाओं, वर्तमान शगल और शोक का उल्लेख करना न भूलें. 'कहानीकर' में प्रकाशित रचनाओं में वाक्त विचार लेखकों के अपने हैं, उनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं-सं०

उसे फिर बीड़ी की तलब पड़ा हुई, परंतु वह बीड़ी की दुकान के बदले कंट्रोल केबिन की ओर बढ़ गया. उसने कंडक्टर के हाथ में रुपये का सिक्का थमाते हुए कहा, "तुम आज मुझे टिकट देना भूल गए हो. ये पैसे लो और टिकट दो."

कंडक्टर क्षणभर विस्मित होकर उसके चेहरे की ओर देखता रहा और फिर टिकट देकर आगे बढ़ा. टिकट को मोड़कर उसने बीड़ी बनाई और उसे होठों के बीच दबाकर कश लेने लगा. वह जानता था कि उस बीड़ी में तंबाकू नहीं थी, फिर भी उसे बीड़ी फूंकने में वेहद मजा आ रहा था. ●

गुजराती कहानी

अकुलाहट



परेश नायक

(अनु० सुशीला जोशी)

“यह मेरा गांव है.” मैंने छोटू की रोएंदार गर्दन पर मुंह बिसते हुए कहा. छोटू आकुल-आंखों से मेरे सामने थोड़ी देर देखता रहा. फिर एकाएक उठकर दौड़ने लगा.

छोटू मेरा ‘पेट’ है.

शारदा और बच्चे छुट्टियां बिताने मेरी ससुराल गए. तब गटू की बचपन की व-
वह छोटू को साथ ले जाए. लेकिन वहां उसकी व-
यूं कहकर मैंने ही छोटू को गटू के साथ जाने

दरअसल छोटू को रोकने के पीछे

का सजीव साधन था. मेरी अकुला-

अलग हो जाने दू तो मेरा एक

मेरी अकुलाहट मुझे कुतर डालेगी,

वैसे छोटू को लेकर शनि-रवि

नहीं आया था. गटू को पता चलेगा

बेकर गांव घूम आए तब वह मुझ पर चिढ़ेगा. गटु को मनाया जा सकेगा.

लेकिन सच बताऊं तो इस पल, छोटू दूर बिजली के खंभे के पास पैर ऊंचाकर पेशाब कर रहा है, और दूर से ट्रेन आती हुई दिखाई देती है, तो अचानक मैं अपने आपको निरा एकाकी, खालीखम, रिक्त महसूस करता हूँ.



बेवजह ही आत्महत्या करने का मन हो आता है. मानों एक प्रकार का मोह-कालसा. सामने से तेज गति से आती हुई ट्रेन मानो एक मोहक बाला है, और अपने गर्माहट भरे बदन में मुझे लपेट लेने के लिए, मेरा आह्वान कर रही है.

मेरे पैर खड़े हुए हैं, मेरे गांव की घरती पर. मुझे याद है, इस वक्त मैं जिस जगह पर खड़ा हूँ, वहां पहले एक तालाब था. बचपन में एक बार स्कूल से वापस लौटते हुए मैं और मनोज उसमें फिसल गए थे. और फिर उस बहाने कीचड़ से होली खेले थे. ट्रेन बिलकुल मेरी आंखों के सामने से बनावदन निकल गई और मेरे पैरों के नीचे की घरती कांप उठी. मेरे समूचे बदन से एक विचित्र फिर भी मीठी कंपकंपी छूट गई. मैं आंखें बंद कर मन-ही-मन कल्पना करता रहा कि मानो ट्रेन ने मुझे अपनी लपेट में ले लिया है, और मैं उसके गर्म-गर्म बदन की गर्मी में पिघल रहा हूँ.

छोटू पूंछ हिलाता हुआ मेरे हृद-गिर्द चक्कर-चक्कर घूमने लगा. छोटू को मैं कैसे समझाऊं कि कुछ क्षणों पहले मैंने क्या अनुभव किया है. लेकिन छोटू की खूबी ही यही है. उसे समझाना नहीं पड़ता. उसकी आंखों में कोई गूढ़ समझ है—एक प्रकार का सघन वैराग्य. अपनी निष्काम आंखों के जरिये जमीन की ओर ताकता-हांफता हुआ खड़ा रहता है तो कभी-कभी ऐसा लगता है मुझे कि जितना छोटू जानता है, वह मैं नहीं जानता.

मुझे मालूम है कि कुछ भी समझे बगैर छोटू सब समझ जाता है—मेरा यह विश्वास जब तक बरकरार है तब तक आत्महत्या के लुभावने काम से मैं बच सकूंगा।

छोटू के कान में दाखिल होने की कोशिश करते हुए एक चौंटे को मैंने अंगुली से धूर किया। मेरी अंगुली के स्पर्श से छोटू ने बिना चौंके मेरी ओर देखा और मेरे पैरों के पास बैठकर हाँफने लगा, जमीन की ओर ताकते हुए।

मौत के विचार मुझे पहले से बहुत ध्यारे लगते हैं। नाक के सूखे मैल को दो अंगुलियों के बीच कोई सावधानी से निकालते हुए बिलकुल मौन होकर जैसे पड़ा रहे, उसी तरह मैं मौत के मोहक विचारों को अपने चित्त में पिछाता आया हूँ, बिलकुल बचपन से।

उस वक्त बाबू जी रेलवे में नौकरी करते थे।

साल में एकाध बार कोई पटरी पर लेट-कट कर मर जाता। बाबूजी को उस दिन घर वापस लौटते देर हो जाती। रात को आकर बाबूजी सारी बातें बताते। घर के सब लोगों को बड़ा दुःख होता, मैं मौत के विचारों में खो जाता और फिर नींद में मर जाता। सुबह उठता तब चौंक जाता।

ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया त्यों-त्यों मौत की माया ज्यादा से ज्यादा छूटती गई—और जिदगी का आघात लगने लगा। जीवन में जो नहीं हो सकता वह सब कुछ मरकर मरे हुए रहकर ही बड़ी आसानी से हो सकना है, ऐसे दृढ़ विश्वास ने मेरे मन में घर बना लिया था और शायद इसीलिए उस दिन रेलवे की पट्टी पर से बा और सुमन के शव घर वापस लाए गए थे। तब मैं जरा भी नहीं रोया था। मुझे भीतर गहराई में यह महसूस होता रहता था कि बा एक दिन ऐसा करेंगी ही। लेकिन मुझे अचरज इस बात का था कि बा आत्महत्या करने गईं तब सुमन को क्यों साथ ले गईं और मुझे क्यों छोड़ गईं ? मुझे बड़ा करने की जिम्मेदारी से बाज आकर दादी कभी-कभी बोल उठतीं कि वह एक के साथ दूसरे को भी क्यों नहीं ले गईं। मुझे लगता कि दादी की बात सही है। मैं भागता हुआ दादी के गले से लिपटकर पूछता—“क्यों, दादी, क्यों....” और दादी मुझे अपनी गोद में खींचकर रो पड़तीं। मुझे दुलार करतीं, और मुझे थपथपाकर सुला देतीं। जितनी बार मैं इस प्रकार दादी की गोद में सोया हूँ, उतनी बार मैं नींद में मरा हूँ। और मौत के पहाड़ों की तलहटी में मैंने बा और सुमन को ज्वार के खेत में आंचल पसारकर पौंक (हरी बालियों के सेंके हुए दाने) खाते देखा है।

मेरी मां ने आत्महत्या की। उसके कई कारण हैं। कुछ तो मुझे दादी ने बताया है और कुछ पड़ोसियों के पास से सुने हैं। पड़ोसियों के कहने के मुताबिक मेरी मां ने पूणिमा की रात को पटरी पर अपनी देह पटक दी। उसका कारण था मेरे बाबूजी के अन्य स्त्रियों के साथ के संबंध। और मेरी दादी के कहने के मुताबिक मेरी मां इस-



लिए मरी क्योंकि सुमन बड़े काका की लड़की थी.

बचपन में दरवाजे की ओर से खड़े-खड़े सुने हुए ये सारे कारण मुझे उस वक्त बेहूदा लगे थे और आज भी उतने ही बेबुनियाद लगते हैं. बचपन में मेरे मन में सवाल उठता था कि सुमन भले बड़े काका की लड़की हो लेकिन वह मां की बेटी भी तो थी न. सुमन मुझे बड़ी अच्छी लगती थी. मेरी मां-जाई बहन थी. मुझसे तीन साल छोटी. मां के साथ वह मरी तब वह तीन साल की थी और मैं छः साल का.

मैं चौदह साल का हुआ तब बाबूजी मर गए. उनका लीवर फट गया था. वे बारू बहुत पीते थे. मेरी मां के मर जाने के बाद तो रोज पीते थे. और फिर मां को संवोधित कर कुछ-न-कुछ बड़बड़ाते रहते थे.

बाबूजी के जाने के बाद मैं बोर्डिंग स्कूल में पढ़ने गया. तब से फिर कई वर्षों तक मैं मौत के साथ का संपर्क गंवा बैठा था. पढ़-लिखकर नौकरी में लगा. शादी की, अपना घर बनाकर सुखी बना. बच्चे हुए. उसके बाद धीरे-धीरे मौत की वह मोहक परछाई फिर से मेरे इर्दगिर्द उभरने लगी.

इस दौरान मां की मृत्यु का रहस्य विलकूल दीये जैसा स्पष्ट हो गया था. सुमन सचमुच बड़े काका की लड़की थी. बाबूजी अनेक स्त्रियों की चोली में हाथ डालने जाते थे. उसका लाभ लेकर बड़े काका भी मां के साथ बरजोरी करते. दरअसल मां सुमन को साथ ले गई-यह अच्छा ही कहा जाएगा, क्योंकि सुमन अकेली रह जाती तो दादी उसे खूब पीटतीं. बड़े काका और बाबूजी भी उसकी देखभाल न करने पर मैं.....

सुमन होती तो मैं भी उसे अपनी तरह नींद में मर जाना सिखा देता और फिर मैं और सुमन दोनों मौत के पहाड़ों की तलहटी में मां को ज्वार के खेत में आंचल पसारकर पोंक खाती हुई देख सकते.

मां सुमन को भी साथ ले गई. उसका सबसे सही कारण तो जो दादी कहती थीं, वही था. नहाकर पूजा कर लेने के बाद दादी कभी-कभी अकेली ही बड़बड़ाया करतीं. वह कहतीं कि सुमन के बजाय लड़का होता तो थोड़े ही हाथ से जाने देती मैं ? दादी की लड़के खूब प्यारे थे. मैं दादी से कहता कि दादी, तुम तो लड़की हो ! तब वह नसवार सूचना छोड़कर मेरे सामने आंखें तरेरतीं.

छोटू मेरे पैरों के पास पड़ा हुआ सो रहा है.

छोटू की आंखें बंद होती हैं तो मुझे ज्यादा अकेलापन महसूस होता है. ऐसा लगता है कि झट आंखें खोल दे तो अच्छा. वरना, अभी दूसरी ट्रेन आएगी. और मेरे पैर बनायास ही उस ओर मुड़ जाएंगे, और मौत की मोहक बाहों में मैं लिपट जाऊंगा.

मौत मुझे जितनी आकर्षक लगी है, उतना ही उसका भय भी लगता है। पहली-पहली बार एक स्त्री के साथ मैं सीया था, तब भी ऐसा ही भय लगा था। और इसी-लिए मुझे मालूम है कि जब मौत का भय जाता रहेगा फिर उसका आकर्षण दुगुना हो जाएगा। मैं इसीलिए छोटू को यहां भी साथ लेकर आया हूँ क्योंकि वह न हो तो मैं निपट अकेला पड़ जाऊँ, और जीवन की तमाम थकुलाहट मुझे घेर ले। फिर एकाएक मौत का अद्भुत सौंदर्य मेरी आँखों के आगे खेलने लगे, और सारा भय छोड़कर मैं मौत की स्निग्ध-श्याम छाती में अपनी जान को सौंप दूँ.....

छोटू अचानक उठकर भूँकने लगा। थोड़ी दूर पटरी के उस पार खड़े हुए एक-दो कुत्तों की ओर मेरा ध्यान गया। मैंने छोटू को पुचकारकर रोकने का प्रयत्न किया। वह माना नहीं। मैंने चिल्लाकर अपनी चप्पल का वार किया। छोटू चप्पल की वार झेलकर मुझसे थोड़ी दूर खड़े-खड़े फरियादी नजरों से मेरे सामने देखता रहा। मैं भी उसके सामने देखता रहा। थोड़ी देर वह मानो कुछ भी न हुआ हो, यूँ मेरी चप्पल मुँह में पकड़कर वह मेरे पास ले आया।

बिना माँ का लडका होना के कारण मुझे खूब प्यार मिला है, सच्चा, झूठा। मौत के लिए मुझे जितना प्रेम है, उतना ही प्रेम मुझे प्रेम के लिए भी है। मैंने एक बार छोटू से कहा था और मुझे विश्वास है कि वह समझ गया था। मैंने उससे कहा था कि मौत के लिए प्रेम और प्रेम के लिए प्रेम में फर्क सिर्फ इतना ही है कि प्रेम के प्रति रहनेवाला प्रेम एक दिन पूरा हो जाता है, और उसके बाद निरा अंधेरा छा जाता है, जबकि मौत के प्रति रहनेवाला प्रेम हमेशा बढ़ता ही जाता है, और जब उसका अंत आता है तो मौत की सारी खुशी मिलती है हमें। छोटू ने अपना एक कान पटपटाकर मेरे सुर मे सुर मिलाया था।

काफी देर हो गई। मुझे अब घर जाना चाहिए। दादी कहेंगी कि तू तो वैसा का वैसा ही रहा। छोटा था तो गाँव की गली के कुत्ते खिलाया करता था और अब बड़ा हो गया और दो दिन गाँव में आया है तो भी सफेद कुत्ते को खिलाने के काम से ही फुर्सत नहीं मिलती।

हां, दादी अभी जिंदा हैं। मुझे जितना मौत का आकर्षण है, उतना ही उसे जीवन का आकर्षण है, हमारे परिवार का, गाँव का घर संभालती, घर के ओटले पर नस-वार सूँघती दिन भर शिकारी कुत्ते की तरह वह बैठी रहती है। अचानक छोटू पटरी की ओर भागा, उस पार से गाँव के कुत्ते जोर-जोर से भूँकने लगे थे। मैं चप्पल में पैर डालकर छोटू के पीछे 'दौड़ूँ' उससे पहले ही वह पटरी के करीब पहुँचने को था। मैं भी मुठ्ठियाँ बसकर छोटू के पीछे दौड़ने लगा। एकाएक मेरा ध्यान सामने से सरपट दौड़ी आती ट्रेन की ओर गया। मैं जोर-जोर से आवाज देकर छोटू को बुलाता



बा पीड़ता रहा,

ट्रेन काफी नजदीक आ पहुंची थी। उस पार के कुत्ते भी पटरी के किनारे पर खड़े-खड़े भूँका करते थे। छोटू को उनकी ओर वंसते हुए देखकर गांव के कुत्तों में एक वादामी कुत्ता उसकी ओर दौड़ने लगा। अचानक ट्रेन का काला एंजिन रुक जाने पर मुझे उसका दिखाई देना बंद हो गया, छोटू ट्रेन के सामने गंदन लगाए भूँक रहा था। मैंने उसके पास जाकर उसे उठाकर एक चाटा मारा। छोटू मेरी ओर निर्लेपभाव से देखता-हांफता हुआ मेरी कमर पर लटकता रहा। ट्रेन निकल गई तो उस वादामी कुत्ते के कुचले हुए शरीर को घेर कर खड़े हुए गांव के कुत्ते दिखाई दिए। छोटू का मानो उस ओर ध्यान ही नहीं था। वे कुत्ते भूँकना भूलकर वादामी कुत्ते की लाश के चारों ओर चक्कर काटते हुए उसके खून को सूँघ रहे थे।

विलकुल अंधेरा हो गया था। उस पार गांव की गलियों में बिजली के खंभों पर जो वस्त्रियां चमकने लगी थीं।

पटरी पार करने से पहले ही अचानक मेरे पैर रुक गए — ठीक वही जगह—वही साँट, जहां मां और सुमन.....कितने साल बीत गए.....करीब तीस साल। मैं छः साल का था, सुमन तीन साल की और मां करीब पैंतीस की। मैं इस वक्त हूँ, करीब सत्तर। उत्तरायण के आस-पास की एकाध ठलती शाम को दादी मुझे पड़ोसी के घर बोलें ले गई थीं। और दूसरे दिन सुबह मां और सुमन को कपड़ों में लपेटकर हम-आन ले जाते हुए मैंने देखा था। लाल कपड़े में ढंका मां का चेहरा शांत होगा, ऐसा मुझे लगा था। और फिर मैं सुबक-सुबककर रो पड़ा था। मुझे लगा था कि सुमन मां को मुझसे ज्यादा प्यारी क्यों थी ?

उसके बाव हार पूणिमा को दादी मुझे पटरी के पास इसी जगह पर ले आती थीं। मुझे के सकोरे में हम दिया जलाते, दादी दाये को मेरे हाथ में देकर मुझसे कहतीं। "जा, रख आ, उसको आत्मा को शांति मिलेगी,"

मुझे तब भी लगता था कि मां के लिए अब शांति बाकी नहीं है। मां के शव को नाम करवाने दादी ले गई थीं। उस वक्त मैंने उसका मुँह देखा था—शांत, स्वच्छ, सुंदर।

पटरी लाँचकर हम गांव की ओर चलने लगे। छोटू एकाध बार पीछे मुड़कर वादामी कुत्ते की लाश की ओर देखकर भूँक लिया। फिर मेरे साथ होने के लिए कुछ दम तेज चलकर, सटकर चलने लगा।

मुझे छोटू पर एकायक दुलार उमड़ आया। मैंने उसे उठा लिया। मैंने चलते हुए उसकी गंदन पर अपना मुँह धिसा। छोटू से मैंने कहा—छोटू तू किसके लिए जीता है ? छोटू मेरी ओर टुकुर-टुकुर देखता रहा। मेरी समझ में नहीं आया कि उसकी आँखों में क्या दीख रहा था—प्रेम की भूख या मौत की माया ? छे

तमिल कहानी

मौन एक भाषा



जयकांतन

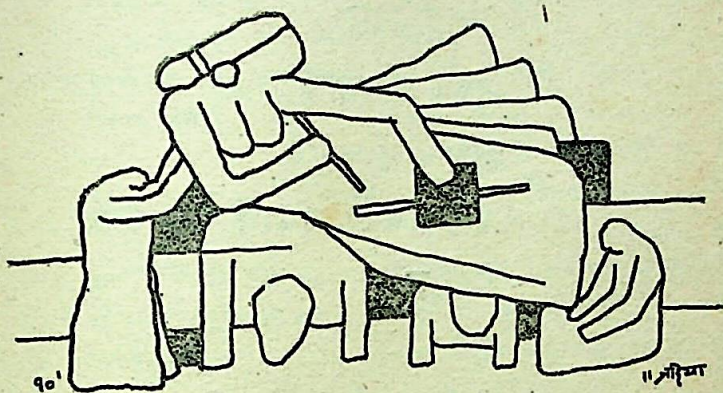
(अनु० सरस्वती रामनाथ)

“वह अकेला आया है. साथ में उसे नहीं लाया है.” बस इतनी बात पर पिता को आश्वस्ति हुई.

पांच साल पहले पिता ने उसे लिख दिया था, ‘अब से समझता हूँ कि मेरे साथ ही बच्चे हैं. तुम हमारे लिए मृत हो. यदि तुम अपना मुँह न दिखाओगे.....वही इस परिवार व जिन्होंने तुम्हें जन्म दिया है, उन हतभागों के प्रति बड़ा उपकार होगा.’ रवि ने पत्र पढ़कर रख दिया. कोई उत्तर न दिया.

इसी तिरस्कृत पुत्र को आज पिता ने घर बुलाया है. उसकी माँ ने जो कांड रचा रखा है, उससे घबराकर, बेटे को तुरंत आने के लिए चिट्ठी लिख दी. आखिर वे क्या करते ? उनको कुछ सूझता ही नहीं था. वे तो बिबश व लाचार थे. चिट्ठी तो लिख दी, मगर दिल-ही-दिल बेचैन हो रहे थे तब उनका वह कपूत, जिसने कुल का नाम डुबो दिया है—कहीं उस मेम साहिबा को भी साथ लेकर न आ जाए. अब बेटे को अकेले गाड़ी से उतरते देखकर उन्होंने आराम की सांस ली.

रवि बिलकुल सादगी में आया था. वही हमेशा की पोशाक. छोटी और शर्ट. वही



चित्र—जड़िया

शालीनता पूर्ण व्यवहार, केवल आकृति में थोड़ा परिवर्तन नजर आया। पाच सालों में वह काफी उम्र का वयस्क-सा लग रहा था। अठ्ठाईस की उम्र के अंदर उम्र उसकी चांद निकल आई थी, चेहरे की रेखाएं थोड़ी गहरी व गंभीर बन गई थीं, मगर रंग में पहले से निखार आया है। सचमुच आकर्षक व्यक्तित्व था। भरा शरीर, गंभीर मुद्रा। सिंगारम पिल्ले ने सोचा—सुंदरता व प्रतिभा दोनों में वह हमेशा ही परिवार में सब से आगे रहा है। उसकी इसी प्रतिभा व बुद्धि पर विश्वास करके ही उन्होंने उसे पढ़ने के लिए शहर भेजा था। उसने डाक्टरी पढ़ी। हां....पढ़ने ही तो वह गया था। मगर आखिर में एक मेम साहिबा को जपनी साथिन बना बैठा।

सिंगारम पिल्ले ने अपने उतरते बेटे को देख तो लिया था, मगर मुंह फेरकर खड़े रहे कि पीछे से आवाज आई।

उन्होंने मुड़कर देखा नहीं—उनकी आंखें भर आईं। ओठों में अर्थ-भरी मुस्कान लेकर चितातुर स्वर में उसने पूछा—“मां की तबीयत कैसी है ? ओह ! आखिर यह क्या कर बैठों वे ? इस उम्र में ऐसा असंगत विचार, कैसे आया था उनके मन में ? आत्महत्या ? मुझे विश्वास ही न हुआ”....वह बोलता गया।

पुत्र के प्रश्नों का उत्तर शायद देना नहीं चाहते हों, पिल्ले ने उसकी ओर देखे बिना ही उदास स्वर से कहा, “अंदर जाकर उसी से पूछ लेना。” आगे वे गुन-गुनाए.... “इस घर में न जाने किस-किसके सिर पर कैसा शौतान सवार है ? प्रारब्ध है प्रारब्ध。” इतना कहकर चबूतरे पर घड़ाम से बैठ गए और अंदर की ओर बढ़ते हुए बेटे की पीठ की तरफ आंखें उठाकर देखा। पल भर उनका मन कड़ा हो आया।

● विचार-पुच्छ

राष्ट्रीयता
 तभी संभव है
 जब
 राष्ट्रीयता यथार्थ बन जाए
 अर्थात्
 जब
 विभिन्न देशों के लोग
 अपने को
 संगठित कर लें
 और
 पूरी एकता के साथ
 काम करने योग्य
 हो जाएं

— महात्मा गांधी

श्री सुकुन्द लाल टंडन
 मे० विश्वनाथ प्रसाद नंदलाल
 रेशम कटरा, वाराणसी के
 सौजन्य से
 फोन-३५३३७७, ३५३३६५



हां....दो दिन पहले की बात है. उसकी पत्नी सहधर्मचारिणी ने सबकी आंख बचाकर कोई विपेली जड़ी-बूटी पीसकर पी थी, लेकिन वह क्यों ऐसा कर बैठी ? इतनी कटुता क्यों आई ? इसका ठीक-ठीक कारण किसी की समझ में न आया. पिछले दो दिनों से परिवार का हर कोई अपना दिमाग टटोल रहा था, मगर कारण न मिला. तब सबको इतनी परेशानियों का जो कारण बनी थी, वे तो एकदम चुप. एकदम मौन थी, मानो गुंगी हो....

सोचा—....इसके प्रति मेरा दिल टूट गया है. ममता स्नेह....सब कुछ सूख-सा गया है. लेकिन वह इसकी मां जिसने इसे अपनी कोंख में जन्म दिया है, मेरे जैसे निर्मम रह पाई ? शायद इसीलिए वह !....पिल्ले सिहर उठे. ओह ! वह कैसा अनर्थ कर बैठी है !

हां....दो दिन पहले की बात है. उनकी पत्नी सहधर्मचारिणी ने सबकी आंख बचा कर कोई विपेली जड़ी-बूटी पीसकर पी थी. लेकिन वह क्यों ऐसा कर बैठी ? इतनी कटुता क्यों आई ? इसका ठीक-ठीक कारण किसी की समझ में न आया. पिछले दो दिनों से परिवार का हर कोई अपना दिमाग टटोल रहा था, मगर कारण न मिला. उन सबकी इतनी परेशानियों का जो कारण बनी थी, वे तो एकदम चुप. एकदम मौन थी, मानो गुंगी हो.

पिल्ले की धर्मपत्नी अलमेलु की कोई फिक्र व चिंता नहीं थी—ऐसी बात नहीं. उनके सीमंत पुत्र सुंदरम की शादी हुए दस साल बीत गए, अब तक वह को गोद सूती पड़ी है. मझने बेटे रवि पर उसे सबसे ज्यादा स्नेह व ममता थी. हां, उसे उससे बड़ी-बड़ी आशाएं थीं. बेटा डॉक्टर की डिग्री लेकर आएगा, बिरादरी में शादी-वादी जम जाएगी. अच्छे घराने से संबंध आएंगे, परिवार का नाम चमकेगा. ऐसी बहुत-सी कल्पनाएं उमने मन में पाल रखी थीं जो एकाएक ताश के गोपुर-सी ढह गईं रवि ने अपने सीनियर डाक्टर एक विदेशी महिला से प्रेम किया और अपने इस निश्चय की सूचना भी दे दी कि वह उसी मेंम साहिबा से शादी कर लेगा.

उसकी गृहस्थी बस गई है, यह खबर आई. तब भी अलमु कुछ न बोली. शादी-शुदा बेटे के प्रति उसके दिल में कैसा विचार था—ईश्वर हो जाने. पिल्ले गरज पड़े—“भूल जाओ उस बेटे को. मैंने उस नालायक से अपना हाथ धो लिया....समझो कि वह मर गया.” पति का यह गर्जन सुनने पर भी अलमु निश्चल बैठी थी, उस मातृ-हृदय में क्या बीत रहा है, कोई न पहचान पाया.

पांच साल गुजर गए, इतने ही सालों के अंदर परिवार में कितनी ही शुभ, अशुभ

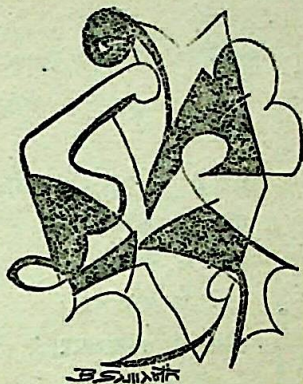
बातें घट गई थीं. रवि के छोटे भाई मुत्तु और सोमु की शादियां हुईं. रवि की बड़ी बहन कामाक्षी के पति की अचानक मृत्यु हो गई. वह ससुराल से अपनी संपत्ति लेकर मायके आ गई. रवि की दोनों बहनों की शादियां भी हो गईं. पंकजम और इंदिरा आस-पास के गांवों में ब्याही गईं. रवि की सबसे छोटी बहन सुशीला, जिसे बहुत लाड़-प्यार से गोद व कंधे में लिए फिरता था, अब यौवन की देहरी पर खड़ी थी, मगर रवि घर-परिवार की बातों से बिल्कुल बेखबर था.

हां, अभी दो महीने पहले पिल्लै की षष्टिपूर्ति (साठवीं साल गिरह) बड़ी शान से मनाई गई थी. अब तक शुभ-अशुभ किसी भी बात की सूचना रवि को न दी गई थी. लेकिन अब की बार, इतने सालों के मौन के उपरांत अलमु का मौन-व्रत टूटा. उसने पति से इतना ही पूछा—'उसको. (उसको पर उसने ज्यादा जोर दिया था) निमंत्रण भेजा है ? इसके उत्तर में पिल्लै की कठोर दृष्टि से बरसते अंगार को देखकर बेचारी सकपका गई थी. उसे मालूम हो गया कि निमंत्रण नहीं दिया गया है. सिर झुकाए सहमी-सी लौटती पत्नी को देखते ही पिल्लै ने जान लिया कि मां के हृदय ने बेटे को माफ कर दिया है. अब अलमु उनके पक्ष में नहीं, प्रतिपक्षी बन गई है. लेकिन उनका मन सुबध था. उन्होंने निमंत्रण नहीं भेजा.

षष्टिपूर्ति समारोह के दो महीने बाद तक अलमु आच्ची में कोई परिवर्तन न देख पड़ा. वह हमेशा के जैसे अपने काम में व्यस्त दीख रही थी. उस दिन के कोलाहल के बीच में एक-दो व्यक्तियों ने उसका मर्म टटोला था. रवि और उसकी गृहस्थी के बारे में पूछा गया. मगर अलमु आच्ची ने इस पर विशेष ध्यान न दिया था. भूल कर भी उसका नाम न लिया था. वह ऐसी खुश लग रही थी कि भरे-पूरे परिवार, बहू, दामाद, पोते, पोतियों के बीच में उस एक का अभाव जैसे उसे बिल्कुल न अखरा हो. पिल्लै ने यह सब देखकर चैन की सांस ली थी.

लेकिन अलमु आच्ची एकाएक यह क्या कर बैठी ? उम्र पचास के लगभग होगी भरा पूरा परिवार है. कोई अभाव नहीं. ऐसी हालत में जड़ी-बूटी खाकर प्राण छोड़ने पर क्यों तुल गई ? पिल्लै की समझ में ही न आया कि अलमु ऐसी शर्मनाक हरकत क्यों कर बैठी ? क्या जिदगो से उसका दिल ऊब गया तो आखिर क्यों ? क्या इसलिए कि बहू की गोद सूनी पड़ी है....या बेटो विधवा बन के घर आ बैठी है ? पिल्लै बेचारे बिता के मंवर में गोता लगाते-लगाते थक गए.

अलमु के इस घृणात्मक कार्य का पता संयोग से (ईश्वर की मर्जी कुछ ऐसी थी. कि) परिवार के लोगों को लग गया था. फौरन डाक्टर बुलाए गए. डाक्टर ने आकर देखा, दवा दी. फिर पिल्लै को अकेले में ले जाकर पूछा—'घर में क्या कोई मनमटाव है



सास-बहू या....?"

पिल्ले के सिर पर मानो वज्र ही टूट पड़ा. हताश स्वर में बोले, "वह बोलती कहां कि कोई झगड़ा-अगड़ा हो. ये तो अधिक बोलती ही नहीं डाक्टर! इस परिवार में इस तरह की घटनाएं. जहां तक मेरा खयाल है....."

चित्र — भाउ समर्थ

"तब तब तो...." डाक्टर ने सिर खुजलाया—"लगता है मझले बेटे के बिछोह के दुःख में अपना संतुलन खो बैठी है, तुरंत उसको तार दीजिए. बेटे का मुंह देख लें तो उनको थोड़ी तसल्ली मिल जाए."

पिल्ले खवाक रह गए. उन्हें इस बात पर बड़ा दुःख हो रहा था कि अलमु के मौन का अर्थ समझने में वे बिल्कुल असमर्थ रह गए, उनको लगा कि वे हार गए हैं....काफी मानसिक संघर्ष के बाद....अलमु के लिए उन्होंने रवि को पत्र दिया और खुद जाकर ससुराल से दोनों बेटियों को ले आए. अब घर लोगों से भरा था. बेटी-दामाद, पोते-पोतियां.....

होश में आते ही अलमु की दृष्टि अपने चारों तरफ खड़े लोगों पर एक बार फिरी. उसने अपने दोनों हाथों से मुंह ढांप लिया और फफक-फफककर रोने लग गई. रुदन के बीच में वह कहती गई—"इन सबको क्यों ले आए हैं आप? मेरा अपमान करने के लिए? ओह! मैं क्या करूं? भगवान! तुमने मुझे क्यों जन्म दिया?...."

पिल्ले चकराए. अब भी उनकी समझ में न आया कि मामला आखिर क्या है? अलमु उन पर क्यों इतनी नाराज हो रही? किसी की सूरत भी उसे क्यों नहीं भाती है?....नेत्रारे पिल्ले ने पत्नी को शांत करने का प्रयत्न किया. मगर कोई फायदा नहीं. अलमु के दुःख का पारावार और भी उड़ेलित होता गया. चौखती-चिल्लाती चैदरे पर जोर-जोर से हाथ मारती हुई वह रोती ही गई. उसमें विद्रूप और व्यंग्य भरा तोखा था कि समझ में न आया कि वह स्वयं अपने को कोस रही है या पिल्ले को. पिल्ले ने आखिर निराश होकर उसे अकेले में छोड़ दिया और खुद दूर हट गए. आज रवि आया है. मगर अलमु को इसकी खबर नहीं थी. वह नहीं जानती थी कि पिल्ले ने उसकी बीमारी की सूचना देकर उसे घर बुलाया है. पिल्ले का विचार था....बिछड़े पुत्र का मुंह देखकर वह संभल जाएगी.

घर



घर ?

घर, हां होता है
छतों के किनारे
राहों के मोड़ पर
मील के पत्थर पर
सपनों में
खमालों में
किताबों में
प्राणों में
पेड़ की छांव में
घोसलों में
डाल पर
नदी के किनारों पर
मझधार में
पत्थरों की ओट में
गुफाओं में
झाड़ियों के किनारे
कगार पर
उठाव पर
ढलान पर
समवर की लहरों पर
धूप में, छांव में
गीत में, गांव में
जहां तुम्हें—
पल भर भी सुकूँ मिले
वहीं घर होता है.

—जया जाववानी

रवि अंदर आया. आंगन में कई खेल रहे थे. उनमें एक को भी नहीं पहचान नहीं पा रहा था. एक नये. आगंतुक को पाकर बच्चे विस्मय विस्फारित चेहरों उसकी ओर ताकते रह गए. एक तो चित्लाते हुए घर के अंदर भागा, 'मां कोई आया है !'

रवि मुस्कराता खड़ा था.

सुशीला ने धीरे से दरवाजे का एक पल जरा हटाकर देखा कि कौन आया. दो दिनों से वही मां के पास दिन-रात रहती है. आंगन में खड़े व्यक्ति पर न पड़ते ही, दौड़ती आई. उसके अघर हिल रह गए. न जाने क्यों..... 'रवि' के शब्द उसके ओंठों में ही अटक गए. माई के हाथ का सूट-केस अपने हाथ में लेकर धीमी आवाज में बोली, 'कैसे भैया ?'.... उसकी आंखें सजल थीं. कुछ दिनों के बाद इस आकस्मात मिलन से अत्यधिक भावुक होती जा रही थी.

रवि हर्ष-भरे स्वर में किलक उठा—
"हाय री ! यह कौन है ? मेरी सुशी ? बिलकुल पहचान ही न पाया.... तुम कितनी बड़ी हो गई हो ! ...हां...हां कहो, मां की तबियत कैसी है ?" बातें करते हुए कमरे की तरफ बढ़ा कि सुशीला ने टोक—
"ना.... भैया ! अब नहीं. अभी-अभी आंखें लगी हैं. जगाना मत. जग जाए तो बस, फिर प्रलय मच जाएगा. आओ, हम पिछवाड़े के बगीचे में चलें. जानते हो भैया ! धापूजी ने नया पंप-सेट लगाया है. पाने



धड़ा-धड़ जल प्रपात-सा गिरने लगता है। सच कहती हूँ भैया !

उसमें नहाओगे तो रेल की सफर की सारी थकावट काफूर हो जाएगी।" सुशीला उसका हाथ पकड़कर खींचती ले गई।

कमरे के निकट आते ही रवि पलभर रुका। खाट पर पड़ी हुई मां की ओर एक बार देखकर, सुशीला के पीछे-रीछे चरु दिया। हॉल में बड़ी भाभी.....उसके भाई सुंदरम की पत्नी राजम ने प्रसन्नता से उसका स्वागत किया।

"आओ ! भैया ! कैसे भूल पड़े अचानक ?"

रवि उसकी ओर देखता रह गया। भाभी ! अरी, एकदम इतनी मोटी कैसे हो गई ? निपुनी रहने से....या कोई बीमारी !....यों मन में विचार करता हुआ बोला....."नमस्कार भाभी ! कैसे हैं ? तबीयत ठीक है न ?".....उसके प्रश्न में भरे व्यंग्य को मानो चतुर भाभी ने ताड़ लिया....बोली—"ओह ! भली—चंगी हूँ.....देवर ! मुझे क्या....."

"ना." रवि ने टीका....."भूल न जाएं कि मैं डाक्टर हूँ."

"मैं कहां भूली हूँ. भूल गए हैं तेरे भाई. कितनी बार कहकर थक गई हूँ कि एक बार तुम्हारे पास आऊँ और अस्पताल में जांच करा लूँ....मगर."

"कोई बात नहीं. अब की मेरे साथ आ जाना."

इतने में शोरगुल मच गया। देखा इंदिरा और पंकजम मय बाल-बच्चे वहां उपस्थित हैं।

"ओह ! रवि भैया ! तुम ! बच्चों ने कहा कोई आए हैं....अरे....इधर आओ ?" पंकजम ने अपने बड़े लड़के को आवाज दी, "देखो ! यह और कोई नहीं. तुम्हारे मामा जो हैं, मामाजी....." लड़का लज्जा में गड़-सा गया कि मां के आंचल में मुंह छिपा लिया।

"भैया ! भाभी को न ले आए ?" इंदिरा ने छूटते ही पूछ लिया। उसके इस प्रश्न पर अप्रतिभ होकर सुशीला ने ओठ काट लिया।

"ले तो आता....मगर बापूजी घर में घुसने देते ?....भगा न देते ?" ठोड़ी पर हाथ फेरता हुआ रवि ने पूछा।

"भगा देते ! सो कैसे ? हम लोग तो हैं न ? आखिर वह भी इस घर की बहू है न ?...." राजम् ने इतमीतान से कहा।

"मुझे भगा दिया तो किसी ने उंगली तक उठाई ? अब उसकी वकालत करेंगी क्या भाभी ?" रवि ने बात काटी और देखा रसोई घर की खिड़की के जरिए एक अपरिचित चेहरा झांक रहा है। बोला "अच्छा, जो बहू घर नहीं आई है, उसकी चर्चा क्यों ?

जो आई है, उनका परिचय तो नहीं मिला." इतने में एक युवती काफी का प्याला ले आई.

"यह है मोना. मुत्तु की बहू'...." राजम ने परिचय दिया फिर खिड़की से हटकर जो द्वार पर आकर खड़ी थी, उसकी ओर देखती हुई बोली—"यह है नलिनी. सोमू की बहू है." मोना के हाथ से काफी का प्याला लेते हुए रवि ने जान लिया कि नयी बहू के पैर भारी हैं. सहज भाव से मुस्कराते हुए पूछा "भाभी ? सीमंत मुहूर्त कब है?...?" मोना का चेहरा सिंदूर पड़ गया. वह आंचल में मुंह छिपाकर भाग गई.

सब हंस पड़े.

पंकजम ने पूछा, "क्यों भैया ! तुम्हारे यूरोप के लोग हर बच्चे के लिए सीमंत का मुहूर्त कराएंगे ?" वह हंסती हुई बोली.... "यह तो मोना का दूसरा बच्चा होनेवाला है. सीमंत का पुत्र, वह देखो."

छाती पर चिपके चावल के कणों को निकालकर साफ करती हुई डेढ़ साल के एक बच्चे को मोना ले आई.

काफी पीकर, रवि ने अपनी शर्ट उतार ली और आंगन के चबूतरे पर बैठ गया. ओरतें उसे घेर कर बैठ गईं. उन्हें अपने इस भैया से हजारों सवाल पूछने थे.

"....दीदी, भाई, मुत्तु, सोमू, घर के दामाद ये सब कहाँ चले गए ? एक की भी सूरत नजर नहीं आती...." रवि पूछता ही रहा कि बड़ी बहन कामांक्षी आ गई.

"रवि ! तुम !" वह चौख उठी — "आओ.....भैया ! तुम कितने निदुर हो गए भाई ! हम सबको भूल ही गए." खर-खराते स्वर में उलाहना देती हुई दीदी उसके निकट घड़ाम से बैठ गई. पल-भर रवि के लिए अपने को संभालना मुश्किल-सा हो रहा था. अपनी बहिन की इस हालत पर उसका दिल उमड़ आया. वह यत्न—पूर्वक अपने भावों को छिपाकर सबसे बातें करता रहा. किसी को समय का ख्याल भी न रहा. सब अपने-अपने सुख-दुःख की बातें बोलती रहीं. रवि उनका समाधान देता रहा. परिवार में हमेशा उसका बड़ा आदर रहता था. वह पढ़ा-लिखा, शिक्षित व्यक्ति है—इस ख्याल से बड़े भाई और बापूजी भी उसकी बातों का ख्याल रखा करते थे. शंका, समाधान, दुःख-सुख सबमें उसी का आसरा लेते. उसने बिजातीय मेम साहिबा को अपनी बहू बना लिया है—इस बात पर यद्यपि इन्हें बेहद दुःख था, फिर भी घर की औरतों की दृष्टि में वह कोई बड़ा अक्षम्य अपराध न लगता था—क्या करे ? वही उसे पसंद आई, शादी कर ली. शादी तो स्वर्ग में निश्चित होती है न ? जिसे जिसकी पत्नी बननी है—वही बनती. सब ईश्वर की इच्छा है—ऐसा तत्व की बातें बोलना वे जानती थी. इसी तत्व ने उनके हृदय के बोझ को हलका भी कर दिया था,



दीदी बोली, “रवि, बुरा न मानना. एक बात पूछना चाहती

हूँ. क्या वह हमारो लड़कियों के जैसे शील-स्वभाव का ख्याल करके तुम्हारे मत पर चलती है ?”

यह सुनते ही सब हंस पड़ीं, मानो दीदी के इस असंगत प्रश्न से वे लज्जित हो रही हों.

“क्यों हंस रही हैं आप लोग?” रवि ने गंभीर आवाज में कहा, “दीदी के प्रश्न में कोई गलती नहीं. दीदी ! रंग और भाषा में वह भले ही विदेशी लगे, वह भी हमारी औरतों के जैसे ही एक औरत है. लेकिन एक बात है. हमारी औरतों के जैसे हर बात में नोक-झोंक निकलना, नाक सिकोड़ना, गलती निकालना, तूल का पहाड़ बनाना यह सब बातें उसमें नहीं देख रहा हूँ. सच कहता हूँ दीदी ! मेरे साथ आओ न ?”

रवि के मुंह से अपनी पत्नी की तारीफ की बातें सुनकर वह ग्रामीण संस्कार में पत्नी युवतियाँ एकदम विस्मय में डूब गईं.

“कोई बच्चा ?” कामाक्षी का प्रश्न पूरा होने के पहले ही रवि ने कह दिया, “नहीं”

“क्यों रे ?”

“सोचता हूँ अभी नहीं चाहिए”.

औरतों ने एक दूसरे पर अर्थमरी दृष्टि डाली.

मुग्न भाव से उसकी ओर अपलक निहारती दीदी बोली: “मां जड़ी बूटी खा बैठे कि तुम्हें देखने का भाग्य मिला हमको. नहीं तो न बापूजी तुम्हें घर बुलाते, न तुम हमें देखने दौड़े आते.”

रवि झट बोला “हां ! मैं भी यही पूछने को था. मां को कौन-सा ऐसा दुःख था कि वे.....”

“दुःख !’ विद्रूप भरे स्वर में दीदी बोली, “तुम और मैं—इस दोनों काफी नहीं है क्या ? रवि ! मां को तो तुम जानते हो. गूंगी बनी, दिल ही दिल में शायद घुटती रहें. पांच साल हो गए, आखिं तुम्हारी सूरत के लिए तरसती रह गईं. सोचा था, परिपूर्ति के समय तुम आओगे. मगर बेचारी की वह बची-खुची आशा भी बुझ गई. बापू जी का गुस्सा ठंडा हो जाएगा, तुम्हें घर बुलाएंगे, ऐसी आशा जो पालती रहें, वह भी मिट्टी में मिल गई. हूँ, रवि ! लगता है आखिर उनका दिल टूट गया है. सोचा होगा, उनकी इस हरकत पर बापूजी का मन, बदल सकता है. सच कहती हूँ रवि ! मां को पिता की सूरत से नफरत—सी हो गई है. उन्हें देखते ही प्रलय मचा देती हैं. मगर बापूजी की हालत पर मुझे बड़ी दया आती है रवि, बेचारे बाहर जितने भी कठोर दीखें. मां की हालत खतरनाक है यह जानकर डोल गए. आजकल बेचारे दिन

७ विचार-पृष्ठ

राष्ट्रप्रेम विश्व प्रेम नहीं
परंतु उसी का बड़ा अंश है।
यह प्रेम का धवलगिरि नहीं
परंतु उसका दार्जिलिंग है,
जहां से धवलगिरि के सुवर्ण
दशन होते हैं। देखने वाले
सोचते हैं कि यदि प्रेम का
दार्जिलिंग, इतना सुंदर है तो
सामने चमकने वाला प्रेम का
धवलगिरि कितना अधिक
सुंदर होगा। राष्ट्रप्रेम विश्व
प्रेम का विरोधी नहीं, परंतु
उसी का नमूना है। राष्ट्र प्रेम
अंत में मानव समाज को
विश्व प्रेम की चोटी तक ले
जाता है।

—महात्मा गांधी

श्री श्रीनान्नाथ भुनभुनवाला

में० भुनभुनवाला आयल मिल्स लि०

भुनभुनवाला भवन

नाटी इमली, वाराणसी के

सौजन्य से

फोन कार्यालय : २११३१२, २११३१३

फैक्ट्री : २८५२२०, ३८५४०२

निवास : २११३१२, २११३१३, २११३१४



घर बाहरी चबूतरे पर ही पड़े रहते हैं। अंदर की ओर झांकने से मालूम होता है। मां के कमरे की तरफ झांकते तक नहीं। चाहे जो भी हो आई, मां को ऐसा नहीं करना था। दुनिया क्या कहती है, जो भी हो ? कहते हैं, बहुतों से तंग आकर, आत्महत्या कर देती थीं। हाय ! हाय ! हमारे घर की बहुतों चाहे किसी से दूरी तरह पेश आएँ, मगर सास-ससुर के प्रति बड़ा आदर दिखा रही हैं। भगवान की कृपा से मां की जान बच गई और हमारा परिवार अपवाद के दाग से बच गया।” कामधनी बोलती ही जा रही थी।

रवि मौन बैठा सुनता रहा। उसका मन पूछ रहा था, क्या मेरे कारण ही अम्मा ने ऐसा.....!!

“अच्छा, आप उठिए न ? धूप चढ़ने के पहले नहाकर आएँ।” भाभी ने उसे बुलाया। सुशीला साबुन का डिबिया और तौलिया ले आई। रवि नहाने गया। पाँच सालों में सारा वातावरण कितना बदल गया है। सारे बगीचे में कटहल का वह पेड़ ही उसे पसंद आया। पाँच साल पहले वहाँ वृक्ष नहीं था। बिना फूल और फलों के सूना-सा खड़ा था। लेकिन, अब उसके तने पर सुई धरने की जगह नहीं, उतने गोल-मटोल फल लटक रहे थे। शाखा-प्रशाखाओं को फैलाकर वह कितनी शान से खड़ा है। शाखाओं से ज्यादा तने पर ही अधिक फल लगे थे। उन खुरदरे फलों पर हाथ फेरता हुआ रवि उस फल के भीठे फाँकों की कल्पना में डूब गया। सोचा, लौटते वक्त अवश्य एक-दो फल ले जाना है। कटहल उसे बेहद पसंद है। रवि को अपनी पत्नी की याद आई।

भोजन के वक्त रवि को मालूम हो गया कि उसके भाई-बहनोई, किसी के हृदय में उसके प्रति कोई मलाल नहीं। समझ गया कि पिताजी की ऐंठ अब तक ढीली नहीं हुई है। उन्होंने उससे न बातें की, न साथ खाने दिये।

दोपहर के भोजन के बाद सब हाल में बैठे बातें कर रहे थे। पिल्लू अपने दोनों बहनों के साथ बाहरी बरामदे में चले गए।

एकाएक अंदर से आवाज आई, “हाय ! रे ! उस पापी मनुष्य ने तुम्हें बुला लिया ! हाय भगवान ! मुझे तिल-तिल करके क्यों मार रहे हैं ये लोग ! मैं मरी क्यों नहीं !” अलमु आचची जोर-जोर से बिलख रही थीं।

दोनों बहनों अंदर की ओर दौड़े। पिल्लू भी उनके पीछे-पीछे हाँफते चले। घर के बाहर जाकर उन्होंने देखा कि अलमु आचची का मन ज़िदगी से उकता गया था। यदि उसे देख लेंगे तो उनका मातृहृदय पूर्ववत् शांत हो जाएगा। पिल्लू ने भी इसी विचार से तिरस्कृत पुत्र की घर बुलाया था। अब अलमु आचची की हालत देखकर वे

सन्न रह गए, मानों काठ मार गया हो। कलेजा मुंह को आ रहा था।

उधर रवि मां के दोनों हाथ अपने हाथ में लेकर स्नेहसिक्त स्वर में गिड़गिड़ा रहा था, “अरे, मां ! मेरी ओर देखो न ? चाहे मैं जहां भी रहूं, तुमसे दूर ही हूँ, मुझे यह विचार आश्वासन देता है कि तुम्हारा प्रेम मुझे छाया देता रहेगा। तुम तो उस वक्त न बोली, एकदम शांत, एकदम मौन रह गईं। मगर अब यह क्या कर बैठी ? मां ! तुम मेरी ओर क्यों नहीं देखती ? मेरा आना तुम्हें पसंद नहीं लगता है ? क्हो ! मां.....”

अलमु आच्ची का आवेश धीरे-धीरे कम होता गया। रुदन-भरे स्वर में सिसकियों के बीच में बोली, “मुझे किसी पर गुस्सा नहीं देना ! क्या कहूं ? मैं मुंहजली बड़ी पापिन हूँ।” अलमु आच्ची के आंसू रुके नहीं। वह बड़ी देर तक रोती ही रही। रवि चुपचाप उनके पास बैठा रहा। कमरे में अब उन दोनों के अलावा कोई नहीं था।

“मां ! अब भूल जाओ कि मैं तुम्हारा बेटा हूँ। मैं एक डाक्टर की हँसियत से तुम्हारी जांच करना चाहता हूँ, जरा अपना हाथ बढ़ाना।”

“नहीं, नहीं !” अलमु आच्ची घबरा उठीं फिर से आंसू का पारावार टूट गया।

“उस ! मां ! यह कैसा पागलपन है ? जरा सन्न कर लेना। नहीं, रौंता नहीं, प्लीज !” हल्की डांट में मां की शांत रहने का आदेश देता हुआ रवि ने मां की नजर देखी। पलकें फैलाकर आंखों को देखा। फिर हल्की मुस्कराहट के साथ द्वार पर खड़ी सुशीला को वहां से हट जाने का इशारा करके खुद जाकर दरवाजा बंद कर दिया।

कमरे के अंदर से अलमु आच्ची का आवेश पूर्ण, उद्भ्रांत स्वर, विलाप, रोदन और रवि की शांत-गम्भीर आवाजें आ रही थीं।

“रवि ! बेटा ! मेरी इज्जत को बचा लो बेटा ! ईश्वर ने ही तुम्हें इधर भेजा है। मेरी लाज रख लो।”

“मां ! जरा शांत रहो ! यह कैसा अंड-संड बक रही हो। ऐसी बातें मुंह से नहीं निकलना !”

“बेटा !.....”

“इसमें इज्जत-बेइज्जत की कौन-सी बात है मां ! तुम भी कैसी पागल हो। इतनी सी बात पर प्राण देने पर तुल गई ! ओह ! मां, अन्य देशों में तो यह गौरव की, गर्व की बात बन जाती। तुम असल में बड़ी भाग्यवती हो। ईर्ष्या के कारण कोई तुम्हारा परिहास करे तो करने दो ! मैं कैसे तुम्हें समझाऊं ! इस उम्र में मातृत्व, असल में बहुत बड़ी बात है। आखिर केवल इस बात पर तुम प्राण छोड़ने को तैयार हो गईं।”

“मां ओह.....मां.....I am glad....that you are.....”



रवि के द्वार खोलने के पहले ही हॉल में पिल्लै जो सबके साथ बैठे थे....चुपचाप वहां से खिसक गए.

सबने बात शायद समझ ली होगी, इस ख्याल से रवि दोनों हथेलियां मलता हुआ बोला—“आप लोगों को एक गुड़ न्यूज हूँ. हमारी अम्मा हमको एक भाई या बहन देकर गौरवान्वित करनेवाली हैं.”

उपस्थित लोगों में एकाएक अप्रीतिकर मौन छा गया. बेंच पर बैठे दोनों दामाद यह सुनकर हंस पड़े. उस हंसी ने अलमु आचची के शरीर पर हजारों सुइयों को एक साथ चुभो दिया.

एक ने कहा—“हा.....हा....शादी हुए अभी दो ही महीने गुजरे हैं ना ?.... हा...हा....”

“इसमें व्यंग और परिहास के लिए कुछ नहीं है.” रवि का स्वर गंभीर था. “कितने ही परिवारों में मां और बेटी का एक साथ प्रसव होता है. सुशीला के बाद सोलह साल तक कोई बच्चा नहीं रहा....अब हुआ तो लोगों को आश्चर्य हो रहा है. इसमें कौन-सी असंगत बात है कि आप लोग मुझे लटकाएं या अपमान की बात समझें ! मां और लोगों ने समझ लिया होगा कि आगे से उनको कोई बच्चा न होगा. वस, इसी कारण से आज इतने भौंचक्के हो रहे हैं ! उधर मां प्राण देने पर हठ कर बैठी है. मगर पूछता हूँ, जो है उसे ना कहने का हमें क्या अधिकार है ? मुझे इस बात पर बड़ा गर्व हो रहा है कि मेरी मां....अपनी इस उम्र में भी....मातृत्व के वरदान को बहन करके मातृत्व का एक आदर्श बनी है जिसमें उसके जन्म की सार्थकता है....”

बोलते-बोलते रवि ने बड़ी भाभी को मुंह सिकोड़ते हुए अंदर की ओर जाते देख लिया. सोचा—बेचारी को अपना दुःख है.....

दो दिन बीत गए.

घर में असाधारण मौन छाया था—दम घोट देनेवाला मौन. कोई किसी से न बोलता. यंत्रवत काम चलता था. मगर उस मौन में भी हर एक की आंखों में, परस्पर मिलती हुई दृष्टि में, हजारों-हजार, अकथित व्यंग्य और ताने प्रतिछायित हो रहे थे. दोनों छोटी बहूओं के अधरों पर गूढ़ हंसी थी. बड़ी भाभी मुंह फुलाए सुस्त पड़ गई; कामाक्षी और सुशीला को लगता था कि वे अलमु आचची से बढ़कर इस बात की बेहूदगी महसूस कर रही थीं, मारे लज्जा के गड़-सी गई थीं. रवि कौ आंखों ने सबको देखा, समझा.

मौन !....मौन...हाय....मौन....इतना कठोर, इतना निमंन हो सकता है ? क्या वह इतनी मर्मभेदी भाषा हो सकती है ? रवि का दिल आक्रांत हो उठा. बंधु, मित्र, दुनिया, समाज को क्यों दोष दें ? जब मां के अपने बच्चे—उन्हीं की कोख से जन्में लाड़ले, ऐसा निर्दयतापूर्ण व्यवहार करें तो दुनिया को क्यों दोष दें ? आखिर ये भी

● विचार-पृष्ठ

मैं भारत का
 एक विनम्र सेवक हूँ
 और भारत की
 सेवा के द्वारा
 संपूर्ण मानवता की
 सेवा कर रहा हूँ.
 अपने राष्ट्र की
 सेवा विश्व की सेवा से
 भिन्न नहीं है,
 यह सिद्धांत स्वीकार
 करने से ही विश्व की स्थिति
 सुधर सकती है
 और हमारी इस पृथ्वी पर
 स्थित राष्ट्रों के
 पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष
 समाप्त हो सकते हैं.

—महात्मा गांधी

श्री बलराम दास अग्रवाल
 से० कन्हैया अलंकार मंदिर
 बलानाला, वाराणसी के
 सौजन्य से
 फोन-३६०३४२



कोई मनुष्य है ? मां को उसी के वच्चे तिरस्कार व अवहेलना की दृष्टि से देखें ! कैसी नीचता है इनकी ?

उसकी मां ने इसी तिरस्कार, अवहेलना व विद्रूप के भय से विष खा लिया है.... इस सत्य का बोध होते ही उसका हृदय भर आया. इस भरे-पूरे परिवार का हर व्यक्ति अपने मौन से उस बेचारी को जिंदा ही जला रहा था....रवि से सहा न गया.... उसकी छाती फटी जा रही थी. वह सीधे अपने पिताजी के पास आया.

“पिताजी ! मेरी घृष्टता माफ कीजिए. मां की वेदना को मैं समझ गया हूँ. क्या कहूँ ? हमारे लोगों का विचार और दृष्टिकोण इतना संकुचित है कि वे मातृत्व का आदर करने में भी असमर्थ रह गए हैं. यहाँ, इस वातावरण में रहना उनके लिए भारी पड़ जाएगा. इसीलिए कहता हूँ. मैं उन्हें अपने साथ ले जाना चाहता हूँ.”

जिस पुत्र को उन्होंने तिरस्कृत कर दिया था, जिसके प्रति अपने दिल को पत्थर बना लिया था, उस पुत्र के मुँह से निकले शब्दों को सुनकर उनका पितृ-हृदय वात्सल्य और ममता से पसीज उठा था. फिर भी उनका पौरुष पिघलने को तैयार न था. उसी ऐंठ भरे स्वर में कहीं और ताकते हुए बोले—“आखिर वह तुम्हारी मां है ! मेरी सम्मति लेने की क्या बात है ? वह सहमत हो तो ले जाना.”

मां को समझाने में रवि को पूरा एक दिन लगा.

“जो मेरी भाषा भी नहीं जानती....उसके पास जाकर अपमानित होना, यह भी मेरे भाग्य में बदा है क्या ?” अलमु ने रोना शुरू कर दिया.

“मां ! यहाँ अब जो तुम्हारा तिरस्कार व अपमान कर रहे हैं, वे किस भाषा में बोल रहे हैं ?....चुपचाप....बुत बने....बेजबान होकर, जैसे अपनी उपेक्षा व परिहास के विपरीत वाणों से तुम्हें मार रहे हैं, वैसे प्रेम और स्नेह को एकदम सूक बने दिखा नहीं सकते ? मां ! किसी का तिरस्कार करने व प्यार करने में भाषा की क्या जखुरत है ? सोचो मां !”

अबकी बार अलमु आच्ची ने कोई प्रतिवाद न किया. बेटे का हाथ पकड़ कर शांति बहाती रहीं.

गाड़ी द्वार पर आ गई.

अलमु आच्ची गाड़ी में जा बैठीं. पिल्लै मौन खड़े थे. विदा देते वक्त उससे क्या कहें—क्या न कहें....यह तो उनकी समझ में ही न आ रहा था. दोनों ने एक दूसरे को मूक दृष्टि से देख लिया. बोले नहीं—केवल मौन, मूक दृष्टि.

“बापू जी ! अब विदा लूँ ! फिर्न न करना. मां का मैं पूरा-पूरा ख्याल रखूँगा. अच्छा ! चलूँ.”

अब भी पिल्लै बेटे से एक शब्द न बोले. बोलने को मानो शब्द ही न मिल रहे थे. उनका हृदय आँखों में झाँक रहा था. गाड़ी आँखों से ओझल होने तक देखते हुए मौन, मूक खड़े रहे ! एकदम मौन ! एकदम मूक !

ओड़िया कहानि

खोल



भूपेन महापात्र

(अनु० वासन्ती रथ)

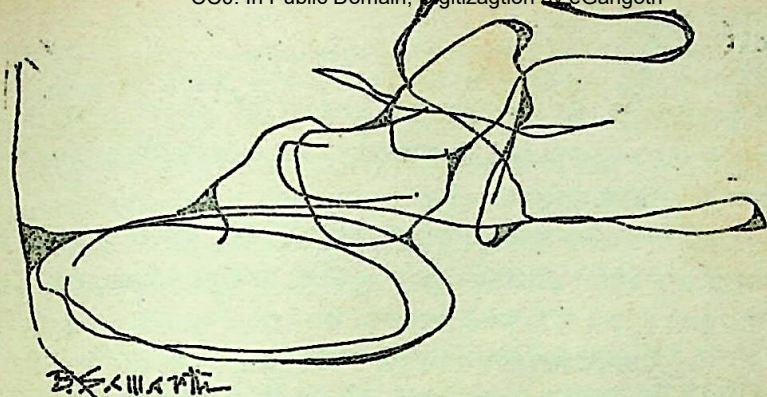
जूनई की घण्टकती हुई दोपहर—जैसे आग बरस रही हो. राउरकेला के आसपास से आग के गोले गिर रहे थे. पेड़ पीछे जलकर राख हो गए थे. मिट्टी में घास का नामोनिशान न था.

लोगों का कहना था कि उस दिन वर्ष का सर्वोच्च ताप था.

गुंजरपुर से राउरकेला की ओर जानेवाले राजमार्ग पर केवल हम ही दो व्यक्ति, मैं और मेरा सहकर्मी भूयां बाबू राजमार्ग को मरम्मत के काम की ओर काम करने-वाले मजदूरों का मुआयना करते हम वहां पहुंचे थे.

काम धीमा चल रहा है....पैसा बरबाद हो रहा है....काम में गड़बड़ी है....ऐसी अनेक शिकायतों से हम परेशान थे. उस काम को लेकर दैनिक पत्रों में भ्रष्टाचार की काफी चर्चा थी. राजनीतिक नेता विधान सभा में प्रश्नवाणों की बौछार करने को धक्कियां दे चुके थे. हमारे मस्तक के ऊपर लटकी हुई तलवार आकस्मिक प्रहार के लिए तैयार थी.

बरसती आग के तिरछे बारों को झेलते हुए हम दो एक मोटर साइकिल पर साधारण गति से आगे बढ़ रहे थे, क्योंकि आग के तीर हमारे मुंह पर बे-रोक-टोक बरस रहे थे.



पत्ररहित सूखे एक शाल वृक्ष के नीचे हम मोटर साइकिल रोककर खड़े हो गए। वाटर बॉटल से पानी निकालकर मैंने भूया बाबू को दिया, मस्तक और मुंह पर छोटा मारने के लिए। मैंने भी अपना मुंह धोकर मोटर साइकिल के बक्से से कटे हुए गोबू के टुकड़े और नमक निकाला। दो टुकड़े अपने मुंह में डालकर दो उन्हें दे दिए। हम फिर से चलने लगे। हमें कम-से-कम दस किलोमीटर का रास्ता और तय करना था और छानबीन के बाद आज ही शाम से पहले सुंदरगढ़ लौट जाना था।

करीब एक किलोमीटर जाने के बाद नयी अलकनारा की परत देखकर लगा कि एक-दो दिन पहले यह काम हुआ होगा।

भूयां बाबू ने कहा, “तो काम और बहुत बाकी है。” मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। आग का एक झोंका जैसे मेरे मुंह पर आ गिरा, मैंने कहा, “मोटर साइकिल और नहीं चलाई जाएगी। मैं गिर जाऊंगा, ऐसा लगता है。”

भूयां बाबू ने कहा, “वह देखिए, आगे लोग काम कर रहे हैं, बस वहां तक चले बलिए。”

एक पेड़ के नीचे हाथों में एक छाता लिए ठेकेदार रमेश शर्मा का मुंशी खड़ा था पांच-छह रेजा और कुली पैरों में मोटे-मोटे जूते पहने अलकनारा डाल रहे थे और कुछ लोग चालू रोड-रोलर को पोंछ रहे थे।

पास ही एक अस्थाई शेड था। वहीं जूनियर इंजीनियर और उनके सहयोगियों का आफिस था। थोड़ी दूर पर लंबे-लंबे गड्डे बनाकर उसमें अलकनारा पकाया जा रहा था। चारों ओर गड्डों में तरल अलकनारा भरा पड़ा था। थोड़ी-सी असावधानी होते ही उसमें डूब जाने की आशंका थी। उसमें एक बार पैर डाल दी तो फिर मुनित पाना संभव नहीं, कई दिनों तक अस्पताल में तो रहना ही पड़ेगा, साथ ही चलने क समता हमेशा के लिए चली न जाएगी, यह कहना भी मुश्किल। उस तरह की विपदाओं

से हम परिचित थे. कई स्थानों पर तरल अलकतरा सूखे पत्ते और घासफूस से ढक गया था और कई स्थानों पर तरल अलकतरा की धारा ज्वालामुखी से निकलनेवाले लावा की तरह बह चली थी.

बड़ी सावधानी से चलते हुए हम उस ऑफिस में पहुंचे. जूनियर इंजीनियर जेना बाबू ने टेबल पंखे को हमारी ओर घुमाकर मुंशी को दो कच्चे नारियल, गन्ने का रस और कुछ ठंडा लाने के लिए भेज दिया.

“यहीं आसपास मिल जाएगा यह सब ?” मैंने पूछा.

“हां, वस थोड़ी ही दूर पर. वह अपनी ‘लूना’ से जाकर ले आएगा.”

घड़े का ठंडा पानी पीकर हमने बात आरंभ की. जेना बाबू ने कहा, “कुछ दिनों से काम करने के लिए लोग नहीं मिल रहे हैं. इस कड़ी धूप में काम करने के लिए कोई आ ही नहीं रहा है. दो दिन पहले दो रेजा गिर पड़ी थीं, उसे ट्रक से घर भेज दिया.” इंजीनियर ने अपनी आसमर्थता प्रकट करते हुए कहा, “इस धूप में काम की गति बढ़ाना संभव नहीं है.”

मुंशी जलपान लेकर आ पहुंचा. हमने पहले नारियल पीकर ठंडे ‘पानीय’ को दूसरी बार पीने के लिए रख दिया.

भूयां बाबू ने कहा, “किसी भी तरह अधिक मजदूर लगाकर इसी मई के महीने में काम पूरा कीजिए, नहीं तो हालत खराब हो जाएगी.”

जेना बाबू भूमि की ओर ताकने लगे. अस्थायी आफिस के दी बटे एक फुट की खिड़की से मैं बाहर की ओर देखने लगा. लोग लगातार काम किए जा रहे थे. अलकतरा से सने पैर कोढ़ियों के पैरों की तरह लग रहे थे. इस तरफ एक मजदूर तरल अलकतरा बाल्टी में भर-भरकर रास्ते के ऊपर डाल रहा था. गड्ढों में पड़ा अलकतरा पानी की तरह चमक रहा था.

चारों ओर अग्नि देव का तांडव था. घड़ी देखी. दिन के दो बज रहे थे. मेरी दृष्टि दूसरी ओर चली गई. केश-रहित एक कुतिया कुछ सूखे पत्तों के ऊपर सोई थी और उसका छह-सात दिन का पिल्ला उसका दूध पी रहा था. शायद दूध नहीं उतर रहा था. चिढ़कर कुतिया उठ खड़ी हुई और पिल्ला हल्की हवा में उड़नेवाले उन सूखे पत्तों से खेलने लगा.

मैंने फिर से बातों की ओर ध्यान दिया. बात कहां से कहां पहुंच गई, इस बात की सूचना जेना बाबू को दी. नौकरी चले जाने का भी भय है, यह बता दिया. उसने मुझे सारे कागजात दिखाए. भूयां बाबू ने कोल्ड ड्रिंक लाकर टेबिल के ऊपर रख दी. पाइप होठों से लगाकर चंचं करके मैं पीने लगा और आराम की सांस ली.



अचानक उस पिल्ले की कू-कू की ध्वनि चारों ओर मुखरित हो उठी। जैसे कोई उसकी छाती चीर रहा हो। मैं चौंक गया, अरे क्या हुआ ? भूयां बाबू भी झरोखे के करीब आ गए। जेना बाबू स्वाभाविक स्वर में बोले, “वह कुछ नहीं है सर! वह जो पिल्ला अभी वहां खे रहा था, शायद पिछले अलकतरे में गिर गया होगा।”

खिड़की से मैंने उस ओर नजर दी। वहाँ, अरे हां, कितना बीभत्स था वह दृश्य ! कितनी कष्ट, हृदय-विदारक थी वह चीत्कार। गरम अलकतरे में गिरकर वह पिल्ला छटपटा रहा था। और उससे बाहर नहीं निकल पा रहा था।

मैं उसकी ओर दौड़ता हुआ निकल गया। मेरे पीछे-पीछे भूयां बाबू, जेना बाबू और मुंशी भी। वह पिल्ला वहां से जैसे कह रहा था—‘मर गया, मर गया, मुझे बचाओ !

जेना बाबू मेरा रास्ता रोककर खड़े हो गए, “यह आप क्या कर रहे हैं सर ! वह कुत्ते का पिल्ला छूते ही काट खाएगा।”

मुझे रुकता हुआ देखकर उन्होंने कहा, “ऐसे ही तीन-चार पिल्ले मर गए हैं। हम क्या कर सकते हैं ?”

मैंने देखा कि वह पिल्ला बाहर निकलने का भरसक प्रयत्न कर रहा है। लेकिन थपसो ! तरल, गर्म पिच में उसका पैर, पेट, मुंह सब एक जैसा हो गया है। कभी समाप्त न होनेवाली थी उसकी चीख। उसकी तकलीफ और रुदन का स्वर दिगंत-प्रसारी था। मैं क्या करूं, कुछ सोच नहीं पाया। यदि सच ही वह मुझे काट ले तो ?

तभी उसकी मां तीर की तरह उसकी ओर दौड़कर पहुंच गई। अपने बच्चे की हालत उसने देखी। मां और बच्चे की आंख मिलते ही दोनों एक साथ रोने लगे।

उसके बाद उसने अपने आपको तैयार कर लिया। तरल अलकतरा के स्थान से थोड़ी दूर की मिट्टी को उसने कुरेदकर एक छोटा-सा गड्ढा बना दिया। उसी गड्ढे में अपने आगे के पैरों को रखकर वह पेट के बल सो गई। धीरे-धीरे खिसकते हुए उसने पिल्ले को गले से पकड़ा और एक प्रबल चीत्कार के साथ पल भर में उसे खींच लिया।

पिल्ले को बाहर निकालकर वह हमारी ओर देखने लगी।

मुझे लगा, जैसे वह मुझसे कह रही है—तुम मनुष्य हो ! इतना भी नहीं हुआ तुम से ! अगर तुम्हारा बच्चा होता तो ?

किसी ने जैसे मेरे गाल पर थप्पड़ मार दिया—सच, क्या मैं मनुष्य हूं ? सबसे ऊपर ? मेरे ऊपर कोई और नहीं है ! किसी ने कहा था मनुष्य के भीतर देवत्व है। यही है मेरा देवत्व ! इसे ही लेकर मैं गर्वित हूं ?

कुत्ते का वह पिल्ला धीरे-धीरे पेड़ के नीचे जाने लगा। आगे बढ़ते ही घास-फूस और मिट्टी का एक अस्थायी आवरण उस पर बनता गया। थोड़ी दूर पर उसकी मां पेट दिखाकर सो गई थी, जैसे बुला रही हो, “आ, दूध पीएगा ? आ !”

मैं फिर से अपने आपको देखने लगा। लेकिन न जाने क्यों मैं अपने आपको देख न पाया। मेरे सामने मेरा ही शरीर एक विचित्र रूप धारण कर चुका था। ७

बांग्ला कहानी

प्राण-पिपासा



समरेश वसु

(अनु० देवलीना)

जुलै पक्ष की दुयौं ग भरी एक रात की बात बता रहा हूँ. यह दुयौं ग आकाश में बादल गरजकर, बिजली चमककर, मूसलाधार पानी बरसने की तरह नहीं था. एक मुर से बीमार के कराहने की आवाज की तरह पिछले कई दिनों से पानी लगातार बरसता जा रहा था और उस पर तूफान जैसी पुरवैया. शहर की गलियाँ कीचड़ में डूबकर गंदी नालियाँ बन गई थीं. दुर्गंध और कूड़े-करकट से भरो हुई. अनगिनत मकान एक दूसरे से सटे हुए. घुटन भरा दबाव.

रेल की लाइन के किनारे मैदान पे बनी पगडंडी पकड़कर में जा रहा था पर इतनी बुरी तरह से भीग चुका था कि शरीर की गर्मी पूरी तरह खत्म हो चुकी थी. मैदान से गुजरती हुई हवा सीधे शरीर में बिघ रही थी. दांत से दांत बजने लगे थे. बुरा हाल देखकर बाएं मुड़कर मैं शहर में घुस पड़ा. कम-से-कम हवा का झोंका तो कम लगेगा.

यह जूट मिलवाला शहर मानो ऊंध रहा था. अजीब-सी चुप्पी छाई हुई थी. कोई और दिन होता तो शायद कुत्ते दौड़ते-भूँकते हुए नजर आते. आज बस एक



कुत्ता मजदूरन एक-आध बार गरर-गररकर अपने बदन के पानी को झाड़ने में लगा था। गृहस्थी का तो कोई पता ही नहीं था। किसी खिड़की या दरवाजे की फाक से रोशनी तक नहीं दिखाई दे रही थी। सड़क की बत्तियाँ किसी काने जानवर की बुझी-बुझी-सो एक आंख से ताक रही थीं। अंधेरा उस रोशनी से जरा भी नहीं घटा था।

चित्र—विमल विश्वास

रास्ता थोड़ा अटपटा-सा लग रहा था, पर मैं उत्तर की तरफ बढ़ रहा था, इतना मालूम चल रहा था। सड़क के किनारे से जा रहा था। सड़क नीची थी, पानी इकट्ठा हो गया था। किसी बरामदे में सोकर रात गुजार दूँ, उसका भी कोई उपाय नहीं दिख रहा था क्योंकि जिसे बरामदा कहते हैं, यहाँ वैसा कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था। और बस्ती का जो हाल था, देखकर लगता था कि एक भी कमरा सूखा नहीं होगा। यह भी मुझे मालूम था कि इन कमरों में से किसी एक में भी सोने से लोग तरह-तरह की बातें उड़ाएंगे। पुलिस भी बेअदबी से बातें करेगी।

मुझे नैहाटी की रेलवे कालोनी में किसी दोस्त के यहाँ जाना था। वहाँ कम-से-कम कई दिन की खुराक, कुछ सूखे कपड़े और इस भयंकर पिचपिची ठंडी रात में थोड़ी जगह तो मिलती ही। पर अब लगता था कि मैंने अड़्डे को छोड़कर बहुत गलती की थी। पर मेरे सामने कोई उपाय भी नहीं था। खासकर अड़्डे के मरियल दोस्तों में से जब एक मर गया, उसी समय से मैं सोच रहा था कि थोड़ी सांस लेने के लिए कहीं नकल जाऊंगा। दोस्त का मरना शायद ठीक ही था। इसके सिवा और हो क्या सकता था, मेरी समझ में नहीं आता। जीने के लिए जिन चीजों की जरूरत होती है, उनमें से कुछ भी नहीं था उसके पास। फिर भी छाती में....खैर, यह कोई बात नहीं पर वह मुझे एक चीज देकर गया था—छोटी-सी चीज। पर लगता था उसका बोझ पहाड़ समान है। वह बोझ था... अरे बाप रे, हवा ने मानो रीढ़ की हड्डी की नींव को हिला डाला। बारिश भी तेज हो गई। अचानक। इतने समय के बाद बादल का

गरजना भी सुनाई दे रहा था। इस बार दांत ही नहीं, हड्डियां भी आपस में टकरा रही थीं। पेड़ के सूखे जर की तरह झूलकर चौड़ा हो गया था। जूट मिल का माल रेल साइडिंग के पास से चलान किया जाता था। उसी चौमुहानी के मोड़ पर आकर मैं खड़ा हुआ। जगह सुनसान थी। पास में भैंस का एक खटाल था। वहां घुंस्सू या नहीं, सोच ही रहा था कि पीछे से सुनाई पड़ा “अरे, अरे, इधर देखो।”

भूत-प्रेत पर विश्वास न करने पर भी मैं अचानक चौंक उठा। कोई मुझे बुला रहा था क्या ? उस भयंकर बारिश में मैं आवाज के मालिक को ढूँढ़ने लगा। दाहिनी तरफ टिमटिमाती हुई एक रोशनी दिखाई पड़ी। आधे बंद दरवाजे के पार एक मूर्ति-सी दिखाई दी। हां, कोई औरत ही थी। वह मुझे नहीं बुला रही होगी। मैंने फिर आगे बढ़ना चाहा, पर फिर तभी सुनाई पड़ा “कहां चले ? आओ न。”

मैं रुक गया। पूछा — “मुझसे कह रही है ?”

जवाब मिला ? “नहीं तो सड़क पर और कौन है ?”

उसके बात करने के ढंग से मैं चौंक पड़ा। ओह ! जब मुझे मालूम चला, यह रास्ता ही खराब था; पर ठीक बेइयाओं का मुहत्ला भी नहीं था। लेकिन ऐसा ही कुछ था। आस-पास मजदूरों की बस्ती भी लगी हुई थी।

मन-ही-मन मैं हंस पड़ा। बड़े खास ग्राहक को बुला रही थी वह। उसने वैसा ही मुझे सोच लिया होगा लेकिन सच में, इस समय अगर मैं उसके दरवाजे पर थोड़ा खड़ा भी रह सकता तो, मैं आगे न बढ़ सका। लड़की बोली, “अरे बाबा, तू काना है क्या ?”

मन-ही-मन मुसकराकर मैंने सोचा—चला ही क्यों न जाऊं। मेरा हाल देखकर वह खुद ही मुझे भगा देगी। किसी तरह बारिश थोड़ी कम होने तक सर पर अगर छत मिल जाए तो क्या बुरा है। और वैसे भी, नैहाटी तो दूर रहा, मैं भैंस के खटाल से भी आगे नहीं बढ़ पाऊंगा। ‘जान बची तो लाखों पाए’—इस बात पर जिसे यकीन नहीं, उसके बारे में यही समझना पड़ेगा कि उसका ऐसी परिस्थिति से मुकाबला ही नहीं हुआ।

मैं उस औरत के दरवाजे पर उठ गया। आजीवन के संस्कार मुझे रोक रहे थे। मैंने पूछा—क्यों बुला रही हो ?

“कहां का मर्द है रे。” मुसकराहट लिए नाराजगी के साथ वह बोली “अंदर आओ न。”

अंदर घुसते ही उसने दरवाजा बंद कर दिया। बरसात की आवाज थोड़ी दब गई। हवा के अंदर आने का भी कोई उपाय नहीं था। मैंने देखा, खपरैल की छत से पानी



भूत-प्रेत पर विश्वास न करने पर भी मैं अचानक चौक उठा।

कोई मुझे बुला रहा था क्या ? उस भयंकर बारिश से मैं आवाज के मालिक को ढूँढ़ने लगा। बाहिनी तरफ टिमटिमाती हुई एक रोशनी दिखाई पड़ी। आगे बंद दरवाजे पार एक मूर्ति-सी दिखाई दी। हाँ, कोई औरत ही थी। वह मुझे नहीं बुला रही होगी, मैंने फिर आगे बढ़ना चाहा, पर फिर तभी सुनाई पड़ा “कहाँ चले ? आओ न....”

घूँसे से फर्श गीली हो गई थी पर तहतपोश पर बिछा बिस्तर भीगा नहीं था। कमरे में दो-चार मामूली चीजें थीं—थाली, गिलास और सुराही।

“कहाँ मरने जा रहा था, दुर्योग सर पर लिए ?”

वह इम तरह से बोली मानो मैं उसका कितना पुराना परिचित हूँ।

मैंने कहा, “बहुत दूर से आ रहा हूँ। पर—”

“समझ गई.” ओठ दबाकर वह हँस पड़ी। बोली “पूरे कमरे में कीचड़ फैला दिया. गीले कपड़े उतार लो. जल्दी.”

एक तो ठंड, ऊपर से इस आकस्मिक झमेले में फँसकर मैं बरफ की तरह जम गया था। मैंने कहा “लेकिन मेरे पास तो....”

उसने कहा “मैं तुम्हें क्या खाक पहनने के लिए दूँ. गीली कमीज उतार दो.”

अगर खोल सकता तो अच्छा ही होता....लेकिन....फिर मैं तेज आवाज में बोला, “खामखाह मुझे बुलाया. पाकिट मेरी खाली है.”

सुनकर लड़की सहम गई. लगता था जो कुछ उसने सोचा था, ठीक ही था. मुँह फाड़े थोड़ी देर तक मुझे देखती रही मानो उसे विश्वास नहीं हो रहा था. पूछा “कुछ नहीं है ?”

उसकी सारी आशाओं पर क्षण में ही पानी फिर गया हो—उसके चेहरे से ऐसा ही लग रहा था. मैंने कहा, “नहीं तो ऐसी तूफान भरी रात में सड़क पर क्यों घूमता ?”

लड़की असहाय-सी चुपचाप खड़ी रही. मुझे पहले से ही पता था—यह औरत यहां व्यापार करने बैठी थी न कि भीख मांगने. मैं दरवाजा खोलने के लिए आगे बढ़ा.

उसने पीछे से पूछा, “कहाँ जाओगे इस समय ?”

मैंने कहा “झँस के खटाल पर.” कहकर मैंने दरवाजा खोल डाला.

अरे बाप रे ! लगा हड़ा मानो हमको निगल जाएनी. मैंने बाहर कदम रखा.

बर्थडे केक, रेस्ट्री एवं पेटिज के लिए



छोला भठूरे
दक्षिण भारतीय
विशिष्ट व्यंजनों
का आनंद उठाने के साथ

शुद्ध शाकाहारी स्वादिष्ट भोजन के लिए

सोना-रूपा रेस्टोरेंट

(हेड पोस्ट ऑफिस के ठीक सामने)

विश्वेश्वरगंज, वाराणसी. फोन : ३३२४२२

रामचरन (प्रोप्राइटर)



औरत ने मुझे पीछे से पुकारा, “कहां हो जी. सुनो भी. जब बुझाया ही है तो रात भर ठहर ही जाओ. फिर गहरी सांस लेकर बोली “मेरी किस्मत ही खराब है.”

मैंने कहा, “तुम्हारी अच्छी किस्मत अच्छी ही बनी रहे. मैं खटाल पर ही चला जाता हूं.”

“जैसी मर्जी.” कहकर वह निराश होकर तख्तपोश पर बैठ गई. फिर बुदबुदाई, “आज तो और कोई उम्मीद नहीं.”

मैंने सोचा—बात दुरी नहीं. इस आंधी-पानी रात में जब एक ठिकाना मिला ही है तो उसे यों ही क्यों गवाऊं ? पर औरत के साथ रात गुजारना मुझे बड़ा अजीब-सा लगा क्योंकि मेरे लिए यह बिल्कुल नयी बात थी. हालांकि औरतों के मामले में आम दस आदमियों की अपेक्षा मेरी रुचि अधिक हो रही है, फिर भी यहां ? छिः छिः. यह मुझसे नहीं होगा....हां एक बात हो सकती थी कि उसके साथ सोए बिना भी रात गुजारी जा सकती थी. यह सोचकर कमरे के अंदर जाकर मैंने दरवाजा बंद कर दिया.

लंबा छरहरा वदन था उसका, साफ सांवला रंग. दोनों गाल धंस चुके थे. बड़ी-बड़ी आंखों को दृष्टि नयी यास को दूढ़नेवाली गाय की तरह थी. मोटे ओठों के ऊपर नाक आकाश की ओर उठी हुई थी.

डूढ़-डांडकर उसने मुझे एक पुराना पेटीकोट पहनने के लिए दिया. बोली, “इसके अलावा मेरे पास और कुछ है ही नहीं.”

पेटीकोट ! मुझे हंसी आ गई, खैर ! कम से कम यहां कोई देखने तो नहीं आएगा. लेकिन....

मेरा दिल धड़क उठा. मैंने अपने पाकेट को हाथों से थाम लिया. मरते समय मेरे दोस्त ने पर्वत समान जो बोझ मुझ पर डाला था, वह यथास्थान है या नहीं, मैंने टटोलकर देख लिया. यह कोई चीज नहीं थी, खून का गोला था—हां खून का गोला ही था. मेरा मन संशय से बोल उठा. मैंने तीक्ष्ण दृष्टि से औरत की तरफ देखा. पीछे मुड़कर वह ग्लाउज के अंदर की वाडिस खोल रही थी.

मैंने कहा “मेरे पास कुछ है नहीं पहले ही बता रहा हूं.”

“कितनी बार सुनाओगे जी. एक ही बात की रट लगा रखी है.” वह निराश होकर बोली.

अपनी गाय जैसी आंखें उठाकर उसने एक बार मेरी ओर देखा. बोली “कौन तुम्हें सर की कसम खिला रही है ?” बात तो ठीक ही कह रही थी. मैंने पेटीकोट

पहन लिया. पर खुले बदन में कंकपनी और भी बढ़ गई. दरवाजे पर हवा और पानी धक्का मार रहे थे.

औरत मेरी तरफ देखकर मुंह में कपड़ा ठूंसकर पहले तो हंसी, फिर एक पुरानी साड़ी मेरी तरफ फेंककर बोली, "लो इसे बदन में लपेटकर सो जाओ."

कहकर उसने मेरे कपड़े-लत्ते रस्सी पर सुखा दिए. बोली "थोड़ा सूख जाएगा."

आराम भी बड़ी खराब चीज है. खासकर ऐसी दुरावस्था में मैं करीब-करीब भूल ही बैठा था कि मैं किसी बाजारू औरत के घर पड़ा हुआ था. मैंने कहा, दो दिन से पेट बिल्कुल खाली है, इसलिए बारिश ने मुझे घायल कर दिया.

उसने कुछ कहा नहीं. घुटनों के बीच सर टिकाकर बैठी रही.

मैंने कहा, "तो फिर सोया जाए."

उसने मुंह ऊपर उठाया. उसका चेहरा दर्द से कातर था. उसकी उभरी हुई छाती की हड्डियां सांस लेते समय उठ-बैठ रही थीं. बोली, "खाओगे कुछ ? भात और साग-भाजी है."

भात और साग भाजी. यह तो उम्मीद से बढ़कर था. भात की सुगंध से ही जिसका आधा पेट भर जाता हो, उसके सामने भात का क्या पूछना ! जीभ में पानी उतर आया, और पेट मानो अलग एक जीभ बन गई. भात शब्द सुनते ही मेरा अंदर हिल गया. लेकिन—

तब तक उसने कलई वाली थाली में खाना परोस दिया. देखकर मेरे मन का संशय और भी बढ़ गया. रस्सी पर से मैंने अपने कपड़े उठा लिए. यहां का हाल मुझे अच्छा नहीं लग रहा था. मैंने धबराकर कहा, "भात के लिए मेरे पास पैसे नहीं हैं...."

गाय जैसी आंखों में नाराजगी दिखाई दी; बोली, "तुम्हारे लिए भैंस की खटाल ही उचित स्थान है. एक बात कितनी बार सुनाओगे?"

सुख से चैन मला. अभाग ने मरते वक्त ऐसी चीज थमा दी थी कि उसे लेकर चलना मेरे लिए मुश्किल का काम था. रखना भी जहर के समान था. बाहर पड़ा रहता तो इस बोझ का मुझे ख्याल ही नहीं आता.

उसने फिर पूछा "तुम क्या कभी आदमियों के बीच रहे नहीं?"

सुनिए जरा इसकी बात. पूछ कौन रही थी ? बाजार की औरत !

मैंने कहा, "रहा क्यों नहीं, पर तुम जैसी के साथ नहीं."

थोड़ी देर तक दह मुझे देखती रही. उसके बाद बोली, "खाना जब खा लो. नहीं तो थरवाद चला जाएगा."



मैंने सोचा इसमें आपत्ति की क्या बात है. बिना पैसे का भात है. और यहां कौन देख रहा है. मैं गपगपा कर भात खा गया. ऊपर से एक लोटा पानी. परोसी हुई थाली खाकर मुझे लगा मैंने बड़ी नवाबी कर ली है. इसलिए मेरे मन का संशय ओर भी बढ़ गया.

इसके बाद सोना था. वो भी बड़े झमेले का काम था. मैं सो गया. फिर पूछा, "तुम कहाँ सोओगी?" वह निरुत्तर मुझे देखने लगी. सर का कपड़ा थोड़ा खींच लिया. मैं उठ बैठा.

पैर के पास बैठी थी वह. बोली, "मैं तो रोज ही सोती हूँ. आज तुम सो जाओ. एक रात की बात है. मैंने जब तुम्हें बुलाया ही है...."

कहते-कहते मेरे हाथ में कमीज देखकर उसने रस्सी की ओर देखा. उसके बाद मेरी तरफ. मैं भी देख रहा था.

बोली, "कमीज तो भींगी हुई है."

"रहने दो तुम्हें क्या ?

वह चुप हो गई. मेरे शरीर को आराम पहुँचा तो लगा नर्स स्वाभाविक, ताजी और गरम हो उठीं. बाहर जो आँधी-पानी मुझे पछाड़ना चाहती थी. अब वही आवाज मेरी कानों में लोरी की मीठी आवाज जैसी लगने लगी, आँखों की पलकों भारी हो उठीं.

मैंने उसकी तरफ देखा. वह उसी तरह चुपचाप बैठी हुई थी. नजर किस तरफ थी, मालूम नहीं चल रहा था. बहुत थकी हुई थी वह. एक दबा हुआ दर्द मानो उसके चेहरे और आँखों में झलक रहा था. क्या मालूम. इनके नखरे का भी तो कोई बंट नहीं. हो सकता था मैं सो जाऊँ और उस समय....उफ्. अभागों की उस चीज का बंदोबस्त मैं कल ही कर डालूँगा. क्या जरूरी था मुझे यह थमाना—एक खून का गोला, हाँ खून का गोला ही तो था. पसीने का बवबू से भरे चीथड़े का पोटला था. कोई राक्षसी क्षुधा सी सुगंध थी. मरते समय छोकरे के मुँह से खून गिर रहा था फिर भी वह मुझे बोला....इसे तू रख ले.

इस तरह से बोला था कि सोचकर अब भी छाती दहक उठती थी. खैर छोड़िए उन बातों को.

लड़की उसी तरह बैठी रही. देखकर अचानक मैं बोल पड़ा, “थोड़ा फासला रह-कर तुम भी सो जाओ.”

वह फिर मुझे थोड़ी देर तक देखती रही, बोली, “कितना अजीब आदमी है तू! बाप रे....उसके बाद वह सो गई.”

आराम से तब तक मेरा तन-बदन ढीला हो चुका था, किसी औरत का शरीर इतना गरम होता है, इतने फासले पर भी मुझे पता लग रहा था. कितनी विचित्र रात थी और अजीब-सा वातावरण. लोग यदि देखते तो क्या कहते, छिः छिः, लेकिन इतना आराम ! मेरे दुखी थके-हारे शरीर को इससे अधिक सुख की अनुभूति पहले कभी हुई थी, याद नहीं. नोद के मारे आंखें मुंदी जा रही थीं—लेकिन....

नहीं. ऐसा नहीं हो सकता. मैं अपने उस दोस्त के बारे में बता रहा था. अभाग. मरने वक्त बता गया—वो पोटला, मेरा खून.

मैंने कहा—कैसा खून ?

आंख के आंसू और मुंह का खून पोंछकर बोला—मेरी छाती का. बिना खाये रोज....

कहते-कहते रक्तंजित अस्थिर उंगलियों से वह पोटला-ढूँढ़ने लगा. मैं अपना गुस्सा नहीं संभाल सका. पूछा था—किसलिए रे ?

बोला—घर बनाने की आशा में.

उसने यह बात इस तरह से कही कि गाली देते-देते मेरे गले के अंदर....

खैर. इस बात को भी रहने दीजिए.

उस औरत के मुंह से कण्ठ की एक आवाज निकली.

मैंने पूछा “क्या हुआ ?”

उसने देखा. दोनों आंखें ददं से लाल हुई पड़ी थीं, मानो अभी रो पड़ेंगी. पर बोली, “कुछ भी नहीं.”

उसकी गरम सांस से मेरे शरीर को आराम पहुंचा, ठंड से बने शरीर पर मालो आंच पहुंच रही थी. एकाएक मुझे लगा—वह देखने में बहुत बुरी तो नहीं अँठ और नाक थोड़े खराब है. आंखें मुंदी हुई थीं, मुड़े हुए दोनों हाथ छाती से लगे हुए थे. उसकी नरम छाती ने मेरे मन में एक विचित्र मोह पैदा किया. उसने मुझसे पूछा, “तुम्हें नोद नहीं आ रही है ?”

मैंने कहा, “मैं सोऊंगा नहीं.” फिर मन-ही-मन सोचा—सोने से तुम्हें मौका मिल



जाएगा, वो मैं होने नहीं दूंगा. और ताज्जुब था, बातचीत करने से मेरे मन का संशय बढ़ता जा रहा था. इससे तो अच्छा था, वह चुप रहती.

बाहर तब भी तांडव चल रहा था. खपरैल पर से फर्श पर पानी टपक रहा था. उसकी टप्-टप् की आवाज आ रही थी. चूहे दौड़ रहे थे.

वह फिर दर्द से रो पड़ी,

“क्या हुआ है तुम्हें ?”

थोड़ा चुप रहकर बोली “बीमारी,”

“बीमारी. कैसी बीमारी ?”

वह चुप रही.

“बोलो न.”

वह फिर भी चुप रही.

मैं गुस्सा गया. बोला, “बता कौन-सी बीमारी है. टी० बी०, हैजा हो तो जल्दी से यहां से भाग जाऊं. बीमारी से मुझे कोई लगाव नहीं.”

एकाएक वह भी तुनक उठी. बोली, “किसके साथ लगाव है तुम्हारा, जरा सुनूं भी ?”

वह ठीक ही कह रही थी. लगाव की बात यहां उठती ही कैसे थी. मैंने कहा, “बता न क्या बीमारी है तुम्हें ?”

“इस रास्ते पर रहने से जो बीमारी रहती है.” उसने कहा.

“इस रास्ते पर ?” सर्वनाश. मैं संकुचित हो उठा. भय और घृणा से पूछा, “इसके बावजूद शाम को....”

“जल्द. पांच जने,” उसने कहा.

“कितनी भयंकर बात है.” मैंने कहा,

“इलाज क्यों नहीं कराती ?”

“पैसे कहां से आएंगे ?”

“क्यों ? अपनी कमाई से ?”

“वे पैसे तो मालिक के हैं.”

“मालिक ? यह तुम्हारी नौकरी है ?”

“और नहीं तो क्या ? व्यापार तो मालिक का है, कमरा-बमरा, जगह हर चीज. हम तो सिर्फ खटने के लिए आते हैं.”

यह सुनकर मेरा मन बुरी तरह से चोट खा गया. तो फिर ये लोग आराम की जिंदगी नहीं जोते ? यह भी एक किस्म की नौकरी है ! मैंने कहा “साला. मालिक कैसा आदमी है. इलाज क्यों नहीं करवा रहा है.”

● विचार-पृष्ठ—

भारत कृषि प्रधान

देश है.

इसमें जो जीते-

जागते यंत्र हैं,

उनका बचाव करके ही

गरीबी और बेकारी

दूर कर सकेंगे.

वे यंत्र हैं

१. गाय माता और उसका वंश

२. मनुष्य और उसका वंश.

जिसके पास चेतनामय

यंत्र मौजूद है,

जो हमेशा वृद्धि

कर सकते हैं,

उस देश के निवासी

जड़ यंत्र के पुजारी

बन जाएं तो

उन पर संसार का

शाप पड़ेगा.



—महात्मा गांधी

श्री सुराही लाल अरोड़ा की

पावन स्मृति में

श्री विनय कुमार अरोड़ा

सीमा प्रिंटिंग प्रेस; (सप्तसागर)

बुलानाला वाराणसी के

सौजन्य से

फोन : ३५४४०७, ३५४१३०



“जब मर्जी होती है, करवाता है. और फिर कल कारखाने में भी तो रात-दिन कितने ही लोग मरते हैं, क्या मालिक उनका इलाज करवाता है ?”

बात भी ठीक थी. उसकी दर्द भरी ठंडी आंखों की दृष्टि से अब की बार उसने मुझे दिशाहारा बना दिया. जंग के मैदान में सिपाही अपनी जान गंवाता है, पर जीवन की यह कौन से प्रतिरोध की लड़ाई थी. मैंने कहा “तो....”

उसने कहा, “तो क्या ? मालिक की आंख बचाकर जो कमा सकती हूँ, उसी से इलाज करवाती हूँ.”

“क्यों ? जीने के लिए ?” मैं हंसना चाह रहा था, पर मेरा चेहरा विकृत हो उठा.

“जीना सभी चाहते हैं.” दर्द से ओठ दबाती हुई वह बोली —

ठीक तो है. जंगल में शेर रहता है, जानते हुए भी जंगल के आस-पास की जमीन पर ही इनसान अपना आवास बनाता है. बाढ़, तूफान, भूख क्या नहीं है. फिर भी. और उस अभाग ने घर बसाना चाहा था. हाँ, फिर भी इस पोटले का एक-एक पैसा खून की दूंद था. खून का एक गोला था यह पोटला.

उसने पूछा, “सोओगे नहीं ?”

“नहीं.” आंखों में नौद नहीं थी. उसकी सांस मुझे लग रही थी. दर्द से दुखती गरम सांस. मोठी ताप गनगनाती आग की तरह लग रही थी. मैं कड़े हाथों से पोटला और पूरी कमीज को कसकर पकड़कर उठ खड़ा हुआ. बाहर तब भी आंवा चल रही थी, पानी बरस रहा था. रात खत्म होने को हो रही थी. मैंने अपने कपड़े पहन लिए.

वह भी उठ खड़ी हुई. हंसना चाही. बोली, “जा रहे हो ?”

मैंने पाकिट में हाथ घुसाकर पोटले को कसकर पकड़ लिया. बोला, “हां.”

हॉटों के किनारे से खून चू रहा था, उसे चाटते हुए उस अभाग ने मरते हुए कहा था, “इसे तू रख. क्यों ? आखिर क्यों ?”

कष्ट से कातर दबी जुबान से लड़की बोली, “फिर आना.”

क्या आंखें थी उस लड़की की ! सारे चेहरे पर लांछन के दाग उभरे हुए थे. आकाश की तरफ उठते हुए नहीं थे उसके मोटे ओठ. ऐसा मुखड़ा तो मैंने पहले कभी नहीं देखा था.

बड़ी तेजी से उसकी तरफ मुड़कर मैंने पोटला उसके हाथों में थमा दिया. उसकी सांसें मुझे छू रही थीं. क्षण भर में आंखें नीची कर एक अशांत क्रोध को मैंने दांतों तले दबा लिया. हवा में बह गई वह बात. मैंने कहा, “पीछे से मत पुकारा करो.”

बोझ से उन्मुक्त होकर मैं आगे बढ़ने लगा. वांनप्रस्थ की ओर नहीं, दोस्त के घर की तरफ. पुरवाई मुझे पश्चिम के घाट की तरफ ठेल रही थी, पर असफल रही

डोगरी कहानी

नया ग्राहक



नरसिंह देव मन्हास

(अनु० शिवदेव मन्हास)

यह मेरी उसने चौथी मुलाकात थी और शायद आखिरी....पहली मुलाकात के लिए मुझे कभी अपनी यादों के झरोखों में खो जाने की जरूरत नहीं पड़ती. वह मुलाकात आम मुलाकातों से काफी अलग हालात में हुई थी. इसलिए उसके साथ हमेशा मेरे दिल में सजीव रहते हैं. बस, बात ङिड़ने को देरी है, सब कुछ आंखों के आगे आ खड़ा होता है. मेरी नौकरी उन दिनों बड़े अस्पताल में थी और वह इधर अपने पति के साथ किसी काम से यहां आई होगी.

क्या काम था ? मैंने आज तक इस बेकार-से सवाल को न ही जानने की कोशिश की है और न ही उसे दिल में कोई स्थान दिया है. लोग अक्सर शहर आते-जाते हैं. फिर अब एक्सिडेंट होने के बाद उसके पति को मेरे ही बाड में बेड मिला तो भी मेरी नजरों में वह दोनों आम 'लुकाई' से ज्यादा कुछ न थे. पर हालात बदलते देर न लगी. मैं घर जाने से पहले नाइट ड्यूटी पर अपने दूसरे साथी को कुछ जरूरी मरीजों की देखभाल और डाक्टरों के लिखे अनुसार समय-समय पर देने वाली दवाई व

इंजेक्शन आदि के बारे में समझाकर जाने लगा था कि वह और प्रकाशो दोनों आ पहुँचें।

प्रकाशो मेरी पत्नी का नाम है। मैंने उन्हें नजर भर देखा भी न था कि उसके शब्द मेरे कानों से टकराए। प्रकाशो कुछ न बोली और हम उस बेड के करीब आ पहुँचे जहाँ उसका पति बेहोश पड़ा था। डाक्टर साहब के आदेशानुसार उसे माफिया का इंजेक्शन मैंने ही दिया था—कोई पाँच मिनट पहले।

“अब इनका क्या हाल है ?” प्रकाशो ने काफी देर बाद पूछा।

“अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। कल पूरे टेस्ट हो जाने पर ही सही पता चलेगा। चिंता की कोई बात नहीं।” मैं सब कुछ पेशेवर ढंग से कह गया था, नहीं तो अभी तक मेरे कानों में उसी के शब्द गूँज रहे थे। नज़रें उसे घूरे जा रही थीं व दिमाग यह सोचने का प्रयास कर रहा था कि यह नयी साली कौन हो सकती है ? वैसे तब तक मैं इस नतीजे पर पहुँच गया था कि यह जो भी हो, है मेरे समुरालवालों की ओर से ही। इस पहचान के सामने आते ही मेरा कर्तव्य बनता था कि अपने साथी कंपाउंडर को मरीज का विशेष ध्यान रखने को कहता। उसे दिखासा देता व पूछता कि रुपए-पैसे आदि जिस चीज की जरूरत हो या कोई सेवा हो तो कहकर कहें। पत्नी का दिल जीतने का यह सुनहरा मौका मैं भला क्यों गंवाता।

अस्पताल से घर पहुँचने तक प्रकाशो ने उनके बारे में काफी जानकारी दे दी थी पर मेरे दिमाग में दो ही बातें खुड़क रही थीं कि मेरी समुराल भले ही गांव में है, पर इन दस वर्षों में भी मेरी वहाँ के लोगों से जान-पहचान अधूरी है और दूसरी यह कि इस मुसीबत की वड़ी में उसे भी हमारी याद आना डूबते का तिनके की ओर लपकने जैसा था। नहीं तो करीबी रिश्ता तो था, मेरी पत्नी की जात-बिरादरी की भी वह नहीं थी।

प्रकाशो की सोच मुझसे हटकर थी। वह चाहती थी जो भी हो, जब तक वह इधर



है, उसे छिपी भी दशा में आने-पराए का एहसास न हो। घर में न विचारों की सास है, न मां, जेठ जेठानी है, पर कब के अलग पका-खा रहे हैं। परमेश्वर करे, बेचारे भर्त्से-चंगे होकर घर लौटे। प्रकाशो दिन में चार-छह बार अवश्य कहती और मैं यह सोचता कि वह अपने मायके में अपना मान बढ़ाने की कितनी इच्छुक है।

कोई महीने-डेढ़ महीने बाद वे सचमुच घर चले गए। विदाई के समय कोई विशेष बात सामने आई तो उसके गोल-मटोल गालों पर से ढलकते मोटे-मोटे आंसू ही। वह हजार कोशिश के बावजूद हंस न सकी।

हमारी दूसरी मुलाकात कोई एक साल बाद उसके ससुरालवाले घर पर ही हुई थी। 'रक्खड़-पुनेआ' पर वहां एक विशाल मेला लगता है। प्रकाशो के बार-बार कहने पर इस बार हम लोग वहां आए थे। अचानक मुलाकात होते ही मुझे याद आया कि वह भी इसी गांव में ब्याही गई है। न चाहते हुए भी, उसके जोर देने व पत्नी की 'हां' के बाद हम सपरिवार उसके घर गए। हमारी यह मुलाकात किसी भी तरह से अच्छी नहीं कही जा सकती। दरअसल बात यह हुई कि उसके लाख यत्न करने पर भी उसके भीतर सुलगती कड़वाहट मुझसे छिपी न रह सकी। अस्पताल के वे दिन व मरीज मेरी आंखों के आगे घूमने लगे और फिर शायद मेरे भीतर किसी समाज-सुधारक की रूढ़ आ बसी थी या, उन उपन्यासों का असर था जो मैं अक्सर शौकिया पढ़ता रहता था, मेरे मुंह से एक ऐसी बात निकल गई जो सारे माहौल को बिर्बला कर गई। शायद छोटा मुंह बड़ी बात थी। सुनते ही उसने शिष्टता से, पर कड़वे शब्दों से मुझे शर्ससार करने की कोशिश की। पत्नी ने घर लौटते वक्त तो मुझे खूब झाड़ पिलाई। और फिर, यह कथा घर पहुंचकर भी खत्म न होती यदि बच्चों के सो जाने के पश्चात् मैंने उसे अपनी बात के पोछे छिपी सचाई के दर्शन न करवा दिए होते।

"फिर क्या हुआ?" सुनकर प्रकाशो मुझसे बोली, "इसका अर्थ यह तो नहीं कि पति अपंग हो जाए और पत्नी दूसरा ब्याह कर ले."

"यह एक्सीडेंट अंगों के साथ-साथ उसका और भी बहुत कुछ छोन ले गया है। प्रकाशो, सिर्फ जान बचने से बात नहीं बनती, गृहस्थी और भी बहुत कुछ मांगती है।"

"तो क्या?" उसने मेरी बात सुन व समझकर भी अपनी बात पर ही जोर दिया, "परमेश्वर न करे, कल आपको ही कुछ 'हजं-मजं' हो जाए तो मुझे दूसरा ब्याह कर लेना चाहिए? आपको ऐसा कहते-सोचते शर्म आनी चाहिए थी!"

"हमारी बात कुछ और है प्रकाशो! शादी हुए दस वर्ष हो गए हैं। आगे तीन बच्चे हैं। पर वे जिन्हें शादी किए दो वर्ष पूरे नहीं हुए हों, वे कैसे उम्र काट सकते हैं?"

पता नहीं मेरी इस दलील से उसके मन में कुछ असर हुआ भी या नहीं। पर उसे चुप देखकर मुझे अपने पर चिढ़ जरूर हुई कि मुझे ऐसा कहने की क्या गरज थी?



जिन उपन्यासों या कृतियों को पढ़कर मेरे मन में ऐसे विचार आ बसे हैं, अभी हमारा समाज, विश्लेष कर हमारा यह इलाका, मानना तो अलग, सोचने से भी दूर है। अभी हमारे यहां की औरत अपने चारों ओर दहकते अंगारे को देखकर इनसे बाहर निकलने का प्रयास नहीं करना चाहती। औरत ही क्या, मर्द भी बराबर दोषी है। मेरी आंखों के आगे उसका पति आ खड़ा हुआ है और सचाई जानते हुए भी उसे राह तलाशने की नहीं कह सका था। एक का स्वार्थ दूसरे को सारी उम्र काटने पर मजबूर कर रहा था।

हमारी तीसरी मुलाकात कोई चार साल याद हुई थी। काफी अजीब थी यह मुलाकात। अजीब इसलिए कि उसे अपने सम्मुख देखकर मुझे कुछ शर्म व कुछ शिक्षक महसूस हो रही थी। कहीं मेरी उस बात को लेकर अब फिर मेरी बेइज्जती न कर दे। मैं यहां अपनी साली की शादी पर आया हुआ था। वह भी उन दिनों मायके ही थी।

“क्यों जीजा जी, कोई नाराजगी है हमसे?” एक बार तो उसने मुझे नजर फेरते ही पकड़ लिया था। मैं कोई उत्तर देने की बजाय उसे देखता रह गया। उसके चेहरे पर ही नहीं, उसकी आंखों की गहराई तक मैं भी मुझे उस कड़वाहट की उतनी मात्रा न दिखी, जितनी पिछली मुलाकात में मैं देख-समझ सका था। हो सकता है, इसने जीवन के साथ समझौता करके अपने आपको परिस्थितियों में ढाल लिया हो, मैंने सोचा। चलो, ठीक हो हुआ। वक्त घाव भरता ही है आखिर!

डोली-विदाई के पश्चात भी हम एक दिन और वहां रहे थे। उस दिन वह फिर प्रकाशो से मिलने आई थी और जाते-जाते शिकायत कर गई कि पिछले साल मैं उनके गांव जाकर भी न तो उनके घर गया और न ही उससे मिला।

“हम गरीबों के घर कौन आता है?” कहते हुए वह चली गई। मुझे उसके खिले-खिले होंठों से आगे यदि कोई सौच आई तो बस यही कि क्या हम भी अमीर हैं? आखिर कपाउंडरी ही तो है। क्या बनता है इस तनख्वाह से? पर....?

मेरी ब्यूटी आजकल एंटी-मलेरिया यूनिट के साथ है। इस कारण गांव-गांव व घर-घर जाना पड़ता है। पिछले साल भी इसी सिलसिले में उनके गांव गया था। हां, इस बार मैं उसकी शिकायत दूर करने उसके घर चला गया और दोपहर वहीं काटी। उसने भी अपनी तीकरी के शुक्राश्रित खातिरदारी में कोई कसर न रखी।

“घर में सब ठीक-ठाक चल रहा है न?” बातों-ही-बातों में मैंने पूछा। सवाल दो-बारी था। उसने पल भर के लिए इधर-उधर खिमकने का प्रयास किया, पर आखिर उसके मन की घुटन उसकी धाहरी व दिखावटी हंसी को चीरकर सामने आ ही गई। शायद वह इसलिए भी कुछ न छुा सकी क्योंकि मैं उसके पति के बारे में

● विचार-पृष्ठ—

गरीबी और बैकारी का
 फायदा उठाकर एक धर्म से
 दूसरे धर्म में परिवर्तन की
 काररवाइयों से सांप्रदायिक
 संघर्ष और राजनैतिक
 पेचीदगियां उत्पन्न होती हैं.
 भारत जैसे 'सेक्युलर'
 राज्य में जहां सभी
 धर्मों को बराबरी का
 दर्जा दिया गया है,
 धर्म परिवर्तन को
 मान्यता नहीं दी जानी चाहिए,
 हां यदि इने-गिने,
 लोग विशिष्ट भावना से
 शासन की अनुमति
 द्वारा धर्म-परिवर्तन करना चाहें
 तो अलग बात है.



—महात्मा गांधी

श्री लाराचंद मल्होत्रा

मे० कल्पना सारीज

फाटक सुखलाल सहू

वाराणसी के

सौजन्य से

फोन-प्रति० : ३२०१०७, ३२२६३६



सब कुछ जानता था

“मुझसे कोई पूछे तो वे दिन बड़े अच्छे थे, जब औरतों को जीवित रहकर घुटने के लिए छोड़ने की बजाय एक ही बार में जिंदा जला देते थे。” उसके आखिरी शब्द उसके मन की पीड़ा को साफ दिखा रहे थे।

“यह ठीक है कि पति के मर जाने के बाद पत्नी की जिंदगी ज्यादातर कुहन व जालोखाले (जाल-ओ-खाल, नष्टभ्रष्ट) का पर्यायवाची बन जाती है, पर उसे जीवित ही जला देना तो सरासर जुल्म है。” मैंने कहा।

“जुल्म ही सही, पर ‘कुस्ता खजजल’ (कुस्ता-खजिल, थुम्का फजीहत) तो नहीं होती。”

सुनकर मुझे लगा कि कालचक्र आगे जाने की बजाय एक बार फिर पीछे मुड़ गया है। दूर पीछे राजा राममोहन राय के युग से भी पीछे।

“आपको ऐसे विचार मन में नहीं लाने चाहिए。” इस बार मैं काफी सतर्क था और कोई ऐसी-वैसी बात नहीं करना चाहता था जिससे फिर वही गलतफहमी पनपती।

“परमेश्वर उन्हें लंबी आयु दे.....” उसने बीच में ही टोकते हुए अपनी बात चलाई, “आप डाक्टर लोग, उसे ही मर्दा समझते हो ना, जिसकी सांस चलना बंद हो जाए ?” घूरती आखों का मोरे पास कोई उत्तर न था, और न ही इसके बाद वहां रुकने की मेरी हिम्मत रही।

“नया ग्राहक。”

गली में उन दो-तीन दुकानों के पास से गुजरते थे कड़वे बोल मेरे कानों से टकराए। मैंने एक नजर सामने बैठे गुड़गुड़ी पीते उस दुकानदार की ओर डाली। उसके ओठों पर एक शरारती हंसी बिछी थी। मुझे लगा कि बीडियों व टी. बी. के अच्छे असर न सही, बुरा असर अपनाने में अब हमारे गांव भी बहुत आगे निकल आए है। अभी तो ऐसे डायलाग.....

“ये मलेरियेवाले अभी कोई चार दिन तो रहेंगे ही इस गांव में。”

दूसरी दुकानवाले की आवाज मेरे पीछे से उभरी थी। पर अब मेरी हिम्मत न हुई कि पीछे मुड़कर देख सकूँ। पांव और तेज हो गए। बोल इतने कड़वे थे कि कानों के परदों से लेकर जिगर तक को भेदते चले गए। मुझे इस गांव में अभी दो दिन और रुकना था, पर मैं बीमारी का बहाना बनाकर घर लौट आया।

जी में आया कि प्रकाशो से पूछूँ, “तब तो तू बात न करने देती थी। पर अब बोल ?” परंतु यह सौबकर कि यह भी हमारे समाज का एक अंग है, उन दुकानदारों से कितनी अलग होगी ? और पता नहीं, मुझसे क्या पूछताछ करने लगे। मेरे ओठ बंद हो रहे ॐ

बांग्ला कहानी

पैरवी-भैरवी

डा. असीम कुमार मुखोपाध्याय

(अनु० रूबी सरकार)

संभवतः सातवें दशक की नात है. परीक्षाओं में भ्रष्टाचार के बीज उन्हीं दिनों अंकुरित होना शुरू हुआ था. इस समय जैसे परीक्षा हाल के अंदर परीक्षार्थियों का ज्यादा मददगार शिक्षक स्वयं होता है, उस समय ऐसा नहीं था. वंश परंपरा में रक्त के बीज की भांति शिक्षा जगत में भ्रष्टाचार का प्रवेश नहीं हुआ था. पैरवी करिए, परंतु आवामी व परीक्षक और परिस्थिति के अनुरूप. संभवतः उस समय भी पैरवी का बाजार भाव रहा होगा और शिक्षा जगत में ऐसे भी लोगों का अभाव नहीं रहा होगा जो ऐसे सुयोग देखकर न झट पड़ते हों.

लेकिन अविनाश चंद्र ऐसे शिक्षक नहीं थे. वे उत्तर-बिहार प्रांत के एक कालेज में अंग्रेजी के अध्यापक की हंसियत से जोर प्रतिष्ठा रखते थे—एकहुरा गोरा चेहरा, गंभीर और सिद्धांतवादी मनोभाव. जीवन में कभी भी परीक्षा में नकल नहीं किया था और न ही कभी किसी के लिए पैरवी. अच्छे कुल में जन्म लेने के कारण मन-ही-मन एक आत्म गरिमा पाल रखे थे. जब भी वे सुनते कालेज में परीक्षा में पक्षपात व पैरवी हो रही है, तो उन्हें विवेकानंद, सुभाषचंद्र जैसे आदर्श पुरुषों की याद आती और उनका



मन विद्रोह कर उठता. एक बार परीक्षा के दौरान उनके छोटे भाई को सीट उसी कक्ष में पड़ती है जहां अविनाशचंद ड्यूटी में तैनात होते हैं. तुरंत अविनाश प्रधानाचार्य से संपर्क कर उसने आग्रह करते हैं कि उनका कक्ष बदल दिया जाए. एक बार

उन्हें लड़कियों के कक्ष में भेजा जाता है. जहां वे देखते हैं कि सेक्रेटरी की लड़की की कुछ लोग मदद कर रहे हैं. प्राइवेट कालेज में इसका प्रतिरोध करना बड़े दुःसाहस की बात है फिर भी वे सीने में साहस पैदा कर उस शिक्षक को कक्ष से बाहर निकाल देते हैं.

अविनाशचंद के घर से उनका कार्यस्थल बाइस मील दक्षिण में था. रेलगाड़ी से यह यात्रा लगभग दो घंटे का था. कार्यस्थल में वे एक छोटे से घर में अपने विश्वास पात्र नौकर के साथ रहते हैं. हर शनिवार को घर आते हैं और सोमवार को वासस कालेज चले जाते हैं. साधारणतः यह समय वे अपने ससुराल के विधान के अनुसार अपने पितृगृह पुर्णिमा में बिताते हैं. मां को प्रणाम कर वे तन्खाह लेने के उद्देश्य से दरभंगा स्टेशन आते हैं. पूरी रात अपनी पत्नी के साथ रहने से वे काफी प्रसन्नचित थे.

पूरे कालेज में मात्र तीस शिक्षक थे और उन्हें नगद वेतन दिया जाता था. वहां अभी चेक का प्रावधान नहीं था. ट्रेन के कम्पार्टमेंट में एकांत खिड़की के पास बैठकर वे एक अंग्रेजी डपन्यास पढ़ना शुरू करते हैं. उनके पास ही दरवाजे से सटे बेंच पर तीन देहाती भद्र पुरुष इस वर्ष आम के भविष्य को लेकर बातें कर रहे थे. अविनाश चंद थोड़ा भीतर-भीतर जाकर एक खाली बेंच पर बैठ जाते हैं. जून महीने की भोर, वातावरण भी मन के अनुकूल. वे अपना डपन्यास पढ़ने लगते हैं. थोड़ी दूर पर दो बंगाली पुरुष उन्हीं के कालेज के बारे में आलोचना कर रहे थे. देखने से दक्षिण बिहार के लग रहे थे क्योंकि वे लोग दधर की भाषा नहीं बोल रहे थे. अविनाश को समझने में देर न लगी कि वे दोनों उन्हीं की ओर बड़े उत्साह से इशारा कर रहे हैं. सम्यता की खातिर अविनाश उनकी ओर मुखातिब होते हैं. वे प्रश्न करते हैं, "क्या आप मधुबनी आर. के. कालेज में...."

अविनाश बीच में ही टोकते हुए संदिग्ध भाषा में पूछ बैठे, "क्यों? अभी तो कालेज बंद है?"

इस पर दोनों कुछ संभलते हुए कहा, "हां, यह तो मालूम है."

शब्द-शक्ति



अफसोस कि आज

नींद आ गई है विचारों को
भावों और भावनाओं को

सचेच्छाओं को

थक गया है आवमी लड़ते-लड़ते—

स्वयं से, अगनों से, दूसरों से

वैज्ञानिक नींद का स्वप्न

कम भयावह होता है

पर लगता है उससे डर

बेधस होकर/आवमी जाता है मर

जागृत अवस्था का स्वप्न

सैकड़ों विजलियों की तरह

टूट पड़ता है उस पर बेवजह

हर तरफ आघात

विश्वासघात

थपड़े

रास्ते अलग हर तरफ मुह मोड़े

करते हैं पदाघात

नहीं दीखता कोई आश्रय, ठिकाना

कोई बहुत अपना

थका हारा

व्यक्ति तब हालात का मारा

अक्षर की शक्ति का

करता आह्वान है

कलम की धार से

प्रहार से

गुनहगार को करता है दंडित

प्रताड़ित

शब्द की मार से

—डा० अपर्णा चतुर्वेदी

"क्या आप लोग किसी एडमिशन
के बारे में जानना चाहते हैं ? तब तो
ठीक है क्योंकि आफिस अभी खुला है."

कहकर अविनाश फिर से उन न्यास पढ़ने
लगते हैं. पढ़ने के लिए नहीं, बला टालने
के लिए. वे दोनों फिर से बंद डिब्बे की

भांति अपना मुंह बंद कर लेते हैं. गाड़ी
शकरी नाम के एक छोटे स्टेशन पर
रुकती है, और माहील चाय, बदाम, और
यात्रियों की शोर से भर जाता है.

अविनाश अपने स्थान को सुरक्षित रखने
का आग्रह कर चाय के स्टाल पर जाते हैं.

अविनाश बाबू आर. के. कालेज के
शिक्षक हैं, यह बात वे दोनों जान चुके थे
क्योंकि उपन्यास के पन्ने पर लाइब्रेरी
की मोहर साफ दिख रहा थी. इसके
अलावा यह भी तथ्य है कि आजकल अंग्रेजी
के शिक्षक ही अंग्रेजी उपन्यास पढ़ते हैं.

उनके लौटते ही दोनों खड़े हो जाते
हैं और उनसे बैठने का आग्रह करते हैं.

वे जितने व्यस्त दिखते अविनाश उतने ही
शंकित होते हैं. अभी गाड़ी के गंतव्य
स्थान पर पहुंचने में आधा घंटा बाकी था.
वे दोनों सोचने लगे, क्योंकि इसी बीच
उन्हें आर. के. कालेज के शिक्षक का पता
मालूम करना है, नहीं तो गया से घूल, घूप
और परेशानी उठाकर आने का कोई
मतलब ही न रहेगा. इसके अलावा कितने
परेशम के बाद उन्हें परीक्षक का नाम
पटना से मालूम हुआ है.

यह परिस्थिति अविनाश बाबू के लिए



A bee in the bonnet. की भांति अखर रहा था. वे खुल-

कर कुछ नहीं कहते हैं और पान खाइए इत्यादि से उनका बँठना मुश्किल कर रहे हैं.

अंत में अविनाश ही पूछ बैठते हैं—“क्या आप लोग कालेज में किसी के साथ मिलना चाहते हैं ?” उन लोगों के जान में जान आई बड़े उत्साह के साथ एक ने कहा—“हम लोग ए. के. मुखर्जी से मिलना चाहते हैं. हमलोग गया से आ रहे हैं इसलिए इधर के.....”

अविनाश उन लोगों की ओर आश्चर्य चकित होकर देखने लगे. दुर्गंध के भभके ने उनके मन में बसी सुगंध को खत्म कर दिया था. पत्नी प्रेम, मां का आशीर्वाद, पवित्र भोर सब कुछ एक दूषित तालाब के पानी में गिर गया.

लेकिन....

कहने जा रहे थे कि वे अपनी छुट्टी पर हैं जिससे वे टिकट कटाकर वापस चले जाएं. लेकिन शिक्षा देने का एक कटु अभिप्राय उनके मन में जाग उठा. उन्होंने कहा—“आप लोग उनके घर का पता चाहते हैं ?” सुनते ही उन दोनों का चिंताग्रस्त मुख उज्ज्वल हंसी में बदल गया. अविनाश चंद घृणा और गुस्से से जल उठे. उन्होंने गुस्से में अपने मकान के पास वास से घिरा एक घूमखोर बदमिजाजी पुलिस इंस्पेक्टर का पता बता दिया और कहा कि वे कान से कम सुनते हैं, जन्म से बहरे हैं इसलिए जो निवेदन करना है जरा ऊंचे स्वर में करिएगा.

दिन प्रायः सूर्यास्त की ओर अग्रसर था. अविनाश बाबू ने अब घर वापस पहुंचना ही ठीक समझा. इस बीच अपने वकील मित्र को आते देख अविनाश ने आवाज लगाई. अविनाश को देख वकील बाबू बस पकड़ने की बात भूलकर, सूचना देने की उनके मन में उत्कंठा जाग उठी. उनका पेट फूल रहा था. कहने लगे, “आप ही कोढ़ूढ़ रहा था.” हांफते हुए कहने लगे, “जाच के लिए कापी आई है क्या ?”

“बयों” अविनाश ने पूछा.

अरे आज तो एक खून हो जाता. आपके घर के पास वह इंस्पेक्टर है न ? मैं उधर ते गुजर रहा था कि इंस्पेक्टर के कान में एक आदमी ऊंचे स्वर में चिल्लाकर पूछ रहे थे—क्या आप ए. के. मुखर्जी हैं ? उत्तर न मिलने पर उन्होंने दुबारा ऊंचे स्वर में इसी प्रश्न को दोहराया. इंस्पेक्टर मेरे परिचित हैं. हम भी हताश कि क्या यह आदमी पागल है ? इंस्पेक्टर क्या बहरे हैं कि इतना चिल्लाकर.....और आपका नाम ! कहां से.....वह तो अच्छा हुआ कि हम गेट खोलकर अंदर गए. तब तक इंस्पेक्टर मारने के मूड में आ चुके थे. तभी भीतरसे एक छः फूट लंबा और बयालिस इंच छाती वाला कंस्टेबल बाहर आया. हमें देखकर उन लोगों का टेंपर कुछ कम हुआ. प्रश्न करनेवाले से पता चला कि वे कापी के मामले में आपका घर ढूंढ़ रहे थे. ट्रेन में उन्हें एक शिक्षक मिले थे उन्होंने उन्हें मकान का पता बताया और कहा कि आप जन्म से बहरे हैं.”

“वे दोनों किधर गए ?” अविनाश बाबू ने पूछा. वे तो ट्रेन पकड़ने चले गए, गया से आए थे. जान बची कहकर अविनाश बाबू ने घटना को सविस्तार बता दिया ७

पंजाबी कहानी

पहली रात

जसवंत सिंह बिरदी

(लेखक द्वारा अनूदित)

कुछ दिन ही ऐसे होते हैं कि मनुष्य उन्हें आम दिनों की तरह नहीं भोग सकता। मोहन बाबू पर शायद इसी तरह के दिन आए हुए थे। दफ्तर के साजिशों माहौल से दुःखी होकर उसने नौकरी छोड़ी थी.....मगर कारोबार के दिनों की शुरुआत में ही वह मानसिक रोग का शिकार हो गया। पर यह उसकी शिथिलता नहीं थी। कोई व्यक्ति उसकी जगह दुविधा में फँस सकता था।

मगर परेशाना ? परेशान तो हर कोई नहीं होता। मगर यह परेशानी जैसे उसके अंतर्मन में समा गई थी।

बात यह थी कि काम अभी नया-नया था और स्टेनों की पोस्ट के लिए इंटरव्यू का दिन और समय निश्चित किया गया था और फिर इसी उद्देश्य को स्पष्ट करने के लिए विजप्ति.....!

इंटरव्यू पर आनेवाले व्यक्तियों में एक लड़की भी थी। वह लड़की सुंदर तो नहीं थी मगर किसी दूररे शहर से अकेली ही आई थी और इसी बात ने मोहन बाबू को चकित कर दिया था।

देखने में वह सजीली-सी दिखाई देती थी परंतु मन की बड़ी दृढ़ होगी। तभी घर



से अकेले चलो आई.....मोहन बाबू बार-बार सोचता. वह सोचता और हैरान होता. हैरान होता कि उसकी पत्नी तो घर से बाजार जाने के लिए भी उसका साथ चाहती थी और कोई भी निर्णय लेने से पूर्व सी दार उससे पूछती थी. अपने मायके भी जाना होता तो उसकी इच्छा और स्वीकृति के साथ, और उस को अपने साथ लेकर जाती थी. 'अकेली क्यों नहीं जाती?' वह पूछता तो कहती—'कहीं गई हो नहीं अकेली.....पता नहीं एक शिक्षक-सी मन को घेरे रहती है.' उस समय पत्नी बिल्कुल घबरा जाती. उसकी वह घबराहट मोहन को अच्छी लगती. मगर यह लड़की—मोहन सोचता—अब कौन-सी आजाद हवाएं चलने लगी हैं लड़कियों, के लिए ?

मोहन ने जब उससे अकेली आने के बारे में प्रश्न किया तो उसने मुस्कराकर कहा—'नौकरी पर लगकर मुझे अकेली ही दफ्तर आना है.....पहले दिन मेरे साथ आकर किसी ने क्या कर लेना था ?'

मोहन ने देखा कि उसे पूर्ण आशा थी कि वह नौकरी के लिए चुन ली जाएगी. शायद कुछ चेहरे आशाजनक होते हैं.

अगर वह चाहता तो उसकी इच्छा पूरी भी कर सकता था परंतु उसका मन लोलने लगा.

यह सही है कि हर निर्णय लेने से पहले उसका मन दुविधा का शिकार हो जाता था परंतु अब वह इस तरह की स्थिति में नहीं था. वह प्रत्येक बात को व्यावसायिक और कारोबारी दृष्टिकोण से निश्चित करना चाहता था लड़की काम के लिए सर्वथा

निपुण थी और उसने जो भी प्रश्न उससे पूछे, उन पर वह सही तथा योग्य सिद्ध हुई. मगर फिर भी वह धरारा गया. उसने सोचा कि यदि उसने लड़की को काम पर रख लिया तो लड़की अपने स्वाभिमान तथा मन की दृढ़ता द्वारा उस पर छाई रहेगी. संभव है कि उससे कई गलत फैसले भी करवा लिया करे. अभी उसका नया-नया कारोबार है और वह किनी भी कुप्रभाव को स्वीकार करके नहीं चलना चाहता. यदि कोई व्यक्ति उसे अपनी ओर से अच्छी राय भी देगा, उसे भी यह परखकर ही, उसके बारे में निर्णय लेगा. दफ्तरी जीवन में तो उस पर अनेक प्रकार के दबाव भी थे, मगर अब तो वह स्वतंत्र है. इच्छानुसार कार्य कर सकता है. दफ्तर के बारे में सोचकर उसे विचार आता कि वहां गलत लोगों और फैसलों की सही कहना पड़ता था.

मगर यह लड़की काम में सर्वथा निपुण थी और नियुक्ति के लिए पूर्णतया योग्य. लड़कों से भी बढ़कर. लड़के तो कुछ भी नहीं थे.

फिर उसने सोचा कि अगर उसने लड़की को रख लिया तो लोग क्या कहेंगे. अभी तो उसका कारोबार बिल्कुल नया ही है. उसकी पत्नी भी उसके साथ नाराज हो सकती थी कि उसने इस्टैब्लिशमेंट में एक लड़की को क्यों रख लिया? इससे तो बेहतर है कि वह अपनी पत्नी को ही व्यवस्था के लिए साथ ले आया करे. उसका समय भी आराम से गुजर जाएगा. मगर पत्नी घर का काम करेगी कि दफ्तर का? पत्नी तो अपनी ऊल-जलूल बातों से उसके काम में बाधा डाल सकती थी. ये पलियां दफ्तर का काम नहीं कर सकतीं, वह अकसर सोचता. यदि पत्नी उसके साथ काम नहीं कर सकती तो एक लड़की कैसे कर सकती थी?.....फिर उसने कई और संस्थानों में काम करनेवाली लड़कियों के बारे में सोचा तो उसे महसूस हुआ कि लड़की उसके काम में पूरी तरह सहायक हो सकती थी. मगर वह लड़की की दीदा दलेरी देखकर धरारा गया. लड़कियां इतनी साहसी कैसे हो गईं कि पुरुषों की समानता करने लगीं? परंतु वह लड़की योग्य ही थी.

इंटरव्यू के बाद उसने सब को कह दिया कि वह निर्णय करके बाद में पत्र डालेगा और नियुक्ति-पत्र भेजेगा.

बाहर पतझड़ के पत्ते गिर रहे थे और इंटरव्यू देनेवालों के चेहरे उदास हो गए. उस समय लड़की ने उसे जिस दृष्टि से घूरा, उसका अभिप्राय था कि यदि उसने उसे रखना था, तो अभी ही रख लेता....और वह शिथिल-सी होकर चल पड़ी.... चली गई. जैसे कोई 'नहीं' में उत्तर लेकर जाता है.

लड़की की नजर में उस समय का भाव कुछ इस तरह का था, जिसे हीन-भाव



नहीं कहा जा सकता. हीन-भाव तो उसमें था ही नहीं. मगर वह कुछ ऐसा अवश्य था जो कि मोहन बाबू के मन में चुभकर रह गया था। शायद लड़की की तीखी नजर जो कि उसका निर्णय सुनकर शून्य हो गई थी.

यह भावुक दौरा है—उसने सोचा.....

फिर उसने निश्चय ही कर लिया कि वह लड़की यद्यपि कितनी भी काम के योग्य और रखे जाने के अनुकूल थी, परंतु वह उसे नहीं रखेगा. वह नौकरी करके अपने मां-बाप का आश्रय बनना चाहती हो अथवा अपने बहन-भाइयों का. उसे क्या ?.... और उसने लड़की के बारे में सोचना ही छोड़ दिया.

लड़की के जाने के बाद वह उसके प्रभाव के दायरे से भी बाहर निकल आया और उसने नियुक्ति पत्र किसी लड़के को दे दिया, पूर्ण विश्वास के साथ.

रात के समय जब उसने इस संबंध में अपनी पत्नी के साथ बात की तो उसने "कहा, चलो जो कुछ हो गया, ठीक है.....मगर नियुक्ति पत्र उस लड़की को ही मिलना चाहिए था.....यदि वह उसकी जगह होती तो इसी तरह करती...."

—यह औरत भी अजीब है, उसे ख्याल आया—यदि मैं उसे रख लेता, तब तो इसको नाराज हो जाना था.

और अपने निर्णय के बारे में वह फिर असंतुलित हो गया.

"योग्य व्यक्ति को उसका अधिकार अवश्य मिलना चाहिए." उसकी पत्नी ने खाना खिलाते समय उससे कहा—"मगर अब जो हो गया, ठीक है."

पत्नी का चेहरा निर्विकार था और वह बिस्तर पर लेटते ही सो गई.

मगर मोहन बाबू को रात भर नींद नहीं आई. वह सोचता रहा कि शायद लड़कियों की दीदा-दलेरी और योग्यता भी उनके विरुद्ध जा रही है.....कीन जाने....

उस समय शून्य रात की खामोश आवाज की उपेक्षा करके उसने अपने निर्णय के पक्ष में बहुत से तर्क प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया. उसने यह भी सोचा कि—'कारोबार के संबंध में प्रतिदिन मुझे कितना कुछ ही इस तरह का काम करना पड़ेगा जो कि मेरे कारोबार के लिए हितकर होगा....वैसे यद्यपि वह बुरा और अशोभीनय हो होगा....और वह सब कुछ मैं हर हालत में करूंगा भी.....अच्छे और बुरे की पहचान करनेवाली आत्मा का व्यवसाय से क्या संबंध ?'

मगर उसे रात भर नींद नहीं आई. बाहर बूंद-बूंद ओस-कण रात्रि के कोमल और स्निग्ध बदन पर गिर रहे थे जैसे रक्त-बूंदें.

उस समय वह बड़ी बेचैनी से सोच रहा था.

—अभी तो पहली ही रात है.....जिंदगी की शेष रातों में कैसे गुजारूंगा ?

कर्मभूमि

प्रकाशिका

(नव्वेवीं रचना : लघुकहानी)

राम खुदा



डा० कमल गुप्त

“बच्चा” बीरेंद्र सिंह ने चींकते हुए कहा.

“जो उसके पेट में बच्चा है.”

“इसका मतलब है खतरा अभी टला नहीं क्योंकि अगर इसकी गोद में लड़का बा गया तो वह अपने बाप की सारी जायदाद का वारिस हो जाएगा.”

“इसीलिए कहता हूँ बड़े भैया कुछ सोचो. मझले भैया को तो तुमने कूँए में धकेल कर अपने रास्ते से हटा दिया और पुलिस को खिला-पिलाकर मामला शांत कर दिया लेकिन अब अगर उसका वारिस पैदा हो जाएगा तो जमीन और जान दोनों से हूए जाएंगे. बड़ा होकर वह अपने बाप का बदला हमसे जरूर लेगा. इसी से कहता हूँ बड़े भैया कि कुछ सोचो ताकि मझले की औरत और उसके होनेवाले बच्चे की परछाईं भी हम लाखों की जायदाद को बचा सकें.”

आंगन से सटे कमरे में, अपने पेट में पल रहे तीन माह के बच्चे के साथ मझले भाई की विधवा रामा सो रही थी और बाहर ओसारे में उसके खिलाफ साजिशों की गोटियां फेंकी जा रही थीं. पति की मृत्यु के बाद वह बेसहारा हो गई थी. बड़े से घर में रहते हुए भी वह बेघर थी. आदमियों के बीच रहती हुई भी उसे सब कुछ बीराना और बेगाना लगता था. पति के असीम प्यार में डूबी हुई वह सुहागिन एक दिन एक पल में ऐसी अभागिन हो जाएगी, उसने कभी सोचा भी न था. उसकी भरो-पूरी दुनिया अचानक अभावों से भर उठी थी. वह घर उसे काट खाने को दौड़ता और वह



खयालों की दुनिया में, अपने पेट में पल रहे बच्चे की कल्पनाओं में खो जाती।

उसके जी में आता कि वह भागकर अपने मायके चली जाए और मां की आंचल में सर छुपा के रो ले, अपना दुःख सुना के जी हल्का कर ले पर उस हवेली से अकेले बाहर निकलने का रिवाज न था। फलतः उसने अपने देवर से मायके जाने की बात कही तो देवर का दिल भीतर ही भीतर उछलने लगा। जिस मौके के लिए उस औरत के जेष्ठ और देवर महीनों से परेशान थे, वह उन्हें इतनी आसानी से अपने आप हासिल हो जाएगा, इसकी तो उन्हें कल्पना भी न थी। जेष्ठ ने मायके जाते वक्त बीच में ददरी के मेले से होकर जाने की बात कही तो उसने मान ली। पर उसे कहां पता था कि मेला घुमाने के बहाने उसका जेष्ठ उसकी किस्मत की लकीरों को ही हमेशा-हमेशा के लिए ऐसे अंधेरों की ओर घुमा देगा जहां से वह ज़िंदगी भर नहीं निकल पाएगी। आखिरकार वही हुआ भी। मेला की भीड़ में शाम ढलते-ढलते वह खो गई। चारों ओर भीड़ ही भीड़ थी, आदमियों और औरतों का रेला था पर उसके जेष्ठ का कहीं पता न था। उसकी सांस तो जैसे ऊपर टंग गई। शरीर को कांठ मार गया। घबराई-घबराई बदहवास दधर-उधर भागते-भागते वह कब कहां अपने होशो-हवास गुम करके गिर पड़ी, उसे कुछ भी पता न था। रात के अंधेरों और आदमियों की भीड़ ने उसे निगल लिया पर अगली सुबह जब उसकी आंख खुली तो वह दो अन-जाने लोगों से घिरी थी जिनके चेहरों पर छोटी-बड़ी दाढ़ी थी। उन्हें देखते ही भय से उसके मुंह से चीख निकल गई। उन लोगों में से एक ने कहा—

“तुम घबराओ नहीं। तुम्हें हम लोग अपने पास रखेंगे और पूरी हिफाजत से रखेंगे。”

दूसरे ने कहा, “तुम इतनी खूबसूरत हो, इसी से इतना जोखिम झेलकर, तुम्हें मेले से उठाकर यहां ले आए हैं। तुम्हें हम कहीं नहीं जाने देंगे。”

उस औरत ने हाथ जोड़ते हुए उसे अपने घर जाने देने की प्रार्थना की, गिड़-गिड़ाई पर उन दोनों के ऊपर सब बेअसर था, उल्टे उसके ऊपर उठे दाहिने हाथ की कलाई पर खुदे ‘रामा’ नाम को देखकर वे दोनों सकते में आ गए। अलग कमरे के कोने में जाकर पहले ने दूसरे से कहा—

“इसे अपने पास रखना खतरे से खाली नहीं है। इसके हाथों पर खुदे नाम को मिटाना होगा वरना हम दोनों पकड़े जाएंगे”

फिर तो उस बंद कमरे में उस औरत के ऊपर जो फहर बरपा हुआ, वह बयान से बाहर की बात है। उन दोनों ने उस औरत की कलाई को कसकर पकड़ लिया और लकड़ी की कूंची को तेजाब में डुबोकर, उसकी कलाई पर खुदे हुए रामा शब्द को

मिटाने लगे. तेजाब की आग से जलकर वह औरत चीखने लगी—“कोई तो बचाए मुझे इनसे.....ये तो मार डालेंगे.....जिंदा नहीं छोड़ेंगे मुझे....अरे मेरे राम.....राम मेरी रक्षा करो.”

“चुप रे. क्या राम-राम की रट लगा रखी है.....ज्यादा राम-राम करोगे तो तेरी जबान को भी इसी तेजाब से जला के लोथड़ा बना देंगे....हरामजादी चुप....”

‘रा’ को मिटाने के बाद जब वे ‘मा’ को मिटाने लगे तो वह औरत बेबस धाक धिरनी की तरह चीखने लगी, चिल्लाने लगी, गुहार लगाने लगी—आदमियों को गुहार....राम की गुहार. फिर तो वे दोनों राम शब्द को सुनते ही आग के गोले बन जाते—

“चुप कुत्ती कहीं की...तू राम-राम की गुहार लगाएगी तो तेरी बोटी-बोटी का के चील-कौबों को खिला देंगे. राम-राम रटना बंद कर....जो होना था, सो हो गया अब खुदा खुदा कर....राम-राम नहीं....समझी....”

इसके बाद रोती, बिलखती, चीखती हुई उसे वहां उस बड़े मकान के किनारे बाले कमरे में बंदकर वे दोनों दालान में आकर सो गए. भीतर वह देर रात तक कराहती सिसकती सो गई लेकिन जब भोर में आंख खुली तो उसने घीरे से उठकर पीछे सीवान की ओर की बंद खिड़की को खोला. भोर की शीतल ताजी हवा से उसके भीतर थोड़ी ताकत तो आई पर तेजाब से झुलसी कलाई के कारण उसका सारा शरीर बुखार से तप रहा था. राहत की सांस लेने के लिए वह खिड़की से सटकर खड़ी हुई थी कि सीवान के किनारे से निकलकर एक छाया खिड़की के पास आकर खड़ी हो गई. उस औरत ने चौंककर देखा, वे एक जईफ फकीर थे जिनके चेहरे से रहम, मुहब्बत, शांति और आध्यात्म की किरणें फूट रहीं थीं. उस औरत की आंखें छलछला आईं और बिलख-बिलखकर उसने अपनी सारी द्वास्तान उस बूढ़े फकीर को सुनाई तो उनका दिल भर आया. उन्होंने तसल्ली देते हुए कहा—

“रोओ नहीं बेटी, खुदा तुम्हारी हिफाजत करेगा. वो बड़ा रहमदिल है.”

“तुम कहते हो तो जरूर रहमदिल होगा पर मुझे तो इंसानों से नफरत हो गई है बाबा. मेरे ही अपनों ने पैसों की खातिर मुझे दुनिया में भटकने के लिए छोड़ दिया और दूसरी ओर ये लोग हैं जो धर्म को लेकर मुझे तेजाब से जला रहे हैं. मेरे ही अपनों ने मुझे बेघर कर दिया और ये लोग मुझे बेघरम करना चाहते हैं. बेघर करना आसान है बाबा, पर बेघरम करना बहुत मुश्किल है. खून में समाया घरम कहीं अलग किया जा सकता है बाबा. इन दरिदों से मुझे बचा लो. बाबा, मुझे अपनी शरण में ले लो....मुझे मेरे मां-बाप के पास भेज दो.”



“सत्र करो बेटी. उस परवरदिगार पर भरोसा रखो. वो बड़ा कारसाज है. तुम्हारी हिफाजत वो जरूर करेगा.”

इतना कहकर बूढ़े फकीर ने दालान को कुंडी खटखटाई—एक बार, दो बार, तीन बार.... फिर जोर-जोर से खटखटाई. वे दोनों तेज आवाज सुनकर उठे. उन्होंने धड़काकर दरवाजा खोल दिया पर सामने बूढ़े फकीर बाबा का विराट व्यक्तित्व; मन की तरह धवल लंबी दाढ़ी और सर से पांव तक की फकीरी बान्नी देखकर वे सकते में आ गए. बाबा ने पूछा—“तुमने एक औरत को कमरे में बंद कर रखा है.”

“हां बाबा.”

“क्यों ?”

“मैं उसे मुसलमान बनाना चाहता हूं.”

“कैसे ?”

“उसके हाथ पर खुदे इसके नाम ‘रामा’ को मिटाकर.”

“पर क्या मिटा सके ?”

“रामा नाम तो मिटा दिया पर इसके जुवान से यह राम नाम मिटाना है. उसका यह राम-नाम रटना हमें वर्दास्त नहीं है.”

“तुम इसे मिटा नहीं सकते, कभी भी मिटा नहीं सकते, मेरे बेटे, क्योंकि इसके तो रोम-रोम में राम खुदा है—इसकी आत्मा में राम खुदा है....सब जगह पर राम खुदा है....उससे खौफ खाओ....”

इतना कहकर एक फरिश्ते की तरह भोर के धुंधलके में फकीर बाबा पलक झपकते ओझल हो गए. उन्हीं के पीछे-पीछे साड़ी में लिपटी वह दूसरी छाया भी ओझल हो गई.



मुलाकात

● (दूसरी कड़ी)

साहित्यकार गोविंद मिश्र से

कवि-कथाकार मुक्ता की बातचीत

शब्दों के पार के भावों को अपनी कलम से सूक्ष्मतम अभिव्यक्ति देनेवाले गोविंद मिश्र की शालीन और संवेदनशील व्यक्ति के रूप में अपनी अलग पहचान है। प्रसन्नता की बात है कि पिछले दिनों उनके महत्वपूर्ण उपन्यास 'पांच आगनोंवाला घर' को १९९८ के व्यास सम्मान द्वारा सम्मानित किया गया। करीब ५० वर्षों में फैली पांच आगनोंवाले घर की कहानी दरअसल तीन पीढ़ियों को अपने में समेटती है और यह कहने का प्रयास करती है कि परिवार किस तरह उखड़कर सिमटता हुआ करीब-करीब नदारत होता जा रहा है, व्यक्ति को उसकी वैयक्तिकता के सहारे अनेक कालखंड के झंझावात लेखन के लिए कैसे कसौटी बने, लेखन के अंदर क्या कुछ घटा, यह संवाद के जरिये अधिक बेहतर समझा जा सकता है—

प्र० लेखन को शुरुआत कविता से हुई या कहानी से ?

उ० जहां तक मुझे याद पड़ता है मैंने सबसे पहले कहानियां ही लिखीं। उम्र तब १५ के आसपास रही होगी, इंटरमीडिएट में पढ़ता था। तीन-चार कहानियां लिखी थीं, सिर्फ एक व्यक्ति के लिए और यह बात कैसे मेरे साथ आज तक चली आई कि मैं मानता हूं कि अगर मेरी एक रचना को एक सहृदय पाठक मिल गया तो उसका संसार में आना सफल हुआ। कहानियां छपती हैं या छापने के लिए लिखी जाती हैं, यह तब मैं जानता ही नहीं था। यह तब की बात है जब मैं नांदा में इंटरमीडिएट में पढ़ता था। उसके बाद पढ़ाई-लिखाई और नौकरी पाने की कोशिश में लिखना एक तरफ रहा। जब सरकारी नौकरी की पहली नियुक्ति पर घनवाद पहुंचा तो वहां एक गोष्ठी हफ्ते में एक दिन होती थी, एक लेबर अधिकारी के यहां। वहां लोग अपनी नयी रचनाएं सुनाते थे। मैं भी कुछ-न-कुछ ले जाता था। कभी कविता, कभी लेख, कभी कुछ। लेकिन सही दिनों अंदर-अंदर कहानियां लिखने का दबाव बढ़ता चला जा रहा था। हर हफ्ते एक कहानी पूरी करता। खुद टाइप करता और उसे किसी प्रतिष्ठित पत्रिका में भेजता जो वहां से खेद सहित वापस आ जाती थी। यह सिलसिला १९६३ से १९६५ तक चला। तब मेरी एक प्रतिष्ठित पत्रिका में पहली बार कहानी प्रका-



शित हुई, यह पत्रिका थी 'माध्यम', इलाहाबाद से; बालकृष्ण राव संपादक थे और कहानी थी—'नये पुराने मां-बाप'

प्र० आरंभ में किससे प्रभावित हुए ? यह प्रभाव क्या अंत तक बना रहा ?

डा० गोविंद मिश्र

उ० शुरू-शुरू में प्रभाव अपनी सहपाठिका के प्रेम का था जो आज भी साथ है लेकिन अगर आपका आशय किसी साहित्यकार के प्रभाव का है तो वैसा कोई प्रभाव नहीं पड़ा, बाद में भी नहीं. हां, उन दिनों इलाहाबाद में साहित्यकारों का जमा-वड़ा था. सन् १९५५ के आस-पास. उनसे मिलने, उनकी बातें सुनने की ललक रहती थी. एक तसवीर मन में बनती थी कि साहित्यकार कितना बड़ा होता है, कितना बड़ा सोचता है. अपने मित्रों के साथ फिराक गोरखपुरी, जो मेरे अंग्रेजी के अध्यापक भी थे, उन्हें ज़िंदगी के बारे में वतियाते कई बार सुना और खूब सुना. साहित्यकारों में मेरे सबसे प्रिय साहित्यकार दोस्तोवस्की हैं.

प्र० प्रशासनिक सेवा आपके रचनाक्रम में क्या कभी बाधा बनी ?

उ० प्रशासनिक सेवा के नियमों के अनुसार कला और साहित्य लेखन संबंधी चीजों पर कोई पाबंदी नहीं है इसलिए न तो मैंने कभी किसी से अपनी किसी पुस्तक के लिए अनुमति ली और न ही अपने आपको रोका. आज जहां हूं वहां पहुंचकर यह जरूर लगता है कि अवचेतन में कहीं एक बंदिश रहती रही होगी. प्रशासनिक परिवेश पर मेरा उपन्यास 'वह अपना चेहरा' भी था और जो मैंने नया उपन्यास हाल ही लिखा है—'अंघतमः' वह भी है लेकिन मुझे लगता है कि 'अंघतमः' में मैं ज्यादा मुक्त होकर लिख सका हूं, शायद स्वतः मुक्त हो गया हूं क्योंकि अब मैं सरकारी नौकर नहीं.

प्र० मार्क्सवादी विचारधारा ने क्या आपको प्रभावित किया ?

उ० जैसे कि हर युवा के साथ होता है, नयी उम्र में इस विचारधारा ने प्रभावित किया था लेकिन बहुत ही थोड़ी देर को क्योंकि जहां भी यह क्रियान्वित रूप में आई, वहां तानाशाही भी साथ-साथ आई, इससे मैं बड़ी जल्दी उचट गया.

प्र० क्या वादाबद्ध लेखन स्वस्थ साहित्य के निर्माण में सहायक होता है ? किस रूप में ?

उ० मेरे ख्याल में किसी किस्म की विचारधारा या वाद से खुद को बांधना उस मुक्त-काश को सीमित कर देना है जिसमें एक लेखक को विचरण करना चाहिए। वे विचार जो मेरी रचनाएं स्थापित करती हैं मैं उन्हें भी काटता चला, उनसे भी न बंध जाऊं इसलिए जो एक साहित्यकार में वैचारिक क्रमबद्धता ढूंढते हैं उनसे मैं अपने को असहमत पाता हूं क्योंकि यहां बात एक विचार के प्रतिपादन की नहीं है, संवेदात्मक उठन-बैठन की है। मैं अपनी संवेदनात्मकता के पीछे चलाऊंगा, वह जिधर ले जाए। हर रचना को अपने स्वतंत्र ढंग से एक विचार तक पहुंचाना चाहिए, न कि उस विचार को प्रतिपादित करना चाहिए, जो लेखक ने कहीं और से पाया है और जिससे वह कमोवेश चिपका हुआ है। जो विचार या वाद से बंधकर रचनाएं करते हैं, वे सिर्फ उन वादों और विचारों का अनुवाद साहित्य की भाषा में कर रहे हैं।

प्र० आपकी रचना प्रक्रिया में आपके पत्र भी शामिल हैं। आपने अपने अति व्यस्त जीवन में समय निकालकर कैसे इतना कुछ लिखा ? रचना कैसे जन्म लेती है ? बताएं।

उ० एक किताब निकली है—‘संवाद अनायास’ जिसमें बल्लभ सिद्धार्थ के पत्र हैं। उन पत्रों से प्रेरित होकर मैंने साहित्य और जीवन संबंधी अपनी सोच को खोलकर लिखा है। एक बार भी तराशा-वराशा नहीं, जिस दिशा में भी सोच चलता चला गया। इस तरह से वह किताब दो लेखकों की एक वक्ताशय-सी है। इसके अलावा पत्र कहीं छपे नहीं पर इरादा है।

जीवन में व्यस्तता तो रही लेकिन मेरी वरीयताओं में हमेशा लेखन सबसे ऊपर रहा, किसी और दिशा में मेरी महत्वकांक्षाएं चली ही नहीं। यह भी था कि मुझे लगता था कि अगर मैं नहीं लिखूंगा तो जीवित भी नहीं रह पाऊंगा। जहां लिखना सांस लेने जैसा अनिवार्य हो वहां समय अपने-आप निकल आता है। रचना प्रक्रिया पर मेरा एक पूरा लेख है—‘कथा भूमि में’ मुझे तो इतना ही मालूम है कि कोई एक चीज तीर की तरह भीतर चुभती चली जाती है और वह चुभन जब लौटती है तो पहले घुंघरी, फिर क्रमशः आकार लेती हुई। मैं कुछ उन सौभाग्यशाली लेखकों में हूं जिन्हें अब तक बहुत इंतजार नहीं करना पड़ा कि उसे किस पर लिखना है। लिखने में समय जरूर लगा। उपन्यास लिखने में जरूर वर्षों लगे लेकिन जब एक रचना की समाप्ति की ओर जाता होता हूं उन्हीं दिनों दूसरी रचना दस्तक देने लगती है। दरअसल मुझे उस नयी रचना को प्लेटफार्म पर आने देने की खातिर रचना जो मेरे हाथ में है, उसका समापन



करना पड़ता है। जब तक दस्तक नहीं आती जो रचना हाथ में है उसके साथ चलता रहता हूँ।

- प्र० निर्मल वर्मा की तरह आपके विदेशों के अनुभव आपकी रचनाओं में स्पष्ट नहीं झलकते, ऐसा क्यों ?
- व० विदेशों के अनुभव मेरे यात्रा-वृत्त में सीधे-सीधे आए हैं—‘घुघंभरी सुखी’ और यात्रा की दूसरी किताबों में कुछ कहानियाँ भी, उन अनुभवों के इर्द-गिर्द लिखी गईं—जैसे—‘शापग्रस्त’, ‘४५ अंश का कोण’, ‘खाक इतिहास’। निर्मल वर्मा के यहाँ ज्यादा स्पष्ट इसलिए झलकते हैं कि वे शायद मेरी तुलना में ज्यादा समय तक विदेश में रहे हैं। उनके बचपन के परिवेश के मुकाबले मेरा परिवेश ज्यादा भारतीय, गंवई गांव का और कस्बई था।
- प्र० अपने लेखन में स्त्री पात्रों को आपने किस रूप में अधिक वजन के साथ रखा है—आदर्शवादी, अत्याधुनिक, संघर्षशील या समझौतावादी ?
- व० आलोचकों का कहना है और शायद सही भी कि मेरे स्त्री पात्र पुष्प पात्रों की अपेक्षा ज्यादा सशक्त हैं लेकिन उनमें किसी तरह का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। जैसे यह नहीं कहा जा सकता कि मेरा एक पात्र सिर्फ आदर्शवादी या सिर्फ संघर्षशील है, उसके अलावा कुछ नहीं। मैंने हर पात्र को प्रस्तुत करते वक्त मानवीय जटिलता को ध्यान में रखा है जो उनमें होती ही है। उसमें जितना ज्यादा से ज्यादा लेखक जा सके।
- प्र० पीढ़ियों का अंतर आपकी कहानियों में विशेष रूप से उभरकर आया है। आपके निजी जीवन की क्या इसमें कोई अहम् भूमिका है ?
- व० मैंने अपनी पुरानी पीढ़ी को भी देखा है और बाद की पीढ़ी को भी और इन दोनों से ही मेरा भावनात्मक जुड़ाव रहा है। मैंने भरे-पूरे संयुक्त परिवार खूब देखे तो आज का जो परिवारों में अलगाव है, वह मुझे तकलीफ देता है। इसी तकलीफ से उभरकर आया है मेरा उपन्यास ‘पाँच आंगनों वाला घर’ जिसे व्यास सम्मान मिला। कुछ कहानियाँ भी हैं जैसे—‘युद्ध’, और हाल की कहानियों में ‘मुक्ति’ और ‘सावें’। मेरा ख्याल है—हम भारतीय जिस तरह से बने हैं उसमें संपूर्णतः सकारात्मक दृष्टिकोण के लिए यह जरूरी है कि पुरानी पीढ़ी को एकदम नकार नहीं दिया जाए। वे हमें बहुत कुछ दे सकते हैं। जो यथार्थ है वह यह कि मैं उस पीढ़ी का हूँ जिसने अपने बुजुर्गों की भी मार खाई और अपने बच्चों की भी।
- प्र० अपने उपन्यासों में आप किसे सर्वाधिक सफल मानते हैं ?

उ० यह कहना मुश्किल है क्योंकि हर उपन्यास अलग विषय, परिवेश को उठाता है और अलग तरीके से लिखा गया। जैसे दो व्यक्तियों की तुलना नहीं की जा सकती, ऐसे ही दो रचनाओं की नहीं की जानी चाहिए। अगर अंतरंगता (इंटेंसिटी), रिसता हुआ दर्द, कवितात्मकता यह देखने चलेंगे तो 'तुम्हारी रोशनी में' अच्छा उपन्यास लगेगा और अगर यथार्थ का खुरदरापन, पात्रों की भीड़, जीवन का फैलाव.....यह सब देखेंगे तो शायद 'लाल-पीली जमीन' या 'पांच आंगनों वाला घर'। अगर भारतीय परंपरा और आत्मिकता की खोज में निकलें तो शायद 'धीर सहीरे'।

प्र० व्यास सम्मान के लिए आपको मेरी ओर से बधाई। कैसा लगा आपको यह सम्मान मिलने पर ?

उ० बधाई के लिए धन्यवाद। मैंने अपने भाषण में भी सम्मान लेते समय कहा था कि यह अच्छा है कि सम्मान रचना का है, रचनाकार का नहीं। ऐसे सम्मानों को मैं समाज के स्नेह के रूप में लेता हूँ जो भूले बिसरे अपने लेखक को देता है। लेकिन जहां पुरस्कारों और सम्मानों के लिए तिकड़म की जाती हैं या उनकी ही एक रचनाकार के अच्छे या बड़े रचनाकार होने का निकष मान लिया जाता है, मैं इससे सहमत नहीं हूँ। अच्छा रचनाकार वह है जो लगातार लिखता है और अच्छा लिखता रहता है। जिसके लेखन का उसके व्यक्तित्व पर भी प्रभाव पड़ता है। अलग से दिखता है कि यह साहित्यकार है, मात्र लेखक नहीं। जहां तक बड़ी रचनाएं देने का सवाल है तो हम सबका यह भाग्य नहीं, अच्छी रचनाएं हममें से काफी लोग लिख लेते हैं।

प्र० 'पांच आंगनों वाला घर' ही क्या आपकी कृतियों में सर्वश्रेष्ठ है या इस निर्धारण में व्यास सम्मान की भूमिका अधिक है ?

उ० इसका जवाब मैं ऊपर दे चुका हूँ। ये आलोचकों और पाठकों का काम है कि वे किस रचना को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। दुर्भाग्य से आलोचक आज हैं ही नहीं तो पाठकों की ढूँढ़ने दीजिए जो मेरी रचना उन्हें प्रिय लगे, सबसे ज्यादा प्रिय लगे। पर मेरा ख्याल है कि वह रचना श्रेष्ठ होती है जो खुद को पढ़वा ले, जिसे बार-बार पढ़ा जा सके और जिसमें हर बार जीवन के नये अर्थ मिलें।

प्र० समकालीन कहानी जिसमें मिथकों के नये प्रयोग और जादुई यथार्थवाद भी शामिल है, उसके बारे में आपका क्या कहना है ? क्या यह पहले ले कथा आंदोलनों का नया सिलसिला भर है या कुछ और अधिक ?

उ० हर पीढ़ी में कुछ लेखक ऐसे होते हैं जो अपनी तरफ ध्यान नये प्रयोगों, नयी



घोषणाओं, आंदोलनों आदि से आकर्षित करना चाहते हैं।

- अगर लेखक इन्हीं के नीचे दब गया तो उसका विकास अवसृद्ध हो जाता है। मेरा ख्याल है कि हर लेखक को स्वयं को अपनी तरह से विकसित होना चाहिए, किसी से प्रभावित होकर नहीं। चाहे वह व्यक्ति हो या आंदोलन या वाद, लेखक का विकास उसकी निजता से प्रसूत हो और जीवन की जिन करवटों से वह गुजरा है, उनका प्रभाव उस पर साफ-साफ दिखाई दे। हमें इसका भी ख्याल रखना चाहिए कि पठनीयता रचना की पहली शर्त है। जिन रचनाओं को लेखक भी नहीं पढ़ पाते उन्हें पाठक पढ़ सकेंगे, ये अपेक्षा करना ही देवकफी है।
- प्र० आलोचना की राजनीति ने स्वस्थ रचनाओं की उपेक्षा की है, आपका इस बारे में, अपनी रचनाओं के बारे में क्या विचार है ?
- उ० एक तो साहित्य को वैसे ही हाथिए पर ला दिया गया है। जैसी पत्रिकाएं और जैसा माहौल उन दिनों था जब मैंने लिखना शुरू किया था, वह आज नहीं। ऊपर से हम लेखकों के भी खेमे बने हुए हैं। इन खेमों में खासकर ज्यादातर लेखक चर्चा और लेखक होने की मुग्धता....इन सबकी प्रसन्नता पा लेना चाहते हैं। वे स्वयं को लेखक का जो तनाव और दुःख भरा रास्ता है, उस पर चलने ही नहीं देते.... जिस रास्ते पर चलकर लेखक निरंतर इस चीज में सुलगता रहता है कि उससे अभी वह नहीं लिखा गया, अभी उसे क्या-क्या लिखना है। आज कम लोग उस महत्वाकांक्षा से पीड़ित दिखते हैं जो एक साहित्यकार की होनी चाहिए—एक बहुत ही अच्छी रचना की तलाश, निरंतर तलाश।
- प्रशंसा और आलोचना को लेकर मैंने कभी कोई कुंठा नहीं पाली, तब भी नहीं जब व्यास सम्मान नहीं मिला था। क्योंकि जहां आलोचना ही नहीं है वहां कौन सी आलोचना चाहूं, मैं अपनी रचनाओं की छुटगुट समीक्षाएं निकल जाती हूँ। शायद बड़े और निष्पक्ष आंकलन (मेरा ही नहीं किसी का भी) का यह समय ही नहीं है। आज सब आने को स्थापित करने, आगे बढ़ने में इस कदर लगे हुए हैं कि वे दूसरों को स्थापित क्या करेंगे, मैं संजुष्ट हूँ कि प्रकाशक और संपादक मेरी रचनाएं मांगते हैं, किताबें आने पर उन पर समीक्षाएं लिखी जाती हैं। बाकी मैं अपने लेखन में व्यस्त हूँ, लेखकीय तनाव से ही छुट्टी नहीं मिलती कि यह सोचूँ कि कौन खेमा मेरी उपेक्षा कहाँ कर रहा है, कौन स्वागत कर रहा है। अच्छा लगता है यह देखकर कि मैं किसी खेमे का नहीं हूँ, अपने ही खेमे का हूँ।
- प्र० बड़ी पत्रिकाएं जहां बंद हो रही हैं, लघु पत्रिकाओं की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। इससे क्या रिक्तता भर जाएगी ?
- उ० बड़ी पत्रिकाओं का एक बहुत अच्छा योगदान था वह यह कि वे साहित्य को घर-घर पहुंचाती थीं। यह काम छोटी पत्रिकाएं नहीं कर पा रही हैं। फिर छोटी पत्रिकाएं ज्यादातर अपने खेमों के इर्द-गिर्द सिमटकर रह जाती हैं। वे उन खेमों

के सदस्यों के बाहर के लोगों के लिए या आम पाठक के लिए बेकार होती है। सामान्य पाठक तक पहुंचने के लिए किसी भी पत्रिका को अपनी निष्पक्षता और खुलापन स्थापित करना होगा।

प्र० पुरस्कारों की अपनी राजनीति है। आपका क्या कहना है ?

उ० इस पर मैंने हाल ही में 'अक्षरा' के संपादकीय में लिखा है। कुछ बड़े पुरस्कारों को छोड़कर ज्यादातर पुरस्कार मैनेज किए जाते हैं। कमेटियों में ऐसे लोगों को रखा जाता है जो जाते ही यह तय करते हैं कि निर्मल वर्मा को नहीं देना है, अपना वो आदमी काफी दिनों से घूम रहा है, उसे उपकृत करना....आदि-आदि। जल्दी ही ये छोटे-छोटे पुरस्कार जो जहां-तहां उग आए हैं, ये साहित्य में प्रदूषण जैसे लगने लगेंगे। मेरा मानना है कि सबसे बड़ा पुरस्कार वह है जो लेखक स्वयं को दे सकता है और वह है एक साहित्यकार का जीवन जीना और लगातार लिखना।

प्र० क्या किसी महत्वपूर्ण लेखन पर कार्य कर रहे हैं ?

उ० अभी हाल ही में अपना नया, आठवा उपन्यास 'अंशतम' पूरा किया है, उसे अंतिम रूप दे रहा हूं।

प्र० बसने के लिए आपने भोपाल शहर ही क्यों चुना ?

उ० कोई खास वजह नहीं थी, भोपाल आकर बसने की। सिर्फ दिल्ली, बंबई आदि में नहीं रहना चाहता था। वहां जितना वायुमंडल में प्रदूषण है, उतना ही लोगों के दिमाग में। लोग यह हथियाने, वह पाने, इसे मैनेज करने इन्हीं सबके लिए भागते रहते हैं। मैं अपने में सिमटकर अपना जीवन जीना चाहता था और सिर्फ लिखने में लगना चाहता था इसलिए इस छोटे से कस्बे में आ गया। यह भी लगा कि मनुष्य में आस्था इन छोटे शहरों, कस्बों में ही रहकर बचाई रखी जा सकती है।

प्र० साहित्य में अश्लीलता को आप किस रूप में और किस सोमा में ग्राह्य मानते हैं ? क्या खुलकर लिखना अश्लीलता है ?

उ० साहित्य का सरोकार सौंदर्य से है जिसके मापदंड हर समाज में अलग-ललग होते हैं। खुलकर लिखने मात्र से अश्लीलता नहीं आती। स्वभाविक ढंग से सभोग का भी वर्णन एक रचना में आता है तो वह भद्दा हो ही नहीं सकता। अश्लीलता और भद्दापन आता है जहां हम जानबूझकर, आधुनिक बनने के चक्कर में या स्वयं को ज्यादा मुक्त लिखने के चक्कर में फैशनपरस्त होकर उन चीजों को लाते हैं।

प्र० आपकी दृष्टि में साहित्य के सरोकार क्या हैं और क्या होने चाहिए ? क्या सिर्फ मनोरंजन या समाज सुधार, युग परिवर्तन, वैचारिक कायाकल्प या और कुछ ?

उ० सिर्फ मनोरंजन अच्छे साहित्य का उद्देश्य नहीं हो सकता। उसी तरह वह कोई क्रांतिकारी परिवर्तन समाज में ला सकता है, यह भी दिवास्वप्न है। साहित्य का साक्षात्कार पाठक के एकांत से होता है। इसलिए वह अपने पाठकों में एक



बुनियादी बदलाव ला सकता है। अच्छे साहित्य को मेरे ख्याल से आज के यथार्थ को उठाते हुए, जीवन के अर्थों को उद्घाटित करना चाहिए। साथ ही यथार्थ को लांघना चाहिए ताकि पाठकों की नजर जीवन की उदात्तता की तरफ चले।

प्र० साहित्यिक पाठनीयता में कमी का संकट गहराता जा रहा है, उसको दूर करने के लिए क्या कुछ करना श्रेयस्कर और सार्थक होगा ?

गोविंद मिश्र : एक परिचय

महत्वपूर्ण उपन्यास 'पांच आंगनों वाला घर' के लिए गोविंद मिश्र को व्यास सम्मान (के. के. बिरला) से सम्मानित करने के पूर्व यह सम्मान सर्वश्री रामविलास शर्मा, शिव प्रसाद सिंह, धर्मवीर भारती, कुंवर नारायण, रामस्वरूप चतुर्वेदी, गिरिजा कुमार माथुर एवं केदारनाथ सिंह को दिया गया है।

गोविंद मिश्र हिंदी साहित्य के एक सुपरिचित कथाकार हैं—निरंतर स्तरीय लेखन के लिए विख्यात। करीब २६ वर्षों में फैली रचनाशीलता को उजागर करनेवाली कृतियां हैं—

● उपन्यास 'वह अपना चेहरा' 'उतरी हुई धूप' 'लाल पोली जमीन' 'हुजूर दरबार', 'तुम्हारी रोशनी में' 'धीरसमीरे' 'पांच आंगनों वाला घर' ● कहानी संग्रह : 'रगड़ खाती आत्म-हत्याएं' 'नये-पुराने मां-बाप', 'अंशुपुर', 'बांसू' 'खुद के खिलाफ' 'खाक इतिहास', 'पगला दादा', 'आसमान कितना नीला' 'हवावाज' 'निर्झरनी' (दो खंडों में संपूर्ण कहानियों का संकलन), 'कवि के घर चोर' (बच्चों के लिए) ● यात्रा-संस्मरण : 'बुधमरी सुर्खी', 'दरख्तों के पार....शाम', झूलती जड़ें ● निबंध : 'साहित्य का संदर्भ', 'कथा भूमि', 'संवाद अनायास' ● विविध : 'मुझे घर ले चलो' (सभी विधाओं का प्रतिनिधि संकलन) 'लेखक की जमीन' (साक्षात्कारों का संग्रह), 'अर्थ ओझल' (प्रमुख बीस कहानियों का संकलन), 'स्थितियां रेखांकित' (संपादित कथा-संकलन विशेष भूमिका के साथ), 'प्रतिनिधि कहानियां' ● पुरस्कृत कृतियां : 'लाल-पोली जमीन' आर्थर्स गिल्ड आफ इंडिया द्वारा; 'हुजूर दरबार' उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के प्रेमचंद पुरस्कार द्वारा और 'धीरसमीरे' भारतीय भाषा कलकत्ता द्वारा; 'तुम्हारी रोशनी में' और 'धीरसमीरे' गुजराती में अनूदित और प्रकाशित। कई कहानियां अन्य भाषाओं में।

● सबसे बड़ी चीज हम लेखकों को ही करनी चाहिए और वह यह कि अपनी पुस्तक में पठनीयता का ख्याल रखें। ऐसी रचना लिखना बेकार है जो अपने आपको पढ़ना नहीं सकती। संपादकों, प्रकाशकों और अन्य संबंधित लोगों को भी ऐसी रचनाओं से परहेज करना चाहिए ●

—एच एक्स ९४ ई ७ अरेरा कालोनी भोपाल-४६२०१६

२॥ विराग ॥

शूद्रों की व्यथा-कथा

● (तीसरी व्यंग्य रचना)

रवीन्द्रनाथ त्यागी

स्वामी विवेकानंद का मत था कि आर्य लोग बाहर से नहीं आए थे. वे शुरु से ही इस देश के निवासी थे. प्राचीन काल के जितने भी और अधिकारी ज्ञाता हैं उनके अनुसार आर्य लोग मध्य एशिया के निवासी थे और वे जब भारत आए तो सिन्धु-नाटी में एक विकसित सभ्यता पाई जाती थी. वह एक सर्वमान्य तथ्य है कि वेद जो हैं वे संसार के सबसे प्राचीन ग्रंथ हैं. ऋग्वेद की रचना ईसा से कई हजार वर्ष पूर्व हो गई थी. वैदिक ज्ञान विभिन्न संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रंथों और उपनिषदों में संगृहीत हैं. वैदिक धर्म का संचालन स्मृति-ग्रंथों द्वारा होता था और सौ से ऊपर जो स्मृतियां उपलब्ध हैं उनमें मनुस्मृति अपना दिशिष्ट स्थान रखती है. बाद में चलकर वैदिक यज्ञों में पशुओं की बलि दी जाने लगी और यह हिंसा जैन-धर्म के उदय का प्रथम कारण बनी. शंकराचार्य, महर्षि दयानंद ने वैदिक धर्म का पुनरुत्थान किया पर उसके बावजूद सनातन धर्म के नाम से हिंदू धर्म चलता ही रहा जिसमें अवतारवाद, कर्मकांड, मूर्तिपूजा, बलि-प्रथा और काफी चीजें ऐसी थीं जो मात्र ब्राह्मणों और महाब्राह्मणों के स्वार्थ को ही पूरा करती थीं. हम लोग मोक्ष-प्राप्ति में लगे रहे और विदेशी आक्रामक देश पर आक्रमण के बाद आक्रमण करते रहे और अंत में. चलकर हमारे शासक ही बन बैठे. देश के शीघ्र पतन की सारी जिम्मेदारी सिर्फ ब्राह्मणों पर ही जाती है और इस कारण मैं यह प्रबंध उन्हीं को लेकर लिख रहा हूँ.

'शतपथ ब्राह्मण' के अनुसार जो ब्राह्मण वेदों का श्रवण व अध्ययन करते हैं वे मनुष्यों में देवता हैं. 'धम्मपद' के अनुसार ब्राह्मण होने के लिए जटा, गोत्र व जन्म



जल्द ही नहीं है। ब्राह्मण तो वह है जिसमें सत्य है, धर्म है और पवित्रता है। 'भागवत्' के अनुसार, जो ब्राह्मण सर्वत्र समदृष्टि होता हुआ भी दीनजनों की उपेक्षा करता है, उसको ब्राह्मणत्व भी, टूटे हुए पात्र से निकलते हुए पानी के समान धीरे-धीरे क्षीण हो जाता है। ब्राह्मण का शरीर क्षुद्र कामनाओं के लिए नहीं है, वह तो इस लोक में धीरे तप के लिए और परलोक में शाश्वत कल्याण के लिए ही बना है। 'आरण्यक ब्राह्मण' [जो वनों में ही पढ़ने के लिए रचा गया] के अनुसार चारों वेद ब्रह्मा के मुख से निकले और उनका अंतिम अर्थ है—चार आश्रम, सोलह संस्कार और चार वर्ण। 'मनुस्मृति' के अनुसार, जो ब्राह्मण वेद न पढ़कर, दूसरे कामों में व्यस्त रहता है, वह ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी नहीं रहता। वर्ण कर्म पर निर्भर होता है, जन्म पर नहीं। यदि कोई शूद्र, गुण, कर्म व स्वभाव में, ब्राह्मण की भांति रहता है तो उसे ब्राह्मण ही मानना चाहिए, शूद्र नहीं। वही ब्राह्मण सग्न वेद व परमेश्वर को जानता है जो प्रतिष्ठा को विष तथा अपमान को अमृत समझता है। 'मनुस्मृति' जो है वह 'मनु' की 'स्मृति' में लिखी गई थी।

'मनुस्मृति' के अनुसार ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से निकले, क्षत्रिय ब्रह्मा की बाहु से उत्पन्न हुए, वैश्य लोग ब्रह्मा की जंघा से प्रकट हुए और शूद्र जो थे वे ब्रह्मा के चरणों से निकले। ब्रह्मा द्वारा आदेशित है कि ब्राह्मण जन्म से ही धर्म की शाश्वत मूर्ति है क्योंकि वह धर्म के लिए ही जन्म लेता है। ब्राह्मण के कर्म हैं वेदों को पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना कराना और दान लेना या देना। क्षत्रिय के कर्म हैं—प्रजा की रक्षा करना, दान और यज्ञ कराना, वेदों का अध्ययन करना और शेष विषयों में अनासक्ति रखना। पशुपालन, दान, यज्ञ, वेदाध्ययन, वाणिज्य व कृषि की जिम्मेदारी वैश्यों पर डाली गई। शूद्र के लिए ब्रह्मा ने मात्र एक ही आदेश दिया और वह था ऊपर बताए तीनों वर्णों की ईर्ष्यारहित होकर सेवा करना। कर्म से चलकर बात जन्म पर आ गई। क्या वेदों में और स्मृति में श्लेषक आ गए? स्वामी विश्वकानंद ने स्पष्ट कहा है कि 'यह कहना कि केवल वेदों में ही परम तत्त्वज्ञान है, एक कुतर्क है।' मनु ने स्वयं यह बात कही है कि 'वेद में वही अंश वेद है जो बुद्धि-प्राप्त है और विवेक सम्मत है।' वेदों में ऐसे-ऐसे अश्लील श्लेषक हैं कि उनका अर्थ मैं अपनी सगी पत्नी को नहीं बतला सकता। हां किसी और की रूपवती पत्नी हो तो बात अलग है। पराई स्त्रियों को ज्ञान प्रदान करना तो एक ऐसा दैनिक धर्म है जो मासिक धर्म के बाद वेद जल्द ही है। 'ईश्वर ग्रंथों के अधीन है और ग्रंथ जो है वे ब्राह्मणों के अधीन हैं।' आर्य धर्म के पतन का प्रमुख कारण जाति-प्रथा ही है, और कोई प्रथा नहीं। हमारे धर्म-ग्रंथ 'नियंता धर्म-स्त्री शूद्रोनाधियताम्' का आदर्श रखकर आगे चले और वेद

सुननेवाले शूद्र के कानों में पिघला हुआ सीसा डलवाने का दंड निश्चित किया गया। मनु ने ब्राह्मण को पूर्ण स्वतंत्रता दी मगर शूद्र को तो दास ही स्वीकार किया गया। वह न ज्ञान प्राप्त कर सकता था, न शस्त्र धारण कर सकता था और न धन-संग्रह ही कर सकता था। मनु ने एल ही अपराध के लिए ब्राह्मण इत्यादि के लिए एक दंड निश्चित किया और शूद्रों के लिए दूसरा, कानून के सामने सब बराबर नहीं माने गए। राजा क्षत्रिय होता था तो मंत्री ब्राह्मण होता था। मनु ने शूद्रों की सूची भी दी है जिसके अनुसार लुहार, चरवाहे, जल्लाद, बढ़ई, चारण, नट, अभिनेता, ठठेरे, कहार, मल्लाह, कुम्हार, चांडाल, डोम, तेली, चमार, कसाई, जुलाहे, घोड़ी, दर्जी, नाई, मछुए, कलाल, शल्य-चिकित्सक, नर्तक, माली, सुनार, रंगरेज और बौद्धमत के सारे अनुयायी शूद्र माने जाते थे। शूद्र लोग अपने बच्चों के नाम भी ऐसे रख सकते थे जिससे कि उनका दायित्व प्रकट होता ही। ब्राह्मण तो चोर, उचकका व व्यभिचारी होने पर भी सर्वथा वंदनीय था। अतिथियों में भी ब्राह्मण को ही सबसे पहले भोजन देने की व्यवस्था की गई—ब्राह्मणः भोजनप्रियः। यह भी बनाया गया कि श्राद्ध में पितृपक्ष में भोजन करते समय ब्राह्मण के सामने शूद्र को नहीं आने देना चाहिए।

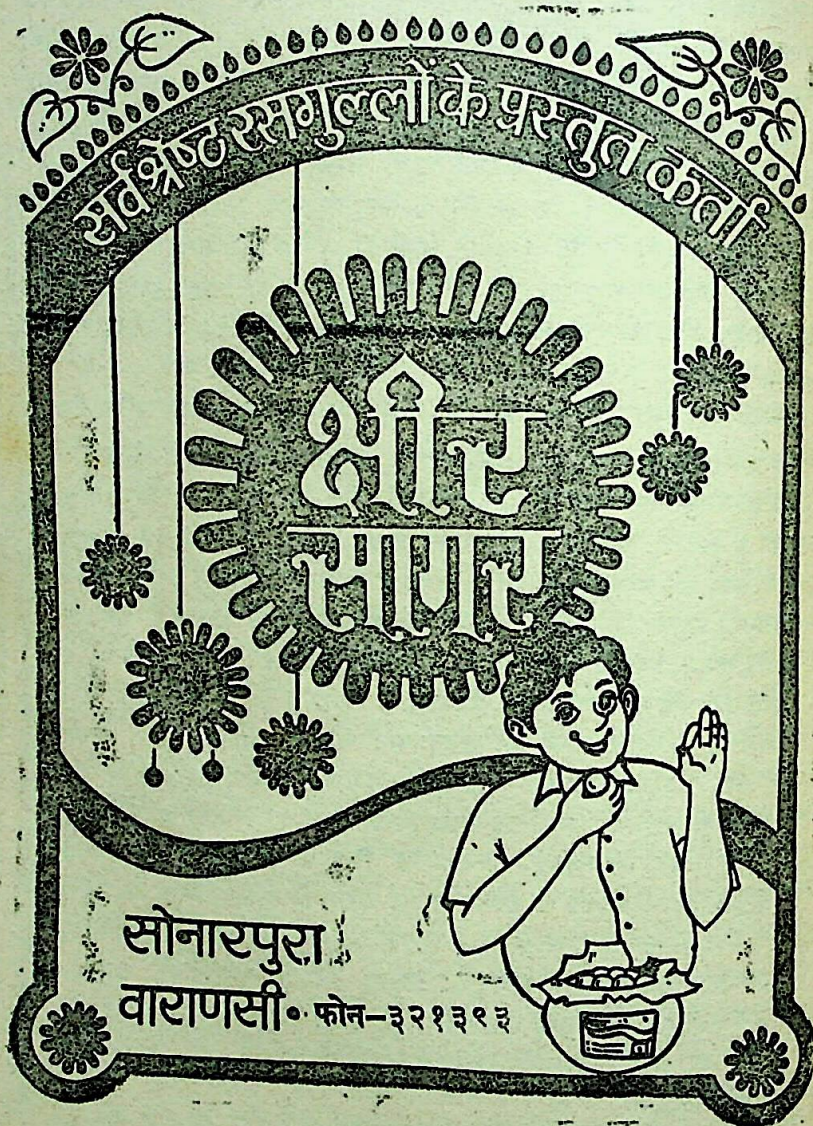
महामति मनु के अनुसार जिस देश का राजा कोई शूद्र हो, वहां नहीं रहना चाहिए। ब्राह्मण की हत्या का कोई प्रायश्चित्त नहीं होता क्योंकि 'ब्रह्महत्या' से बड़ा पाप और क्या होगा ? ब्राह्मण को अलवृत्ता यह अधिकार जरूर था कि वह शूद्र को मट्ठी में फिकवा दे या उसके नाक, कान, जोभ, जांघ, जननेंद्रिय या तितंब काट ले। शूद्र यदि कुत्ता, बिल्ली, मेंढक व छिपकली इत्यादि की भी हत्या करता है तो उसे उसका प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। मनु के अनुसार प्रत्येक राजा को ब्राह्मण की आज्ञा का पालन करना जरूरी था—प्रसंग चाहे राजनीतिक हो या धार्मिक। ब्राह्मण को अज्ञानी होते हुए भी आदेश देने का अधिकार था। गड़ा हुआ धन यदि मिल जाता था तो उसमें से आधा ब्राह्मण का होता था और आधा राजा का। ब्राह्मण किसी से भी जितना चाहे धन ले सकता था क्योंकि वह सबका स्वामी होता था, मनु ने निर्देश दिया कि शूद्र की गवाही को तभी सत्य माना जाए जब उसे घषकतो हुई अग्नि भी न जला सके। ब्राह्मण को शपथ तो क्या दंड तक से मुक्त रखा गया। हाँ उसे राज्य से निर्वासित जरूर किया जा सकता था। शूद्र यदि बाकी तीन वर्णों को गाली देता था तो उसके मुख में दस अंगुली को घषकती हुई लौह-शलाका डाली जाती थी और यदि वह अहंकारवश किसी ब्राह्मण को धर्मापदेश देने की हिम्मत करता था तो उसके कानों व नाक में गरम तेल डलवाने की व्यवस्था रखी गई थी। शूद्र



जिस अंग से भी ब्राह्मण का अपमान करता था, उसका वही अंग काटा जाना उचित था। शूद्र कभी उच्च वर्ण के लोगों के साथ एक आसन पर बैठ नहीं सकता था। उच्चवर्ण की स्त्री से शादी या प्रेम करने पर शूद्र को प्राणदंड के योग्य समझा जाता था, हां यदि ब्राह्मण किसी शूद्र स्त्री के साथ संभोग भी करता था तो उसे कोई लांछन नहीं लगता था। मनु के अनुसार कोई ब्राह्मण यदि भिक्षा के रूप में शय्या, घर, मणि, मांस और मछली प्राप्त करता था तो उससे उसे कोई पाप नहीं लगता था। मनु के अनुसार यज्ञ में किसी पशु की बलि देने पर, उस बलि देनेवाले ब्राह्मण की और बलि दिए गए पशु की सद्गति होती थी। शूद्रों को खरीदा और बेचा जा सकता था। ब्राह्मण बुरे काम करने पर भी पाप-मुक्त ही माना जाता था। शूद्रों की बस्ती गांव के बाहर होती थी और उन्हें केवल मिट्टी के ही बर्तन रखने होते थे, घातु के नहीं।

चाणक्य का मत था कि जहां धनिक, श्रोत्रिय ब्राह्मण, राजा, नदी और घैद्य न हों वहां एक दिन भी रहना ठीक नहीं है। राजा का बल पराक्रम में होता है, ब्राह्मण का बल उसके ब्रह्म-ज्ञान में होता है और स्त्रियों का बल उनके रूप, यौवन व स्वभाव के माधुर्य में होता है। संतोषी राजा, असंतोषी ब्राह्मण, लज्जावती गणिका व निर्लज्ज कुलांगना। नाश को प्राप्त होते हैं। जो ब्राह्मण धन के लिए वेद पढ़ता है और शूद्र का बन्धन खाता है वह विषहीन सर्प के समान क्या कर सकता है? ब्राह्मण तो एक वृक्ष के समान होता है जिसकी संव्यारूपी जड़ है, वेदरूपी शाखा है और धर्म-कर्मरूपी पत्ते हैं। ब्राह्मण की जड़ की रक्षा करना जरूरी है। चूंकि उसके बिना न वेद रहेंगे और न धर्म-कर्म रहेगा। ब्राह्मण वह है जो 'स्वतः प्राप्त' फल का आहार करता है, वनवास में रुचि रखता है और नित्यप्रति श्राद्ध इत्यादि करता है। जो ब्राह्मण मात्र एक समय भोजन करता हो, छह कर्मों को नित्य करता हो और जो ऋतुकाल ही में स्त्री-समागम करता हो वह 'द्विज' कहलाता है। चाणक्य यह स्पष्ट रूप से कहता है कि रूपवती गणिका, दुष्कुल की भी ही तो भी उसका उद्धार करना ही चाहिए। विदुर के अनुसार ब्राह्मण के लिए तप उतना ही आवश्यक है जितनी कि युवती-स्त्रियों के लिए चंचलता होती है। गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार ब्राह्मण कैसा भी गुणहीन हो, उसका तो आदर करना ही चाहिए—पूजहुं विप्र सकल गुण होना। और जहां तक शूद्रों का सम्बन्ध है, उन्हें तो सताना ही हमारा कर्तव्य है। ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी, ये सब शूद्र के अधिकारी।

ब्राह्मणों के बारे में दो बातें और कहनी हैं। सारे भारत में यह प्रथा थी कि किसी भी व्यक्ति के मरने पर श्राद्ध, पिंडदान और गोदान करने के अलावा कपड़े, बिस्तर,





पलंग वगैरा घर का और सामान भी देना पड़ता था ताकि पर-

लोक में मृत व्यक्ति को किसी चीज की कमी न हो। वह सामान महान्राह्मण इकट्ठा करते थे। महर्षि दयानंद जैसे महान् पुरुषों ने ये अंधविश्वास समाप्त करने में बड़ी तत्परता से काम किया। इसी तरह बंगाल में कभी कुलीन ब्राह्मण के साथ लड़की व्याहने की ऐसी भयंकर प्रथा थी कि उसकी झलक पाने के लिए आप शरत् बाबू का 'ब्राह्मण की बेटी' नामक छोटा-सा उपन्यास ही पढ़ लें तो काफी है। बंगदेश के समाज-सुधार के लिए राजा राममोहन राय, महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर व आचार्य केशवचंद्र सेन ने 'ब्रह्म-समाज' की स्थापना की।

शूद्र लोग शताब्दियों तक पिसते रहे। ब्राह्मणों ने पाम्बंड का ऐसा मायाजाल फैलाया कि करोड़ों लोग हजारों वर्षों तक कुत्ते की ज़िंदगी बसर करते रहे। इसी कष्ट के कारण, शूद्र लोग विदेशियों के आने पर घर्म-परिवर्तन के लिए भी विवश हो गए। गांधी बाबा ने इन्हें 'हरिजन' कहा और उनको मदिरों में प्रवेश का अधिकार दिलवाया। आजादी के बाद उन्हें वोट देने का अधिकार मिला और अब ब्राह्मण नेता दलितों के तलुए चाटने लगे। गनीमत बस यही रही कि शूद्रों की रूपवती युवतियां, सारे उच्चवर्णों को सदा तीर्थयात्रा का आनंद देती रहीं। प्रमाण के लिए फिलहाल एक ही श्लोक देता हूं।

चांडाली तु स्वयं काशी, प्रयागश्चर्मकारिणी
अयोध्या पुष्कसी प्रोक्ता, रजकी मथुरा मता।

—शमशेर हाउस १/१ गुरुतेग बहादुर रोड, देहरादून (३० प्र०)

परिहास

'हे भगवान्' एक संपादक बोला, 'पिछले चौबीस घंटे में कोई काला कारनामा नहीं हुआ। सवेरे में अखबार के प्रथम पृष्ठ की सुर्खी क्या होगी ?'

दूसरे ने ढाढ़स बंधाया, 'धबराओ नहीं रामकृष्ण ! मनुष्य के स्वभाव में विश्वास रखो। कुछ न कुछ होफर रहेगा.'

●
संपादक—क्या तुम प्रूफरीडर होना चाहते हो ?

'जी हां.'

'तुम अपने पद का उत्तरदायित्व भी समझते हो ?'

'बिल्कुल अच्छी तरह श्रीमान् ! जब भी पत्र में कोई गलती होगी तभी आप मुझे गलियां देंगे और सारा दोष मेरे पर मढ़ेंगे और मुझे चुप रहना होगा.'

आत्मविश्लेषण ४६—



मेरी रचना प्रक्रिया

जमीन-कभी गर्म चाय डालने से जैसे काच का गिलास चटक जाता है, कुछ उसी से मिलता अनुभव मुझे तब होता है जब कोई वाक्य किसी का कहा-सुना मुझे गहरे भेदकर मेरी पुस्तक जमीन को दरका जाता है और शब्दों का गर्म लावा फूटकर एकाएक सफेद पन्नों पर फैल जाता है। मैं मानती हूँ कि अचानक आई यह स्थिति पूर्व नियोजित नहीं होती है, तो भी पहले का बहुत कुछ जमा जो अंदर घुमड़ रहा होता है, उसे निकलने का एक बहाना मिल जाता है। इस तरह एक रचना का जन्म होता है। इस रचना प्रक्रिया से निकली मेरी कहानियाँ, सरहद के इस पार, असली बात, दूसरी हुकूमत, काला सूरज, इमाम साहब, विरासत, गूंगा आसमान, इनसानी नस्ल, एक न समाप्त होनेवाली प्रेम-कथा, पाँचवा बेटा, इत्यादि हैं जो पहले ही झटके में अपना आकार ग्रहण कर बैठें। इन कहानियों को लिखते समय महसूस हुआ था कि मैं एक अंधी सुरंग से दौड़ती हुई गुजर रही हूँ और अंत तक पहुँचकर जब मैं सूरज की तेज रोशनी से आँख मिलाती हूँ तो खुद से पूछती हूँ कि मैं इतनी देर यहाँ कहाँ ? यह किरदार कहाँ से आया और अपनी कहानी लिखवाकर कहाँ चला गया ? सृजन की इस मासूम मगर भरपूर अभिव्यक्ति का अपना सुख है और इस सुख का अंदाजा तब होता है जब किसी कारणवश मुझे इन कहानियों को दोबारा पढ़ने का मौका मिलता है।

रचना की यह प्रक्रिया मेरी हर कहानी का वृत्तांत नहीं है। जिस तरह मेरी कहानियाँ एक दूसरे से जुदागाना होती हैं, ठीक उसी तरह उनकी पैदाइश की पृथ्वी भी



नासिरा शर्मा

‘लंबे दबाव के बाद बिल्कुल नयी-सी इबारत कागज पर उभरती है जैसे कोई आसमानी किताब नाजिल हो रही हो। मेरी सारी इच्छियाँ एकजुट होकर कमल-से अक्षरों की उगलवाती हैं जिसको बाद में पढ़कर मैं आश्चर्य में डूब जाती हूँ कि आखिर यह ‘पाठ’ मेरे अंदर कहां छुपा था ? यह परिवेश, यह किरदार यह बयान तो.....? बहुत सोचने पर याद आता है कि हां ऐसा कुछ मैंने देखा था। दिमागी कैमरे की यह रीलें अपना काम कर कब से ‘डार्करोल’ में पड़ी थीं और और अब जो धुलकर ‘पाजेटिव’ बनी है तो मुझे ही आश्चर्य में डाल रही हैं....’

बलग होती है। मिसाल के तौर पर ‘संगसार’ है। उसका जन्म ‘मित्रोमरजानी’ को पढ़ कर उस प्रश्न से हुआ था कि यदि मित्रो विलमन उठाकर अंदर चली जाती तो क्या होता ? तब कौन-सी कहानी बनती ? उस कहानी का अंत क्या होता ? वरसों यह प्रश्न मुझे परेशान करता रहा क्योंकि हिंदी साहित्य की यह बेजोड़ कहानियों में से एक थी मगर उसका अंत सुंदर होने के बावजूद मुझे तर्कसंगत नहीं लगता था। समय के साथ जिदगी भी आगे बढ़ जाती है और उसका ठहरा बज्रू घूमते समय के पहिये के साथ हरकत में आ जाता है और यही हरकत जो जीवन को निरंतरता में पेबस्त होती है, उसने ‘संगसार’ को पैदा किया। इसमें कोई शक नहीं कि कृष्णा सोबती की ‘मित्रोमरजानी’ एक जिंदा किरदार है मगर मेरी ‘आसिया’ भी प्रश्नों से भरा समय का सबसे बड़ा सच है जिसने पाठकों के मन मस्तिष्क में छुपी इच्छाओं, कामनाओं को अपनी बाणी दी। उसकी रचना के समय मैं तनाव में थी। मेरी इच्छा थी कि मूल प्रश्न से जूझती यह कहानी फूल की तरह नाजुक अहसास के साथ खिले और अपनी खुशबू बिखेरे। अपनी इस स्वाहिश के चलते मैंने इसके तीन ड्राफ्ट बनाए और शब्दों के चयन पर बहुत समय लगाया। जैसे कहानी के शुरू में.....आसिया जब लस्त-पस्त-सी बिस्तर से.....मैंने लिखा था। बाद में लगा कि यहां एक ऐसा शब्द आना चाहिए जो अपने अर्थ में उस समर्पण का बयान लगे जिसमें औरत का सारा बज्रू सरशार हो उठता है। उसमें अनिच्छा का दखल नहीं होना चाहिए बल्कि ऐसी ध्वनि निकलनी चाहिए जिसमें गरिमा भी हो और सुख की चरमसीमा भी।

बहुन सोचने पर शब्द 'अलपस्त' दिनाग में आया और मैंने उसको 'लस्त-पस्त' को जगह रखा. कहानी जब मेरी खून पसीनें की मेहनत के बाद एक फलदार वृक्ष की तरह अपनी संपूर्णता में पहुंची तो मेरे मन में भी एक शांति, एक संतोष का अहसास जागा जो इस बात की सनद थी कि हां अब सृजन अपने अंतिम मरहले से गुजर

विशिष्ट स्तंभ—

● मेरी रचना-प्रक्रिया

लेखन क्यों, कैसे, कहां, किन हालातों में—एक फोटोग्राफिक डार्क-रूम और फोटो-निर्माण की सारी अवस्थाओं—जैसी प्रक्रिया के तहत उनका अपना सारा परिवेश, अपने अहसास, तथ्यों का आत्मविश्लेषण, उनकी सूझ और पकड़ और उनका योग, जिंदगी से कितना निकट, कितना दूर, तथ्य की वास्तविकता और काल्पनिकता का जोड़-घटाव, रचना का बनना और उस बनने की प्रक्रिया से संबंधित तमाम हालात और बातों की आत्मस्वीकृतियां लगभग पांच-सात पृष्ठों में हिंदी के विशिष्ट लेखकों द्वारा इस स्तंभ के अंतर्गत प्रकाशित की जा रही हैं

इस स्तंभ के अंतर्गत अब तक राजेंद्र यादव (पूर्णांक ६८-६९), नरेंद्र कोहली (७०), चंद्रकांत वक्षी (७१), शशिप्रभा शास्त्री (७२-७३), मेहरबानिसा परवेज (७४, ७६) आदिब सुरती (७७), शिवानी (७८-७९), आशीष सिन्हा (८३-८४), गिरिराज किशोर (८५), सूर्यबाला (८६), विष्णु प्रभाकर (८७-८८), अब्दुल विस्मिल्लाह (८९) शंकर दयाल सिंह (९०), मनु शर्मा (९१), रात्रिन शा 'पुष्प' (९२), प्रतिमा वर्मा (९३), अमृत राय (९४), बलराम (९५), राजी सेठ (९६, ९८), ठाकुर प्रसाद सिंह (९९), रमेश उपाध्याय (१०१), मणिका मोहिनी (१०२-१०३), संजीव (१०४), राम दरश मिश्र (१०५-१०६), चंद्रकांता (१०७), शिव प्रसाद सिंह (१०८), चित्रा मुद्गल (१०९-११०), मंजुल भगत (१११), रवींद्रनाथ त्यागी (११३), यशपाल वैद (११४), चंद्रमोहन प्रवान (११५-११६), नमिता सिंह (११७), मिथिलेश्वर (११८-११९), हिमांशु जोशी (१२०), रमेश वक्षी (१२१), विवेकी राय (१२३), जवाहर सिंह (१२४-१२५), शेखर जोशी (१२६), शिवमूर्ति (१२७-१२८), लतीफ घोषी (१२९) मैत्रेयी पुष्पा (१३१), ध्रुव जायसवाल (१३२-१३३), स्नेह मोहनीश (१३४-१३५) गुरुबचन सिंह (१३६-१३७) (१३८-१३९) कमल कुमार की रचना-प्रक्रिया आप पढ़ चुके हैं—सं०

गया है. उसने पीड़ा से मुझे मुक्त किया.

इस तरह के पीड़ादायक अनुभव से गुजारनेवाली मेरी अन्य रचनाएं हैं जिनमें सियासी भंडार में फंसा आज का इन्सान है जैसे इन्नेमरियम, पुल-ए-सरात, उड़ान की शर्त, मोमजामा, यहूदी सरगर्दान, आबे-तोबा, सबीना के चालीस चोर, जैतून के साथे,



बौरह जिन्होंने राजनीति एवं सामाजिक प्रश्नों की आंच में सृजन के स्तर पर मुझे बुरी तरह तपाया है। जो सच मैं खुली आंखों से देख रही थी, उस पर उबलना जरूरी था मगर सिर्फ ज्वालामुखी बनने से साहित्यिक रचना का ताना-बाना मैं नहीं बुन सकती थी। इसलिए अपने अंदर की आग को कुंठा एवं आक्रोश से भड़काने की जगह मैंने उसको इनसानो कसीटी पर कसा। विशेषकर ऐसे समय में जब एक राष्ट्र नहीं बल्कि समस्त विश्व अमानवीय दौर से गुजर रहा हो। उन हिंसक घटनाओं के बीच से मुझे घायल इनसानो चेहरा, जो समय का असली मुखौटा था, उसको ढूँढ़कर कागज के कैनवास पर ज्यू-का-त्यू पेंट करना था। मेरी ये कहानियाँ एक तरफ समय की छाती पर घंसा शिलालेख बन जाती हैं तो दूसरी तरफ राजनीति की भंवर में फंसी मानवीय संवेदनाओं से जूझती सनदें हैं। इन दो पाटों के बीच पिसता मेरा वजूद वैचारिक घरातल पर अपने तई जितना ईमानदार रहना चाहता है, उसनी ही ईमानदारी से वह पैतोरमा की तरह हर पक्ष को किसी-न-किसी रूप से सामने रखना चाहता था ताकि पाठक तर्क के साथ उस किरदार की भावना के साथ जुड़ सके। मेरी ऐसी कहानियाँ केवल संवेदना की लिजलिजी कमान नहीं हैं क्योंकि मैंने इन कहानियों के लिए एक नये मुहावरे की खोज में ढेरों पुस्तकें पढ़ीं और अपने अंदर की कला को, जो कहानी के रूप में बाहर निकलना चाहती थी, उसको किसी लोहार के हथौड़े की तरह खूब पीटा है। इस जानलेवा प्रक्रिया में तनाव के अनेक स्तरों से गुजरी हूँ। इस आग की तपिश ने मुझे कुंदन की तरह निखरने का अवसर ही नहीं दिया बल्कि कहानी के समाप्त होने पर आनंद के असीम सागर में डुबोया भी है।

अक्सर यह बात कही जाती है कि परेशानी के दिनों में सृजन का स्रोत सूख जाता है। मगर मेरे साथ ऐसा नहीं होता है। जब परेशानी पंख फैलाकर बैठ जाती है, कठिनाइयाँ मेरे धैर्य को आजमाने पर उतर आती हैं, उस समय मेरा लेखक कलम उठाकर मेज पर बैठा होता है और पत्थर गली ताबूत, गूंगी गवाही, गिरती दीवारें, अचराधी, तीसरा मोर्चा जैसी कहानियों का सृजन करता है जिसमें मेरी बीजूदा परेशानों की कोई छाया नजर नहीं आती है। ऐसा भी होता है कि मैं एकाएक उदास हो गहरी सोच में डूब जाती हूँ। मुझे किसी से बोलना, किसी से मिलना अच्छा नहीं लगता है। किसी की मामूली-सी बात पर चुनक जाती हूँ, पूरे दिन परेशान-सी घर में घूमती हूँ या फिर घर के किसी एक कोने में बैठ मैं बेमकसद किताब या पत्रिका के पन्ने पलटती हूँ। दिल व दिमाग त्रिलकुल खाली रहते हैं। यह स्थिति कई दिनों तक मेरा पीछा करती है फिर लंबे दबाव के बाद त्रिलकुल नयो-सी इज्जत कागज

पर उमरती है जैसे कोई आसमानी किताब नाजिल हो रही हो। मेरी सारी इन्द्रियाँ एकजुट होकर कमल-से अक्षरों की उगलवाती हैं जिसको बाद में पढ़कर मैं आश्चर्य में डूब जाती हूँ कि आखिर यह 'पाठ' मेरे अंदर कहां छुपा था ? यह परिवेश यह किरदार, यह बयान तो.....? बहुत सोचने पर याद आता है कि हाँ, ऐसा कुछ मैंने देखा था। दिमागी कैमरे की यह रोलें अपना काम कर कब से 'डार्करूम' में पड़ी थीं और अब जो घुलकर 'पॉजिटिव' बनी हैं तो मुझे ही आश्चर्य में डाल रही हैं। ऐसी मनःस्थिति से निकलनेवाली मेरी कहानियाँ 'गुं चादहन', 'तीसरा पहर, दीमक, अजनबी शहर, किताब-ए-दिल, जुलजुता, ततैया, कातिब, वगैरह हैं।

मेरे साथ ऐसा भी होता है कि मैं उस कहानी को जो मेरे अंदर से निकलना चाहती है, उसको बेरोक-टोक कागज पर उतार लेती हूँ। वह जबान, वह अंदाज मेरा होता है मगर जब मैं उसके किरदार और परिवेश की बखिया उधेड़ने लगती हूँ तो मुझे कोई कमी खटकने-सी लगती है। तब मैं बिना देर किए उस पात्र की अपनी बोली और परिवेश को बेहतर जानकारी के लिए उस माहौल में पहुँच जाती हूँ जहाँ वह रहता है। 'चांद तारे की सतरंज' कहानी के लिए पुरानी दिल्ली, जयपुर, बरेली, इलाहाबाद के दुकानदारों, पतंग और मंशा बनानेवालों से लंबी बातचीत और उनके काम करने के अंदाज से जो अहसास मेरे अंदर गहराया वही मेरी कहानी का मर्म बना। बचपन से खामोश रहना और आस-पास की मुर्दा और जानदार चीजों को देखना मेरा शौक रहा है। इलाहाबाद के गंदे इलाकों की नालियाँ मेरे लिए ज़िबगी के कोलाहल से कम नहीं थीं। वह ध्वनि मुझे पहाड़ से गिरते जलप्रपातों में कभी नहीं सुनाई पड़ी। वहाँ खामोशी को तोड़ती तनहा गर्जन का स्वर मुझे एकांत का गहरा अहसास दे उदास बनाती है। इसलिए मेरी कहानियों में मामूली से मामूली वस्तु, जगह, घटना का बहुत वारोक चित्रण होता है क्योंकि मैं उसको सुनकर नहीं बल्कि मन-मस्तिष्क की आँखों से समझती और देखती हूँ यात्रा में गुजरते पेड़, नदियाँ, पोखर, पुल, शहर, गाँव, खेत, जानवर, किभिन्न लोग मेरे अंदर नये-नये विष की रचना करते जाते हैं। इसमें कोई शक नहीं है कि यात्रा करना मुझे बहुत भाता है। कार, ट्रेन, हवाई जहाज, स्कूटर, रिक्शा जो भी यातायात के साधन हैं सब पर बैठना मुझे पसंद है मगर सबसे अधिक मुझे भाता है सेकंड क्लास ट्रेन का डिब्बा ज़िम में आम इन्सान का चेहरा बिना लाग-लपेट के मुझे देखने को मिलता है। उनकी भावभंगिमा, उनकी बातचीत का तरीका, उनका सामान, उनका पहनावा यह सब मेरी दिलचस्पी और जिज्ञासा का केंद्र है।

जो चीज मुझे सबसे ज्यादा भाती है वह है, तनहाई—खासकर तब जब मैं घर में



अकेली हूँ और घर की हर चीज एक अलग कोण से मुझे नजर आए. केवल दिखे ही नहीं बल्कि वह बात करना शुरू कर दे. यह संवाद भी कुछ यूँ बनता है कि उसका पूरा व्यक्तित्व मुझे घड़कता हुआ अपने बारे में जानकारी देता लगता है. सबसे ज्यादा मजा तो तब आता है जब मुझे घर के कुछ भेद हाथ लग जाते हैं. किस कोण से बैठने से दूसरे कमरे की कीन-सी चीज और कीन-सा एंगिल नजर आता है. दरवाजे की छाया किस शीशे पर पड़कर आईना बन रही है. खिड़की से छनती धूप पर आकाश में उड़ती चिड़ियों की छाया कैसे बिस्तर से लगातार गुजर रही है. यह सब कुछ वास्तव में रचना प्रक्रिया का ही हिस्सा है जो एक बड़े खुले कैनवास पर जमा होता रहता है और वह स्थान किसी रील की तरह तब खुलता है जब आपको उसकी जरूरत होती है. अक्सर मेरे साथ ऐसा होता है कि कहीं का भी कोई दृश्य दिमाग के पर्दे से गुजरता रहता है; किसी की कहीं बात से कोई और बात याद आ जाती है और दिमाग दूसरे शहर, दूसरे मुल्क पहुँच जाता है और तुलना के साथ विवेचना करने लगता है. मुझे अपने दिमाग की यह हाजिर उपस्थिति बहुत भाती है कि मैं अकेली रहने के बावजूद हमेशा अपनों से घिरी रहती हूँ. दिमाग मुझे सदा परिचित चेहरों से मुलाकात कराता संवाद का सिलसिला जोड़े रखता है जो मेरी सोच में हमेशा कुछ नया जोड़ता रहता है. (शेष अगले अंक में)

परिहास

एक बार एक मुकदमे में दो वकील जिरह कर रहे थे. एक वकील ने अभियुक्त से पूछा, "जब आप श्रीमती दास को उसके घर बुलाने गए तो उसने आपसे क्या कहा था?"

इस पर दूसरे वकील ने अदालत से कहा, "हज़ूर, इस प्रश्न का मुकदमे के साथ कोई संबंध नहीं. मैं प्रार्थना करता हूँ कि यह प्रश्न न पूछा जाये."

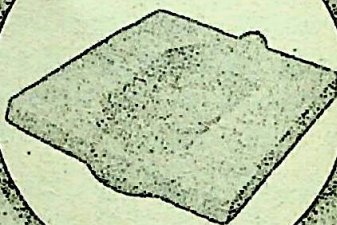
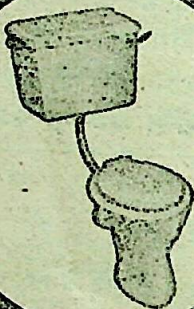
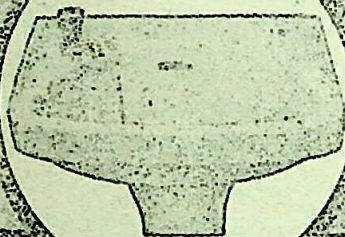
पहले वकील ने कहा, "श्री दास की पत्नी का इससे गहरा संबंध है. जब तक इस बात का उत्तर न दिया जाएगा बहुत सा मामला अंधेरे में रहेगा."

पूरा एक घंटा बहस होती रही और अंत में मजिस्ट्रेट ने प्रश्न पूछने की आज्ञा दे दी.

पहले वकील ने बड़े रोव से पूछा, "क्यों साहब, जब आप श्रीमती दास को उसके घर से बुलाने गए तो उसने आपसे क्या कहा था?"

गवाह ने उत्तर दिया, "कुछ नहीं हज़ूर, वह तो उस समय घर पर ही न थी."

बाथरूम फिटिंग्स



पैरी सैनिटरीवेयन, क्लासिका सैनिटरीवेयन,
आर्क सी. पी. बाथरूम फिटिंग्स, सी. आइ.
पाइप, सन. डब्लू. पाइप, लस्टन ग्लेज़्ड,
स्पानटेक एवं काजिनिया टाइल्स

जगज्ज बक्स

महाराष्ट्र बायथाजी

मिनिमम ३६०००६ मिनिमम ३६०००७

प्रगतिशील आलोचना का पुनर्मूल्यांकन

ऐतिहासिक परिदृष्टि हेतु एक धारावाहिक संवाद



हिंदी में प्रगतिशील आलोचना के संस्थापक मूर्धन्य समीक्षक डा० शिवदान सिंह चौहान और उनके बाद की पीढ़ी के तेजस्वी रचनाकार और प्रगतिशील चिंतक डा० विश्वंभरनाथ उपाध्याय ने डा० शुक्देव सिंह को पत्र लिखे, अपनी रचनाएं भेजने का वादा किया। इन पत्रों से स्पष्ट है कि हिंदी आलोचना पर नये सिरे से संवाद और परीक्षा का समय आया है। ऐसे संवादों से साहित्यिक मूल्यांकन के नये द्वार खुलते हैं, घातें सामने आती हैं; प्रचार के राजनीतिक दांव-पेच, स्पुडो सान्यवादी चरित्र, लेखकीय दलबंदी, सत्ता के उपयोग की वंचना आदि तमाम तरह की घातें सामने आती हैं। अंततः पाठक, विचारक और साहित्यकार के लिए सच और झूठ को जानने और पहचानने का मौका मिलता है। इसलिए जरूरी है कि बीसवीं शती के अंत में हिंदी की प्रगतिशील आलोचना और चिंतन की उपलब्धियों, खामियों और खामखालियों का सिंहावलोकन और आकलन किया जाए ताकि इतिहास को सही कोण से देखने का मौका मिले।

हमने संवाद के आरंभ के लिए पहले दोनों आलोचकों के पत्रांश छापे और डा० विश्वंभरनाथ उपाध्याय जैसे मनीषी, कानपुर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति तथा प्रगतिशील आंदोलन की अग्रिम व्यक्ति के विचारक का एक साक्षात्कार भी (पूर्णांक १२७ में) तथा डा० शिवदान सिंह चौहान का आत्मकथ्य (पूर्णांक १२८, १२९, १३१, १३४, १३५, १३६, १३७ में) छापे। योजना में सर्वश्री राम विलास शर्मा, चंद्रबली सिंह, नामवर सिंह, ओम प्रकाश ग्रोवाल, लक्ष्मीकांत वर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, हृदिकेश, रमेश कुंतल मेघ, शिवकुमार मिश्र, विश्वनाथ त्रिपाठी, सुरेंद्र चौधरी, नवकिशोर नवल, कुंवरपाल सिंह, मृदुला गर्ग, विजयमोहन सिंह, विष्णु खरे, सुधीश पटवारी, पुत्रवोत्तम अप्रवाल, निर्मला गर्ग, राकेश कुमार, मूलचंद गौतम जैसे तमाम लोगों को शामिल करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस दिशा में स्वस्थ भाव से अच्छी भाषा में लिखे पत्र-लेखों, प्रतिक्रियाओं का भी स्वागत है।

सहयोग की अपेक्षा के साथ, सानुरोध—संपादक

प्रकाशचंद्र गुप्त और मार्क्सवादी आलोचना

—प्रदीप सक्सेना



(प्रगतिशील आंदोलन को गति देने में उसकी अग्रिम पंक्ति के शीर्षस्थ द्विचारक लेखक और संगठनकर्ता के रूप में डा० शिवदान सिंह चौहान और डा० प्रकाशचंद्र गुप्त का योगदान अप्रतिम है. डा० गुप्त प्रयाग विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग में प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष थे. आपने अपने अनेक आलोचनात्मक ग्रंथों—‘नया हिंदी साहित्य’ (१९३९) ‘आधुनिक हिंदी साहित्य—एकदृष्टि’ (१९५२), ‘हिंदी साहित्य की जनवादी परंपरा’ (१९५३), ‘साहित्य धारा’ (१९५६) के द्वारा हिंदी जगत् और प्रगतिशील आंदोलन में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया था. आंदोलन में आगे चलकर मुत्तक राज आनंद, सज्जाद जहीर, राजेंद्र सिंह बेदी, किशन चंदर, सआदत हसन मंटो, उपेंद्रनाथ अशक, अमृत राय, इस्मत चुगताई, रामविलास शर्मा, विश्वंभरनाथ उपाध्याय, कैफ़ी आजामी जैसे लेखक शामिल हुए थे. सबने मिलकर प्रगतिशील विचारधारा को हिंदी और उर्दू में आगे बढ़ाया था किंतु इस आंदोलन के बीच फुफकारते संकीर्णतावाद, फट्टरवाद और लेखकों के आपसी ‘उठा-पटक-वाद’ से डा० चौहान और डा० गुप्त का धीरे-धीरे मोहभंग होने लगा. प्रगतिशील आंदोलन के पुनर्मूल्यांकन के दौर में अब प्रस्तुत है डा० प्रकाशचंद्र गुप्त की समीक्षा दृष्टि पर यह लेख.—सं०)

मार्क्सवाद को यह कितनी क्रांतिकारी मान्यता थी कि चीजों को उनके ऐतिहासिक विकास क्रम में देखने पर ही सच्चाई का पता लगाया जा सकता है. यानी कोई भी निष्कर्ष अगर वैज्ञानिक होगा तो ऐतिहासिक विकास क्रम से गुजरकर ही. लेकिन हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना की क्रांतिकारी मान्यता यह है कि ऐतिहासिक विकास क्रम का अर्थ है व्यक्ति से आरंभ और व्यक्ति पर ही अंत. लिहाजा जब तक वह व्यक्ति केंद्र में रहेगा, किसी अन्य व्यक्ति या प्रवृत्ति पर बात नहीं की जा सकती या फिर उसी टक्कर का व्यक्ति लाया जाए या सिद्ध किया जाए. जाहिर है कि ऐतिहासिक विकास क्रम फिर व्यक्ति ही बन जाना है. युग, परिस्थितियाँ, आंदोलन संघर्ष सब बेकार हो जाते हैं. अंतर्विरोध मिट जाते हैं. साधारण या विनम्र व्यक्तियों को गिरा दिया जाता है और फिर डांबिन की मान्यता का भाव्य होता है—‘शक्तिशाली ही जी सकेगा.’

इस प्रक्रिया से जो सिद्धांत जन्म लेता है, वह पुराना ही है—प्रतिभाएं ही सब



कुछ है।' सच है, फिर जिन लोगों का व्यक्तित्व इतना प्रचंड न हो कि मार्क्स भी उनसे कुछ सीखें, उन्हें कौन पूछे ? ऊपर से कोढ़ में खाज यह बार हो कि न तो उन्होंने अपना कोई 'प्रेसर ग्रुप' बनाया हो और न ही स्वयं किसी ऐसे ग्रुप में हों, फिर कैसे कोई याद करे लेकिन इतिहास की गति व्यक्ति की इच्छाओं से स्वतंत्र होती है। जिन्हें तेल दिया जाता है, वे उभर आते हैं। जो जबरदस्ती लोगों के सिरों और कंधों पर चढ़ गए थे, वे गिर जाते हैं। दर्शन में यह 'आकस्मिकता' महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और भौतिकवादी द्वंद्ववाद की रीढ़ बन जाती है। इससे यहां क्या निष्कर्ष निकाला जा रहा है ? वह यह कि, हिंदी के परिदृश्य को देखकर ऐसा लगता है कि मुद्दे महत्वपूर्ण नहीं हैं—व्यक्ति महत्वपूर्ण है, या वही मुद्दा महत्वपूर्ण है, जिसे व्यक्ति उठा रहा है। शायद इसीलिए न किसी को परंपरा की जरूरत है, न इतिहास की। जबकि दूसरी ओर वास्तविक जीवन में व्यापक सामाजिक—आर्थिक संकट जितना गहरा होता जाता है, उतनी ही बुद्धजीवी वर्ग की क्रांतिकारी भूमिका की जरूरत बढ़ रही है। लेकिन वह उतनी ही तेजी से मूल वर्गों और उनके दृष्टिकोण से कटता जा रहा है। इस दुर्भाग्यपूर्ण अलगाव का परिणाम यह हो रहा है कि या तो छूँछा और सारहीन मार्क्सवाद पनप रहा है, जिससे व्यवस्था और प्रशासन को कोई खतरा नहीं है, या उसका बाजार बन रहा है, जहां वह यश और अर्थ दोनों प्राप्त कर रहा है और अंततः लाखों के पुरस्कार भी। हर चीज यानी प्रत्येक पतन के लिए उसके पास तर्क है। तत्काल घृणित और जनविरोधी कार्रवाइयों और स्थापनाओं पर पूरी देशर्मी से इन तर्कों को तह जमा दी जाती है। क्या इन्हीं साहित्यकारों के हाथ में प्रेमचंद ने मशाल देखी थी ?

लेकिन साहित्य से भी बुरा आचरण राजनीति कर रही है। जी हां वाम राजनीति ने भी लेखक को उसकी गरिमा प्रदान करने की जगह उसे घटिया, चालू मध्यवर्गीय कुत्ता वर्गैरह में अवमूल्यित कर दिया है उसके काम का सही बोध नहीं है क्योंकि साहित्य से सीधे वोट नहीं डलवाए जा सकते लिहाजा यह काम घटिया हुआ। निवेदन यह है कि यह राजनीति में स्वयं क्रांतिकारी नहीं है क्योंकि इसकी जड़ पालियामानी पद्धति को 'लक्ष्य' मान लेने में है और इसकी विवशता यह है कि इसे उसी व्यवस्था के तहत क्रांतिकारी आचरण करना है जिसे यह उलटना चाहती है, और यह भी वर्गीय, तीव्र और जुझारू आंदोलनों के बिना ही। कहना न होगा कि यह राजनीति अस्थिरता के विभिन्न घटकों की आधार से दूरी और संबंधों को न ही पहचानती है और न ही ठीक-ठीक उन्हें अभिव्यक्त करती है। इसकी पराकाष्ठा यह है कि स्वयं मार्क्सवादी आलोचक ही मार्क्सवादी आलोचकों की दुर्गति के लिए जिम्मेदार हैं। वस्तुनिष्ठता

की जगह बेरहमी ने ले ली और बेरहमी में वास्तव में उनका सानी नहीं था क्योंकि मार्क्सवादो होने के बाद उन्हें कुछ सीखना शेष नहीं रह गया था। वे यह तक परखने, देखने के लिए तैयार नहीं थे कि वे मार्क्सवाद की सेवा कर रहे हैं वा प्रतिक्रियावाद की ? इस एकमात्र सही मार्क्सवाद में जो चीज सबसे अधिक साफ थी वह था— व्यक्तिगत राग-द्वेष। इसे ही बाद में भारत की विशेष परिस्थितियों में मार्क्सवाद का छात्र करना कहा गया।

इस मार्क्सवाद का परिणाम यह हुआ कि प्रकाशचंद्र गुप्त, शिवदान सिंह चौहान, राहुल, यशपाल, रांगेय राघव और मुक्तिबोध जैसे प्रतिभाएं हाशिए पर डाल दी गईं। इनमें सर्वाधिक निरीह स्थिति रही प्रकाशचंद्र गुप्त की; किसी के लिए वे सिर्फ अच्छे 'अध्यापक' रहे तो किसी के लिए महज 'समोक्षक'। किसी ने कहा कि वे 'अंग्रेजी में थे, इसलिए चल गए' तो किसी के लिए उनमें 'मार्क्सवाद का टच' भी था। या उनमें 'वो बात नहीं थी।' इन सभी मतों का यह स्वाभाविक परिणाम होता ही था कि मार्क्सवादी आलोचना के प्रस्थान बिंदु पर कोई बात न की जाए। जबकि, इतिहास का नियम यह है कि प्रस्थान कितना भी कमजोर हो उसकी एक ऐतिहासिक भूमिका होती ही है। अब देखना यह है कि वास्तव में यह प्रस्थान क्या इतना कमजोर था कि इस पर कोई बात नहीं की जानी चाहिए थी ? क्या मार्क्सवादी आलोचना के उस पहले पन्ने पर कुछ भी ऐसा नहीं लिखा है जिसे याद रखा जा सकता था ?

१९७० में डा. विश्वनाथ त्रिपाठी की पुस्तक प्रकाशित हुई 'हिंदी आलोचना'। इस पुस्तक में एक अध्याय स्वतंत्र रूप से लिखा गया था— 'मार्क्सवादी आलोचना का उदय।' इससे पहले भी प्रकाशचंद्र गुप्त की सीमाओं पर 'प्रकाश' डाला गया था लेकिन वह प्रकाश कुछ ऐसा तीव्र नहीं था। कहा जा सकता है कि उसके संदर्भ काफी हद तक अपेक्षाओं की प्रतिक्रिया से निमित्त थे। यद्यपि यह कमजोरी उन संदर्भों में भी थी कि युग की सीमाओं और अंतर्विरोधों के बीच प्रकाशचंद्र गुप्त पर बात नहीं की गई थी लेकिन सोचा प्रतिवाद या प्रहार भी नहीं किया गया था। डा. त्रिपाठी ने दो ठूक शब्दों में यह माना कि 'प्रारंभिक प्रगतिशील आलोचक अपने साहित्य की परंपरा का मूल्यांकन करते समय अति सरलीकरण करते थे' कि 'वे समय की आवश्यकता समझते थे किंतु प्राचीन एवं समसामयिक साहित्य के अंतर्विरोधों को देखने में चूक जाते थे,' फिर कहा कि उन्होंने 'प्राचीन साहित्य कौन कहे समसामयिक साहित्य को भी परखने में विवेक से काम नहीं लिया....इन विवेकहीन आलोचकों में नंबर एक थे श्री शिवदान सिंह चौहान और दो पर थे श्री प्रकाशचंद्र गुप्त। इन दोनों ने ही हिंदी में प्रगतिशील आलोचना के पहले पृष्ठ रचे थे।' इन पृष्ठों पर डॉ० त्रिपाठी



की राय कुल मिलाकर यह बनी कि 'हिंदी की प्रगतिशील आलोचना अपने साहित्य की प्रगतिशील परंपरा का परिचय स्वीकार करके आगे बढ़ने की जगह एक तरह से सर्वनिषेधात्मक और उपदेशात्मक मुद्रा के साथ चली।'

श्री चौहान और गुप्तजी दोनों को उन्होंने ऐसा पाया कि इन दोनों में ही इस बात का 'प्रमाण नहीं मिलता कि आलोचक रचनाओं से प्रभावित हो रहे हैं।' इन दोनों में 'श्री शिवदान सिंह चौहान तो पंक्तियों कम-से-कम उद्धृत करते हैं। वे केवल सिद्धांत बखानते हैं और कवियों पर निर्णय देते हैं।' जबकि श्री प्रकाशचंद्र गुप्त 'अंग्रेजी साहित्य के मर्मज्ञ' हिंदी लेखक हैं किंतु 'उनकी आलोचना इतनी विवरणात्मक होती है कि समतल और सपाट बनकर रह जाती है।'

प्राचीन साहित्य की समझ का न होना, समसामयिक साहित्य में विवेक का न रहना, उद्धरण और विवरणों से काम चलाना, अंग्रेजी में ममज्ञ लेकिन हिंदी में अज्ञ होना, उपदेशात्मकता और सर्वनिषेधवाद इन गुणों के जान लेने के बाद कौन पढ़ना चाहेगा प्रकाशचंद्र गुप्त को. एक मार्क्सवादी व्यक्ति या आलोचक को यदि यह कहा जाए कि उन्होंने 'प्राचीन और नवीन परंपरा का अध्ययन द्वंद्वात्मक पद्धति पर नहीं किया. मागला इतने पर ही नहीं सकता. डा. त्रिपाठी मार्क्सवादी आलोचना के उदय पर यह घोषणा भी करते हैं—'स्पष्ट ही है कि हिंदी के उक्त प्रगतिवादी आलोचक (चौहान एवं गुप्त) अपने साहित्य का मूल्यांकन करते समय लेनिन के रास्ते पर नहीं चल रहे थे।' और क्या चाहिए गैर मार्क्सवादी सिद्ध करने के लिए! इस घोषणा में यह गुंज छिपी हुई थी जो अगले पृष्ठों में मुखर हुई कि इस रास्ते पर चलनेवाले एक ही आलोचक है—डा रामबिलास शर्मा और उन्हीं से मार्क्सवादी आलोचना का उदय होता है.

हमका यह मतलब हर्गिज नहीं है और न होना चाहिए कि हमें डा शर्मा की जगह इन दोनों को स्थापित करना है. ऐसा बहुत विद्वान करके देख चुके हैं. साहित्य में इस तरह न किसी की स्थापना हुई है, न किसी का उच्छेदन हुआ है. साहित्य की अपनी ऊर्जा का होना या न होना ही उसे ले डूबा है. इसके विपरीत हम यह मानते हैं कि अपने प्रस्थान का पुनर्मूल्यांकन करके वर्तमान मार्क्सवादी आलोचना समृद्ध हो होगी और अपने अंग्रेजों की ऐतिहासिक विकास क्रम में रख और परखकर वह बड़ी उपलब्धियां हासिल कर सकेगी तथा प्रकारांतर से हम यह भी मानते हैं कि स्थापना और उच्छेदन के घटिया उद्देश्यों के विपरीत संघर्ष में इन पुनर्मूल्यांकनों से सहायता ही प्राप्त होगी.

किसी भी व्यक्ति में विकास को देखने या न देखने के लिए भी उसकी आरंभिक

रचनाओं को देखा जाना चाहिए, हम पाते हैं कि प्रकाश चंद्र गुप्त के आरंभिक लेखन को गंभीरता से नहीं लिया गया। 'हिंदी साहित्य की जनवादी परंपरा' ही उनकी यथा संभव चर्चित कृति रही है। अतः इस लेख का एक सीमित-सा उद्देश्य यह भी है कि गुप्त जी के विचारों को अधिकतम और विकास क्रम में रखकर देखा जाए ताकि पाठक भी यह देख सकें कि क्या हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना के पहले पृष्ठ पर सब कुछ भुला देने योग्य ही था ? या वह बावजूद अपनी सीमाओं के हमारी विरासत का एक उज्ज्वल पक्ष है ? क्या उस पर शमिदा होने की वजह से वेवुनियाद नहीं है ? उनके योगदान पर दृष्टि डालकर यह फैसला करना उचित होगा कि आज की मार्क्सवादी आलोचना का अतीत से भी कोई संबंध हो सकता है या नहीं ? 'सुधी' पाठकों पर सिद्धांततः कितना भी भरोसा क्यों न किया जाए, व्यवहार में कुछ भरोसा स्वयं आलोचक पर भी करना चाहिए।

शुरुआत के लिए 'नया हिंदी साहित्य : एक भूमिका' पर एक नजर डालना बेहतर होगा। यही उनके लेखों का सबसे पहला संकलन होना चाहिए। इस संकलन का चतुर्थ संस्करण १९५३ में सरस्वती प्रेस बनारस से प्रकाशित हुआ था। इसकी संक्षिप्त-सी भूमिका में यह कहा गया है कि 'यह पुस्तक १९३६ के लगभग लिखे निबंधों का संग्रह है।' लेखक स्वयं सजग है और १९५३ तक आते-आते वह यह मानता है कि उसका 'प्रगतिवादी दृष्टिकोण विकसित हुआ है। और साहित्य की गति में भी अनेक परिवर्तन हुए हैं।' लेकिन हमारी दिलचस्पी यहां १९३६ में ही है। जबकि लेखक ने पहले-पहल अपने को अभिव्यक्त करने योग्य समझा था।

भूमिका यह भी स्पष्ट करती है कि पुस्तक में केवल 'साहित्यिक प्रवृत्तियों का ही दिग्दर्शन है।' अर्थात् राजनीतिक फिकरों, उद्धरणों और समीकरणों को पेश करके कमजोर साहित्यिक समझ और अक्षम सौंदर्यबोध के होते हुए भी जिस तरह महान बने रहने का उपक्रम आज दिखाई देता है, वैसा वहां नहीं है। वे कहते हैं—'संपूर्णता का दावा भी पुस्तक नहीं करती।' यानी एक आलोचक ने कृति की ओर विनम्र प्रस्थान करके क्या पाया तथा यह प्रस्थान किस स्तर का और किस भावना से किया गया था। यहां यह महत्वपूर्ण है, क्योंकि ये लेख 'चिंतन' नहीं हैं। समीक्षाएं हैं, इसलिए और भी महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि समीक्षा को आज भी अपनी सम्मानजनक जगह बनाने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है तो उस वक्त तो उसकी क्या हालत रही होगी। इसलिए इस संकलन में स्फुट विचारों और उनसे निमित्त कसौटियों की परख ज्यादा जरूरी लगती है। जहां तक दिशा का प्रश्न है उसे प्रेमचंद 'साहित्य का उद्देश्य' में बेहतर ढंग से व्यक्त कर ही चुके थे अब सवाल था कि महाजनों सभ्यता की पहचान



के उस दौर में साहित्य में कौन इस पहचान के जरिए आगे बढ़ता है और कैसे यह पहचान लागू करता है ? यह काम किया प्रकाशचंद्र गुप्त ने. गुप्त जी ने भारतेन्दु, प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा, प्रेमचंद, कौशिक, सुदर्शन, भगवतीचरण वर्मा, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, जैनेंद्र, बालकृष्ण शर्मा नवीन, वचन, नरेंद्र शर्मा, दिनकर, शांतिप्रिय द्विवेदी और अज्ञेय जैसे प्रमुख कृतिकारों पर और उनकी कृतियों पर विचार किया. अर्थात् उस समय के लिए प्राचीन और नवीन पीढ़ी के लेखकों पर विचार किया. अर्थात् उन्होंने ऐसा कोई मानक नहीं बनाया कि उस एक के न पहले लिखा गया न बाद में. वहां 'भूतो न भविष्यति' की शैली त्याज्य मानी गई. यह भी एक शार्टकट है मार्क्सवादी आलोचना में कि विरोधी को पढ़ने की इसलिए जरूरत नहीं कि वह तो प्रतिक्रियावादी है. अपनों को सीरियसली इसलिए नहीं लेना कि मालूम ही है, उसने क्या कहा होगा ? ऐसा लगता है, इस पद्धति में सिर्फ समाजवाद के 'पेटेंट किस्म' को समझने के बाद न सामंतवाद को समझने की जरूरत है. न पूंजीवाद को.

इसी से मिलती-जुलती एक और कमजोरी शुरू से ही मार्क्सवादी आलोचना में हावी है कि आलोचक यह भ्रम पालता और पैदा करता है कि उसकी वजह से ही तुलसी या कबीर, निराला या प्रेमचंद, यशपाल या मुक्तिबोध, राहुल या रांगेय राख बरकरार हैं या मिट गए हैं. वस्तुस्थिति यह है कि इन महान प्रतिभाओं पर लिखकर ही आलोचकों ने भारतीय जनगणों का सम्मान अर्जित किया है. प्रकाशचंद्र गुप्त ने ऐसा कोई भ्रम नहीं पाला. वे समसामयिक साहित्य से भागे नहीं, बल्कि आगे बढ़कर बिना किसी भेदभाव के, बिना किसी राग-द्वेष के उन्होंने वस्तुनिष्ठ टिप्पणियां कीं.

भारतेन्दु से लेकर अज्ञेय तक आधुनिक साहित्य की कोई महत्वपूर्ण प्रवृत्ति ऐसी नहीं है जिस पर उन्होंने अपना मत न दिया हो. उनकी टिप्पणियां तब कमजोर मानी जानी चाहिए जब वे बाद में सही साबित न हुई हों. हमारी समझ में समीक्षक अपनी दृष्टि का प्रमाण कृति के चयन के समय से ही देने लगता है. यह चयन क्योंकि विवेकरहित नहीं है इसलिए इसकी कला-समीक्षा के इतिहास में एक ऐतिहासिक भूमिका है. इस चयन में उन्होंने पहले से यह तय नहीं किया कि वचन, जैनेंद्र और अज्ञेय प्रतिक्रियावादी हैं और निराला, प्रेमचंद और कबीर प्रगतिवादी. इस वंटवारे की तरह हमेशा ही एक आलोचक को कथ्य और शिल्प के वंटवारे से भी दूर रहना चाहिए. उसे यह देखना चाहिए कि कृति अपेक्षित योग्य स्तर को दर्शाती है या नहीं. जिस तरह तमाम प्रतिक्रियावादी और रूपवादी-कलावादी पूरा जोर लगाकर भी प्रेमचंद, निराला या मुक्तिबोध का कुछ नहीं बिगाड़ सके, उसी तरह बावजूद अत्यंत हीन वस्तु के हमारी आलोचना भी कलात्मक उपलब्धियों को निरस्त न कर सकी. फलतः किसी भी तरफ के हों साहित्य का कुछ भी बना-बिगाड़ नहीं

सकते. जब तक कि स्वयं रचना में वे तत्त्व न हों. जाहिर है जो आलोचना वक्तव्यों, निर्णयों, फतवों की जगह कृति के प्रति न्याय पर टिकी थी, उसका मूल्य बराबर बढ़ा.

प्रकाशचंद्र गुप्त के यहां मार्क्सवादी आलोचना का यही अपेक्षित रूप मिलता है. दाखिल—खारिज, स्थापना—उच्छेदन का यहां अभाव है. यहां बात है अंतर्विरोधों की पहचान और परख की. यह एक गंभीर प्रस्थान था. जैसे अज्ञेय पर जब उन्होंने लिखा तो कोई भड़कीला वक्तव्य न देकर, कोई रिमार्क पास न करके अत्यंत संयत स्वर में कहा कि 'हिंदी—साहित्य में आज जो (१९४० में के अज्ञेय) व्यक्ति आकर्षित करते हैं, उनमें एक अज्ञेय भी है.' लेकिन उनका व्यक्तित्व है 'रहस्यपूर्ण' तथा ध्यान रहे कि उनके पीछे 'कई पीढ़ियों की कुलीन संस्कृति है' और इसी का 'सुवह्वा चमकता मुलुम्मा आपके व्यक्तित्व पर चढ़ा है.' किन्तु हम जानते हैं कि इस मिठास के पीछे एक उग्र, उद्धत उपेक्षा का भाव है. इसका प्रमाण 'आपका जीवन और रचनाएं हैं.' अज्ञेय की विचारधारा को तार-तार करते हुए उन्होंने अचूक ढंग से दिखाया कि अज्ञेय 'भारतीय चिंतनधारा को तजकर एक नवीन सांस्कृतिक प्रयोग की ओर बढ़े. आपने ट्राट्स्कीवाद और रायिज्म से नाता जोड़ा. आज अनेक आलोचक यह सब जानते हैं लेकिन देखना चाहिए ३८—४० के दौर में कितने लोगों ने अज्ञेय में प्रतिक्रिया के तत्व खोजे थे? 'त्रिशंकु' के प्रकाशन पर यह कहना कि 'यह व्यक्तित्व अपने में ही रमा, खुल नहीं पाता और कुंठित होकर रह जाता है' तथा यह निष्कर्ष देना कि यह व्यक्तित्व 'बुर्जुआ संस्कृति की पराकाष्ठा से घुटकर अन्तर्मुखी हो रहा है' एक सच्ची और पैनी मार्क्सवादी दृष्टि का प्रमाण नहीं तो क्या है? क्या इन निष्कर्षों तक कोई साधारण समीक्षक पहुंच सकता है? अन्तर्मुखी होने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं इसकी वजह यह है कि 'अज्ञेय जी को मानव की शक्ति पर भरोसा नहीं. आप व्यक्तिवाद के कायल हैं.' और 'विद्रोही व्यक्ति' को त्राण का उपाय समझते हैं 'विद्रोही समाज को नहीं' अर्थात् 'ट्राट्स्की को, क्रांतिकारी रूस के प्रतिनिधि स्टालिन को नहीं.' वे स्पष्ट कहते हैं कि 'शेखर की भांति 'अज्ञेय' का व्यक्तित्व 'घोघे' के अंदर रहता है और उससे बाहर निकलने में खबराता है.' तो आनेवाला समय अज्ञेय का स्वागत क्यों करे? इन तर्कों को मसालेदार भाषा में जबर्दस्त बनाया जा सकता था लेकिन सस्ती व्यक्तिगत विरोध की पद्धति पर गुप्त जी नहीं चले. वे यह दर्शाते हैं, क्योंकि 'आज कलाकार की कुलीन परंपरा अधिक पके फल के समान टूटकर गिरनेवाली है' इसलिए अज्ञेय का महत्त्व कम ही होगा, बढ़ेगा नहीं. हमारी जिज्ञासा यह है कि विद्वज्जन यह बताएं कि उक्त भाषा-शैली के अतिरिक्त वाद की आलोचना में उपयुक्त निष्कर्षों से आगे का कौन-सा निर्णय दिया गया? अज्ञेय की आलोचना में और क्या जुड़ सका?

(अगले अंकों में क्रमशः)

कविता

लोग जानते हैं (कविता संग्रह)

राजेंद्र उपाध्याय

बागदेवी प्रकाशन, सुमन निवास, चंदन सागर
वीकानेर-३३४००१ मूल्य १०० रुपये, १९९८

स्वभाव में कविता को अनो एक खास भूमिका होती है। युवा कवि राजेंद्र उपाध्याय के कविता संग्रह 'लोग जानते हैं' की कविताएं इस विश्वास को तब और भी पुष्टा करती हैं जब वह मध्ययुगीन इतिहास में अपनी भूमिका के नकार में खड़ी हो जाती हैं—यथा : अपनी कविताओं के लिए मैं कोई पुरस्कार नहीं चाहता/मैं नहीं चाहता कोई कविता वेदमंत्रों की तरह सुबह-शाम पढ़े/मेरे शब्द संगमरमर में बड़ाए जाएं / राजा के महल के दरवाजे और संतों की समाधि पर लिखे जाएं (भूमिका से)।

कवि राजेंद्र उपाध्याय की कविताएं व्यक्ति को उसके सामाजिक सरोकारों से जोड़कर उसमें आशा और विश्वास भरा जीवन जीने को लालायित भी करती हैं। 'वाहद से भरे लोग' हों या 'भूकंप के बाद' सृजन की संभावनाओं में जीते लोग—दोनों जगह कवि की कविताएं गहरे आत्मविश्वास में भरी नजर आती हैं—'घरती के गर्भ में अब भी फूटते हैं अंकुर / भूखे मृगछोने अब भी लपकते हैं/ धीरे-धीरे पत्तियों की तरफ/एक पतंग जातो है/अब भी आकाश रौंदने/भरी हुई बस्ती में/भूकंप के बाद/आज फिर लौट रहा है जीवन धीरे-धीरे (भूकंप के बाद) सृजन का महोत्सव हो या छत्रंश का हाहाकार 'लोग जानते हैं' की कविताएं अपने समुन्नत भाव और संवेदना में गहरा प्रभाव छोड़ती हैं।

संग्रह की कुछ कविताएं जब 'इमरजेंसी' काल की वर्तमान के अक्स में ढालकर अतीत पर दृष्टिपात करने का आग्रह कर रही होती है तो ऐसा लगता है जैसे कवि जीते समय के बहाने अपने वर्तमान को आत्मविश्लेषित करने की कोशिश कर रहा है। पर यह नहीं भूलना चाहिए कि यह एक प्रकार से काले अतीत के क्रूर चेहरे को शिथिल न होने देने की पेशकश है ताकि हम अपने वर्तमान को काला होने से बचाएं। कवि इस युक्ति को सवालिया चुनौती के रूप में रखता है—यथा : आप नहीं दिखा सकते हैं / वह कैलेंडर / जिसमें एक काली तारीख है / जून का महीना और पिछ्तर का वर्ष है / आप नहीं दिखा सकते वह मेज / जिसको दरारें काले रंग से भरी हैं / जिसकी कुर्सी ऊब रही है / और जिसके माथे पर महात्मा गांधी

ORBIT ORBIT ORBIT

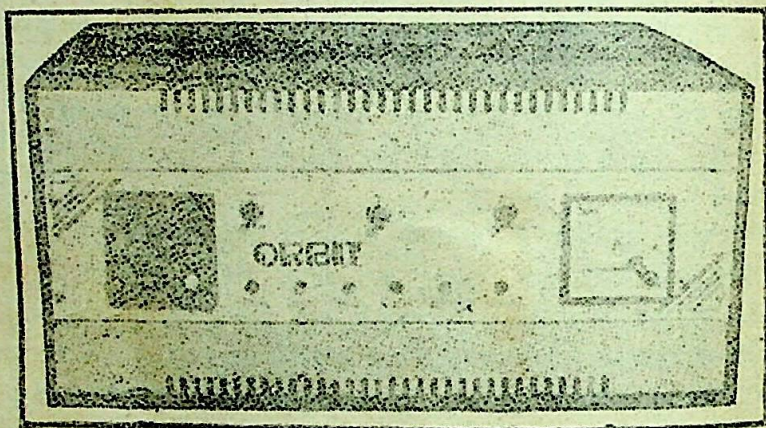
A FAMOUS & RELIABLE

NAME

IN

THE

WORLD OF INVERTERS



USE IT

AND

FORGET POWER FAILURE

SALES OFFICE

JYOTI ENTERPRISES

31 NEHRU MARKET (TOWN HALL)
VARANASI.

PHONE : 332180



स्तवीर में बंद हैं' (लोग जानते हैं)।

कवि राजेंद्र उपाध्याय की कविताओं में 'जूता' एक मिथ की तरह आता है। शायद यह भी 'निरंकुश शासन' का प्रतीक है जिसमें प्रजातंत्र को बरगलाकर फासीवाद अपना जड़ें मजबूत करने में संलग्न है और जो आदमी की स्वतंत्रता तथा उसकी जिजीविषा को रौंदने पर उतारू है। 'जूतों' की इस चरमराहट को मुक्त बाजार व्यवस्था की छाया में बहुराष्ट्रीय कंपनियों की घुसपैठ की सूचना के रूप में सुना जा सकता है। आजादी के पचास वर्ष ही बीते हैं और विदेशी पूंजी की गुलामी का संकट बढ़ रहा है। इस स्थिति में एक संवेदनशील कवि इस खतरे से आगाह ही कर सकता है—'आज तो उसने / हिलाएं हैं जूते/आज तो केवल सुनाई दी है उसकी पदचाप/दिखें हैं उसके भारी भरकम जूते (फूलों को रौंदते हुए)।

राजेंद्र उपाध्याय की कविता इस बुरे समय में मानवीय करुणा और मानवीय संवेदना की टिमटिमाती रोशनी की तरह है, जिसके रहते हम आदमी को बेहतर से बेहतर बनाने की उम्मीद कर सकते हैं। विरूप राजनीति व अपसंस्कृति के बढ़ते प्रभावों से मुक्त होने का शायद यही एक रास्ता भी है। समाज के प्रति कवि का यह उत्तरदायित्व वतंभान के संकटों से जूझने की ओर प्रवृत्त करता है। इस तरह राजेंद्र उपाध्याय का कवि-कर्म अपनी सुविचारित भूमिका के पक्ष में खड़ा नजर आता है।

संग्रह की अड़सठ कविताओं में अधिकांश कविताएं व्यक्ति के जीवन या कहिए प्राणिमात्र के जीवन के संरक्षण व पर्यवेक्षण की दिशा में जाने का आग्रह करती हैं। व्यक्तिवादी चेतना का अस्वीकार और विसंगतियों को खुलासा करने की प्रवृत्ति—राजेंद्र उपाध्याय की कविताओं का विशेष गुण है। 'उसने कहा', 'एक पेड़ के लिए', 'तुम्हारे बिना भी', 'थोड़ी देर में', 'फूलों को रौंदते हुए' 'कन्न होगा ऐसा ईश्वर', 'उर में', 'जिनार', 'हत्यारे की शिनाख्त', तथा 'मैं आऊंगा' आदि कविताएं मनुष्य की सृजनधर्मी महत्वाकांक्षा को जसकत बनाती हैं। कविता हमेशा इंसानियत की पैरोकार बनती है, यह अहसाम 'लोग जानते हैं' की कविताओं को पढ़ते हुए और भी गाढ़ा होता है, शायद इसका कारण इनका कवि के जीवानुभवों और जीवन-पर्याय से जुड़ा होना है। 'मैं आऊंगा' कविता की निम्नलिखित पंक्तियां जीवन के प्रति कवि की गहरी आस्था और गहरे विश्वास का पता देती है और शायद इस संग्रह की तमाम कविताओं के मित्राज का भी। यथा—'मैं आऊंगा/जैसे बादल आने को भरकर लौटते हैं/मैं आऊंगा जैसे क्षमाक्षम बरसता है मेघ/मैं आऊंगा जैसे पेड़ों पर बसंत आता है'।

कृष्ण प्रसाद



कुछ खास पत्रिकाओं पर एक दृष्टि ● रूबी सरकार

यह सच है कि हिंदी की लघु पत्र-पत्रिकाओं ने सारे देश को एकता के सूत्र में बांध रखने का कार्य किया है भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में इन पत्र-पत्रिकाओं का योगदान अल्लेखनीय रहा है। शताब्दियों तक संस्कृत ने भारत को एक रखा। इसी तरह अब समय आ गया है निज भाषा पर गर्व करने का। देश को एकता के सूत्र में बांधने का यह एक क्रांतिकारी कदम होगा। इससे भारत का नक्शा ही बदल जाएगा और हम बीस साल बाद वह भारत नहीं देखेंगे, जो हम सहास्राब्दियों से देखते आए हैं। भाषा ऐसी हो जो देश को सांस्कृतिक रूप से बांधे रखने में सहायक हो। भाषा और राष्ट्रीय एकता का हमारे यहां अविच्छिन्न संबंध है। इसी सिलसिले में हिंदी में बहुत सी अच्छी पत्रिकाएं देश व प्रदेश की सरकारें निकाल रही हैं। इसके अलावा छोटे-छोटे शहरों से भी बहुत-सी हिंदी पत्रिकाएं निकल रही हैं जो भाषा को जनमानस से लगावार जोड़ने का काम कर रही हैं।

उत्तर-प्रदेश सरकार की 'उत्तर प्रदेश, पत्रिका' राजनीति की शिकार हुई। पत्रिका में सरकार की भी अपनी मांग और शर्तें होने लगीं इसलिए अब स्थगित है। 'अतएव' हिंदी संस्थान से छपनेवाली पत्रिका है, देर-सवेर जब तब प्रकाशित हो रही है। संस्थागत पत्रिकाओं में 'वागर्थ' और व्यक्तिगत रूप से 'पहल' बेहद अच्छी पत्रिकाएं हैं। केंद्र सरकार की पत्रिका 'आजकल' सरकारी संपादकों के हिसाब से ठीक ही है लेकिन आज पाठकों को ध्यान में रखकर बहुत कम लिखा जा रहा है। लेखक व संपादक ने लेखन को एक वर्ग विशेष में बांधकर रखा है। खलील जिब्रान ने कहा था—'हम एक दूसरे का प्याला भरें, एक दूसरे का प्याला न पीएं.'



अतः यह जरूरी हो जाता है कि जो पत्रिकाएं निकल रही हैं हम उसमें सहयोग करें। सरकार भी कुछ सहायक बने ताकि वह ठीक से चल सक। आज सैकड़ों की संख्या में पत्रिकाएं निकल रही हैं जो एकाध अंक के बाद दम तोड़ देती हैं, बंद होनेवाली अनेक ऐसी पत्रिकाएं हैं जो त्तरिय होते हुए भी पाठकों के अभाव में व्यवसायिक कारणों से बंद करनी पड़ीं। आइए कुछ गौरतलब पत्रिकाओं पर एक नजर डालें।

अंचल आरत्नीय : अप्रैल ९९

संपादक: डा. जयनाथ मणि त्रिपाठी, ७/५३, देवरिया रामनाथ, देवरिया

नये लेखकों को साथ लेकर चलने की अद्भुत क्षमता है अंचल भारती में। नये कवियों की कविता पठनीय होने के साथ-साथ सरला पांडेय की 'असीम' भ्रूण हत्या (अल्ट्रासाउंड के बाद) पाठकों को झकझोरती है। मार्मिक कविता को थोड़ा विस्तार देते तो अच्छा होता। डॉ. रामकृष्ण मणि त्रिपाठी से उत्तर आधुनिकता पर शशिबिंदु नारायण की बातचीत उन लोगों के लिए ज्यादा उपयोगी है जिन्होंने अपने दिमाग के खिड़की-दरवाजे बंद कर रखा है। काफी प्रभावशाली बातचीत की कुछ पंक्तियों की उद्धृत करना जरूरी है.... 'मैथ्यू आर्नल्ड ने होल्डर लीन की ही तर्ज पर.... --- दुनिया जो मर चुकी और वह दुनिया जिसका अभी जन्म नहीं हुआ, इन दोनों के बीच हम फंसे हैं.'

उत्तर-प्रदेश : जनवरी, फरवरी ९९

संपादक : लीलाधर जगूड़ी, सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, लखनऊ.

यह अंक प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीलाल शुक्ल पर केंद्रित है. 'कुछ अपनी कुछ आस-पास की' वक्तव्य के अलावा कविताएं अच्छी हैं. लीलाधर जगूड़ी चर्चित कवि होने के साथ-साथ अच्छे संपादक भी हैं. संपादकीय श्रीलाल शुक्ल की रचनाओं का लेखा-जोखा है. बहुत अच्छा होता अगर पाठकों के लिए शुक्ल जी द्वारा रचित एकाध कविता छपी जाती. 'विश्रामपुर का संत' पर कई नये लेखकों से लिखवाई गई समालोचना ठीक है.

शशिबिंदु नारायण मिश्र की विद्या निवास मिश्र जी से की गई बातचीत से कोई खास जानकारी नहीं मिलती. शायद मुलाकात छोटी हुई होगी. खैर, मिश्र जी बातचीत के जरिये पाठकों को बड़े लेखकों से परिचित करवाते हैं. रति सबसेना की कविता 'नौका दौड़' में केरल की मिट्टी की खुशगू है.

फरवरी अंक खासकर निराला पर केंद्रित है. डॉ. चक्रवर्त-नलिन, डॉ. विजय रायच रेड्डी, अब्दुल ब्रिस्विट्ज़ाह सबने निराला के व्यक्तित्व, और कृतित्व के विभिन्न

१५२

अनछुए पहलुओं को छुआ है. डा. जगदीश गुप्त से शैलेंद्र कुमार त्रिपाठी की बातचीत में निराला जी की 'काव्य संवेदन' का उल्लेख है. निराला जी मानते थे कि 'काव्य संवेदन में भाषा भेद नहीं होता'. बातचीत महत्वपूर्ण है इसलिए संग्रहनीय है. दूरदर्शन कमियों की विवशता को उजागर करता हुआ मिथिलेश श्रीवास्तव का लेख 'यह समाज यह संस्कृति' दर्शकों के लिए रुचिकर है. पुरस्कार पर अखिलेश का लेख पढ़कर राजस्थान के विजयदान देवा की याद आई. एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा था—'साहित्य में कुछ साहित्यकार माफियाओं का कब्जा हो गया है.....साहित्यकारों को जबरन स्थापित करने का बीड़ा उठा रखा है.' 'अखिलेश की कुछ पंक्ति को उद्धृत करना आवश्यक है—'अब ज्यादातर लेखकों के प्राण पुरस्कार में बसने लगे हैं और सरस्वती पुत्रों के पतन का तमाशा देखना महंगा सौदा नहीं हुआ.'

अभिनव प्रसंगव्यास : अक्टूबर ९८—मार्च ९९

संपादक: डा. वेदप्रकाश अमिताभ, द्वारिकापुरी, अलीगढ़ (उ० प्र०)

साहित्यकार डा. रामदरश मिश्र का आत्मकथ्य और कविताएं पाठकों के लिए प्रेरणास्रोत हैं. उन्होंने मार्क्सवाद को वस्तु के रूप नहीं, अंतर्दृष्टि के रूप में अपनाया जो उनकी कविता से स्पष्ट हो जाता है.

'किसने बैठा दिया है मेरे कंधे पर सूरज है: एक जलता हुआ असह्य बोझ कब से ढो रहा हूँ.....कंधे पर उगा है मेरे ही भीतर से/और मैं इसे नहीं, कहीं अपने को ढो रहा हूँ लगातार.' इसके अलावा डा. विश्वभरनाथ उपाध्याय की 'मेरी साहित्यिक यात्रा' पठनीय है.

कहानीकार : पूर्णक; १३९

संपादक : डा० कमल गुप्त, के. ३०/३७, अरविंद कुटीर, वाराणसी.

श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ 'वेढब बनारसी' के शताब्दी वर्ष पर केंद्रित ३०० पृष्ठों के विशेषांक में मुख्य रूप से उनकी हास्य-व्यंग्य कथाएं, नाटक, उपन्यास के कुछ पृष्ठ, कविताएं, उपमा-वेढबस्य प्रकाशित हैं. वेढब जी काशी की विभूति थे. उनकी चुटीली हास्य-व्यंग्य रचनाएं आज भी विश्वसनीय पाठकों को रोमांचित करती हैं. वेढब जी अपनी रचनाएं, समकालीनों की अपेक्षा, लंबे अनुभव के कारण, तुलनात्मक रूप से कहीं अधिक बेहतर ढंग से लिखते थे. उनके समकालीन उनकी रचनाओं पर टिप्पणी करने में अपने को असमर्थ पाते थे. अपनी लेखनी में वेढब जी हमेशा ध्यान रखते थे कि किसी को कोई बात चुभे नहीं, गुदगुदा भले ही दे. वेढबजी की हाजिर-जवाबी का ऐसा ही एक प्रसंग : हिंदी साहित्य सम्मेलन में एक बार प्रेमचंद ने कहा—



‘श्रीस्वामी किशोरी लाल उपन्यास साहित्य के पर्वत हैं।’ इस पर ब्रेटजी ने चुटकी लेते हुए ‘आज’ के प्रकाशित कालम ‘खुदा की राह’ में लिखा— ‘उपन्यास सम्राट ने भौगोलिक उपमा दी है। इसी वजन पर कहा जा सकता है कि हरिऔध जी काव्य के जंगल हैं, राय कृष्णदास कला के टापू हैं और श्री सुमित्रा नंदन पंत छायावाद के जलडमरूमध्य हैं।’

अपनी स्थापना के दिनों से ही ‘कहानीकार’ ने काशी के अनेक ऐसे शीर्ष रचनाकारों के कृतित्व को अपने दृष्टिकोण से विवेचन कर कुनोन और गंभीर पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है जिन्हें नयी पीढ़ी लगभग भूलती जा रही है। विनम्र श्रद्धांजलि और स्मरणीय अंक के लिए कमल गुप्त को बधाई।

इसके अलावा पत्रिका के हमेशा की भांति स्थाई स्तंभ मेरी रचना प्रक्रिया, कुछ स्याहः कुछ सफेद, मुलाकात, समकालीन कहानी, प्रगतिशील आंदोलन, कविता फलक, विचार पृष्ठ और खासकर दृष्टि-दृष्टांत पर दृष्टिपात करने की जल्दत है।

नया सान्नाह-अंक १३, जुलाई-सितंबर, वर्ष १९९९

संपादक : कुसुम चतुर्वेदी, अतिथि संपादक : डा० अमरनाथ.

संपर्क : आचार्य रामचंद्र कुंजल साहित्य बोध संस्थान, दुर्गाकुंड, वाराणसी

सदी के अंत में राष्ट्र की अनेक उलझी समस्याओं में सर्वाधिक उलझी और उपेक्षित समस्या राष्ट्रभावा हिंदी की है जो राजनीति का कुचक्र का शिकार हो गई है। इस समस्या पर बल देने और उसे पुनर्निवारणीय बनाने के उद्देश्य से प्रकाशित ‘नया मानदंड’ का ‘सदी के अंत में हिंदी’ शीर्षक विशेषांक महत्वपूर्ण है। इस विषय पर गंभीरतापूर्वक विचार करते हुए डा. अमरनाथ, बालगौरि रेड्डी, प्रो. पी. वी. ललिताबा, रंजीत-राजन ए. ए. शेषन, जयरीमल पारख, जी. सुंदर रेड्डी, फ्रैंडेल डलैंडर, डा. परमानंद श्रीवास्तव, डा. शंभूनाथ, डा. रामभूति त्रिाठी, विमल आदि विद्वान शामिल हैं। इस समस्या पर दृष्टिपात करती हुई संपादक की ये पत्रिका गौरतलब है—विश्व में और भारत में हिंदी बोलने-समझनेवाली जनसंख्या के आंकड़े यह ज्ञातमानि भी पंदा करते हैं कि हम भारतीय जन अंग्रेजी विकल्प को शर्म की चीज नहीं समझ पाए....अंग्रेजी वर्चस्व का मूल कारण है देश की दलित, पीड़ित, अतिवंचित जनता को बराबरी के अवसर से वंचित करना तथा आंदोलन की शक्ति से अपरिचित रखना।’ इसी संदर्भ को आगे बढ़ाती हुई डा० अमरनाथ की संपादकीय-पंक्तियों पर ध्यान जाता है—‘जनता की मुक्ति तभी संभव होगी जब जनता अंग्रेजी की दासता से मुक्त होगी। यह लड़ाई जारी है और पहले की तुलना में अधिक चुनौतीपूर्ण है क्योंकि इस समय जिन दुश्मनों से हमें लड़ना है वे सात समुंदर पार से नहीं आए हैं और न

तो गोरी चमड़ीवाले हैं। वे हमारे बीच के ही हैं और लूट का इनका ढंग इतना सूक्ष्म और पेचीदा है कि इनसे मुकाबला बहुत कठिन है। भूमंडलीकरण और सूचना क्रांति ने इस लड़ाई को और भी अधिक जटिल बना दिया है। फिर भी वास्तविक मुक्ति के लिए हमें लड़ाई तो लड़नी ही पड़ेगी।'

भाषा की निजता के महत्व पर सन् १९१७ में लिखी हुई आचार्य रामचंद्र शुक्ल की इस विशेषांक में प्रकाशित कविता की ये पंक्तियां दृष्टव्य हैं—

‘अपनी भाषा से बड़कर अपना कहाँ

जीना जिसके बिना न जीना है यहाँ

हम भी कोई थे कभी, अब भी कोई हैं कहीं

यह निज वाणी-बल बिना विदित बात होगी नहीं।

नागरी पत्रिका : जून-जुलाई ९९

संपादक : सुधाकर पांडेय, नागरीप्रचारिणी सभा, विश्वेश्वरगंज, वाराणसी.

पत्रिका में पं. सुधाकर पांडेय का संस्मरण संग्रहणीय है। पंडित जी जैसे साहित्यप्रेमी के रहते साहित्य कभी हाशिये पर नहीं जा सकता। चनम्मा ने नागरी पत्रिका के प्रचार के लिए जो महत्वपूर्ण कार्य किये हैं, सराहनीय है। सरकारी अंशानुदान पर निकलनेवाली इस पत्रिका में रचनाकार भले ही नामचीन न हो लेकिन रचनाएं महत्वपूर्ण हैं। खासकर भाषा की दृष्टि से इस पत्रिका को ढूँढ़कर पढ़ना चाहिए।

निमित्त

संपादक : इयामसुंदर निगम, १४१५, पूर्णिमा, रतनलाल नगर, कानपुर.

पत्रिका की छपाई इयाम की भांति सुंदर है। इस प्रकाशपुंज का विषय अत्यंत दिलचस्प ‘संपादकीय’ ऐंठ संपादकों का पक्ष’ है। मेरे विचार से ऐंठू व्यक्ति अच्छे संपादक नहीं हो सकते।

दरअसल संपादक भी दो तरह के होते हैं। मालिक संपादक और नौकर संपादक। नौकर संपादक को हैसियत आफिस व्यय की भांति है। मालिक के सारे कार्य यानी व्यापार और सरकार के बीच का वह माध्यम है। उनमें स्वयं का संपादकीय बल नहीं होता तो वे ऐंठ क्या दिखाएंगे? कभी-कभी अच्छे और बड़े साहित्यकार भी इस क्षमता में फंस जाते हैं और बाद में ‘राम-राम’ करते हुए निकल आते हैं। हाँ, साहित्य में अधिकतर संपादक मालिक हैं और वे पत्रिका के स्तर को बनाए रखने की कोशिश करते हैं। जाहिर है आज लेखक अधिक हैं और पत्रिका कम ऐसी स्थिति में संपादक का कद बढ़ा है और उनमें कहीं-कहीं ऐंठ जैसी चीज देखने को मिलती है लेकिन बहुत कम। संपाद के माध्यम से इस गलत-फहमी को दूर किया जा सकता है लेकिन



या संभव है कि संपादक प्रत्येक रचनाकार से संवाद स्थापित करे ? इसलिए 'पाठक मंच' होना चाहिए और कभी-कभी संपादकों को उसमें आमंत्रित किया जाना चाहिए। हाँ, इस अंक से साहित्यकारों का जी जरूर हल्का हुआ होगा। इस अंक की उपलब्धि विजयकांत का लेख है। कुल मिलाकर पत्रिका न तो संपादकों के ऐंठ पर कुछ खुलकर बातें कर पाई और न ही रचनाकारों को कुछ नमीहर्तें ही देपाई।

मनस्वती : अंक १३

संपादक : सुरली सोहन, पोस्ट बाक्स नं. १८, यम ८ कृष्णदीप कांपलेक्स, महारानी रोड, इंदौर-४५२००७

पं० विद्यानिवास मिश्र जी से रमेश न्यायाय की बातचीत सुखी पाठकों के लिए है। मिश्र जी का पुस्तक अंश 'राधा माधव रंग रंगी' का वर्णन उद्भूत है। हमें प्रेरणा देती है, मन में प्रतिष्ठित कर्णा को प्रस्फुटित करती है। कर्णा तथा संवेदन-शीलता मानव को प्रगति की ओर ले जाती है। यही मानवता के लिए दैवी अमृत है। यह बातचीत इस अंक की उपलब्धि है। रमेश निर्मल की गोविंदा से बातचीत दिलचस्प है। इसके अलावा कविताएं, निबंध, कहानी, पुस्तक समीक्षा बहुत कुछ है। सारी सामग्री स्तरीय और पठनीय है। इसे खरीदकर पढ़ने की जरूरत है।

मन्त्रि छायावाह : जुलाई, सितंबर ९९

संपादक : पलाश, १२ विकास नगर, रोहतक-१२४००१

संपादक मंडल और खूबसूरत आवरण के साथ प्रकाशित पत्रिका के लिए बधाई। रचना के माध्यम से कहने और बहस मुवाहसे में न पड़नेवाली बात कहकर श्याम सखा श्याम नजरें फेर लेते हैं। बहस तो होनी ही है, फिर चाहे वह कहानी को लेकर ही क्यों न हो ! पत्रिका में बहुत बढ़ने पर भी श्री आनंद की कहानी 'अपना हिस्सा' नहीं मिली। वैसे कहानियों की तुलना में कविताएं स्तरीय हैं। भविष्य में कहानियों के चयन में संपादक मंडल को थोड़ी सावधानी बरतनी होगी।

सांस्कृतिक उपहार : जुलाई-अगस्त, १९९९

संपादक : तथागत चटर्जी, ब्रह्मानंद कॉलोनी, वाराणसी

इस अंक में हमेशा की भांति विरपरिचित लेखकों की रचनाएं हैं। विशेष रूप से सुहृन्वादी के कवि रवींद्र नाथ ठाकुर पर 'फास्टर' के भाव पाठकों के केंद्र बिंदु हैं। जब विश्व में भारत की आवाज कहीं सुनाई नहीं पड़ती थी, उसी समय रवींद्र नाथ ठाकुर ने भारत का आध्यात्मिक राजदूत बनने का मन बनाया। ईश्वरचंद्र विद्यासागर और बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय जैसे महान लेखकों को अपना आदर्श मानकर विकास के मार्ग पर अग्रसर हुए और संपूर्ण पश्चिम पर रवींद्र नाथ ठाकुर का उद्भूत प्रभाव पड़ा। ठाकुर के साथ से विक्टोरिया ओर्केम्पो के भीतर आस्था का पुनः संचार हुआ। आलोचक मैल्कम मैकडोनाल्ड ने तो कविगुरु के चेहरे पर ईसा की तरह भद्रता, कुलीनता, दुख और प्यार की झलक देखी थी। इसके अलावा दिलीप साहब फाल्के,

भारतीय पाकशास्त्र में
निपुण और ख्यातिप्राप्त
मधुरिमा विशेषज्ञ
द्वारा निर्मित

● भारतीय मिष्ठान्न
एवं

● विशिष्ट नमकीन
के
दर्शनीय
ग्रहणीय
तथा
स्मरणीय
स्वाद के लिए



ज्य

श्री राम मण्डार

दुकान नं० ५ मिट हाउस नदेसर, वाराणसी

फोन—प्रतिष्ठान : ३४५८४५ निवास—३२०२६५



साक्षात्कार खंड भी पठनीय है. कहानी 'वानप्रस्थ' अधूरी है. बाहिर है, अच्छी है लेकिन चर्चा अगले अंक में.

हस्त : मार्च ९९

संपादक : राजेंद्र यादव, २/३६, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-२

कुसुम अंसल की कहानी 'तुम्हारे मोहरे' किसी नये कथानक पर आधारित नहीं है. अमूमन इस तरह की कहानियां लिखी जा रही हैं लेकिन जिस सूक्ष्मता से उन्होंने स्त्री पात्रों को गढ़ा है, वह बेमिसाल है और हमें कुछ सोचने पर मजबूर करती है. विशेषकर प्यार के बारे में. उपभोक्तावादी युग में 'लव कुछ नहीं होता.....' वस यह एक अरेंजमेंट है,.....एक सार्टीफिकेट टूगेट मैरिज. इंसान को प्रैक्टिकल होना पड़ता है. ये आदमी.....सैल्फिश है.....ताजमहल के नीचे एक मरी हुई प्रेम कहानी दबी होती है, जिसे कोई नहीं जानता. बिल्कुल उपभोक्तावादी युग की कथा लगती है. इसके विपरीत प्रियदर्शन की कहानी 'उसके हिस्से का जादू' भारतीय निम्न मध्यवर्ग की कहानी है. एक सहमा हुआ आदमी दफ्तर और घर के मध्य अपने सपने बुनता है. उसे लेकर जीता है, अवचेतन में 'रंगीन सपने लिए पूरे परिवार को एकता के धागे में बांधे रखता है. कुछ भी टूटने नहीं देता न सपना, न परिवार और पाठक भी वैसे ही कहानी से बंध जाते हैं. बहुत खूबसूरत बुनावट है.

अमरीक सिंह दीप की कहानी 'तीर्थाटन' हिंदुस्तानी औरतों की नियति की कहानी है. प्रेम की जो परिभाषा कहानी में की गई है, उसमें कुछ नयापन है, मसलन पशुओं के संबंध में—'अगर हम कोई जीव पाल लें तो.....कभी शत्रु पर हमला करेगा.....घूमरे शहर चले जाते या बीमार हो जाने पर खाना-पीना छोड़ देगा, उदास और गमगोन रहने लगेगा.....क्या यह प्रेम है? प्रेम पर....., प्रेम को नमी हमारे 'मैं' के शुष्क बीज को फोड़ती है. हमें हम नाम का खूब घना छायादार वृक्ष बनाती है. फूलों, फलों की सुगंधों से लाद देती है. हमारी संवेदना को कोमल और प्रखर करती है. हमारी सोच और दृष्टि को व्यापकता प्रदान करती है. हमें सामाजिक प्राणी बनाती है. इसलिए हर युग में प्रेम जीवन का सर्वश्रेष्ठ भाव रहा है और रहेगा.'

अप्रैल ९९ के अंक में समाज में फैली विसंगतियां और लचर न्याय-व्यवस्था को इंगित करती कहानी 'मृठमेड़' पठनीय है. इसके अलावा अंक में काशीनाथ सिंह और रवींद्र कालिया के संस्मरण हैं. कई अच्छी पुस्तकों की समीक्षाएं पठनीय हैं. इस अंक की संपलविधि नीरद चौधरी पर विष्णु खरे का लेख 'एक-बहुत उपयोगी मूर्तिभंजक प्रतिक्रियावादी' है. कहानी 'रावण' में मूलसिंह दलितों का प्रतिनिधित्व करते हैं. अपनी ताकत को ढाल बनाकर सवर्ण रामलीला में मूलचंद की धुनाई करते हैं. समाज दलितों के साथ जो प्रैक्टिकल सुलूक करता है उसका वर्णन कहानी में है. मूलचंद का आक्रोश सही है. दलित भाइयों ने बिगत एक हजार साल में अपनी हालत पर केवल गम और गुस्से का इजहार ही किया है. कहानी का अंत प्रखर है—'उसने तय कर लिया था कि अब गांव जाकर चाहे दो-चार सिर फोड़ने पड़े या खून के इलजाम में जेल जाना पड़े मगर न वह अपमान सहेंगा न बोल-कबोल सुनेगा, आखिर वह छः फूटा जवान है, दबा कुचला क्यों रहे ?'

—दिलदृष्ट, मुंबई

समकालीन कहानी का वृत्त-चित्र



(चौवालीसवां अंश)

डा० शुकदेव सिंह

‘मृत्यु ओचक आती है, और कुछ न भी करे तो, संवेदन शून्य और परिपक्व तो करती हो है. उसकी अपरिहार्यता का सच किसी स्तर पर ‘सस्टेन’ करता है. यों तो जीवन-यापन एक बहुत बड़ी पाठशाला है, जरूरतों के हिसाब से स्वयं सिखा-पढ़ा लेती है. यह अजीब बात है कि मृत्यु से निपटने की समझ मृत्यु के घटित में से ही आती है.’ राजी सेठ ने ये पक्तियां अपनी नयी किताब ‘यह कहानी नहीं’ में अनजाने नहीं लिखी है. शताब्दी के अंत में यह एक सोचनेवाले आदमी की सोची हुई प्रस्तावना है. मैं उनकी कहानियां बड़े कलात्मक दबाव में न समझ पाने के भय के साथ, अपनी अक्षमता के भीतर पड़ता हूं. उन पर लिखते समय अपने को असहज पाता हूं. इसलिए हल्का करता हूं, हल्का होता हूं और हल्के-फुल्के ढंग से उनकी कठिन कला की कोई बात छूट न जाय, ऐसी जर्रा-जर्रा कोशिश करता हूं. मैंने ‘तदुपरांत’ पर जब इसी डर के साथ एक चुहल भरी समीक्षा लिखी थी, तब एक बुद्धि-दरिद्र सिपाही कोम के घुसपैठिए ने कत्तई यह न सोचा था कि जो मैं लिखता हूं वह लेखक तक भी पहुंचता है. किसी पाठक-प्रशंसक एवं निंदा की परवाह किए बिना मैं पुरस्कृत हुआ. रचनाकार को लगा कि मैं कहानी को पढ़ सका. शायद यह भी लगा कि मैं समझ सका. लेकिन मुझे साहस नहीं हुआ कि उन्हें उत्तर दूं और उनके पुरस्कार के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करूं. शताब्दी के अंत में जब मैं स्वयं मृत्यु के निकट पहुंचता जा रहा हूं, राजी सेठ के मृत्यु-विवेक की खूब-खूब प्रशंसा करता हूं. मैंने उनके व्यक्तिगत जीवन के बारे में कभी कुछ नहीं जाना. उनके दुःख का कोई कतरा मेरे किसी परिचित तक कभी नहीं पहुंचा. यह भी एक उपलब्धि है. क्या यह आकस्मिक है कि मेरे प्रिय कवि संत कबीर ने मृत्यु से संवाद करते हुए राग और शृंगार में उतरकर अद्भुत वानियां कहीं. मुर्दों के गांव में रहते हुए, मृत्यु के निर्भय सच तक काशी-मगहर एक कर लिया.



यह संदर्भ इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि पिछले एक साल से 'न्यू पिन्नेनियम' का इतना गुल है कि इस शोर में यह जानना ही कठिन है कि शब्द का अर्थ क्या है ? मैंने इटली की अपनी छात्रा सारा अंडे से नये वर्ष का उपहार लेते हुए पूछा था—इस शब्द का अर्थ क्या है ? अंग्रेजी की वह विदुषी दायें-बायें देखने लगी और उसने सोचा कि शायद मैं कोई विशेष अर्थ जानना चाहता हूँ लेकिन 'न्यू पिन्नेनियम' एक सपना है. एक स्वर्ण युग का आरंभ जो अभी मगभग दस महीने बाद शुरू हो सकता है, यदि कोई महायुद्ध नहीं हुआ तो. अभी तो यह वर्ष इस शताब्दी का निघन वर्ष है. सौ वर्ष के सभी तरह की लड़ियों के निघन का वर्ष. हमने आईन्स्टीन कमाया, गांधी अर्जित किया, हिटलर भी. रसूल, रजनीश, डायना, लेविस्की, तरह-तरह से अपने सौ वर्ष रंगे-उजाड़े और यह दिखाया कि पिछले उन्नीस सौ वर्षों का अर्थ ईसा की उन्नीसवीं सदी तक और पीछे उन्नीस सौ वर्षों तक हम लोगों ने कुछ किया था, उतना और उससे ज्यादा केवल एक सौ वर्षों में कर लिया. यह शताब्दी मर रही है. नयी के बारे में क्या सोचना ? तो फिर क्या यह सारा संभव जिसे हम एक साल से मना रहे हैं, मृत्यु राग है ? भीत के बहुत निकट वृक्षते हुए पिये की ली का आखिरी झटका है. क्या है ? क्या है ?.....

अनेक उत्तरों में केवल कुछ सालों की एक जागृति के कुछ मुद्दों पर मुझे बात करनी है. हास्यास्पद यह है कि मुझे क्या-वार्त्ता जैसी इसी शताब्दी में पैदा हुई, मरती हुई, मर गई विधा के बारे में बात करनी है. इस कथावार्त्ता की सबसे कमजोर तथा गद्य-गीत बिन मारे मर गई. निबंध जैसी ताकतवर विधा बुरी तरह से मरी. अब कोई नहीं पढ़ता. कहानी बार-बार चुकी और चूकी. उपन्यास आया और आता रहा है, कितना वक्त है लोगों के पास ? सड़कें मरी हैं. लोग चल रहे हैं, बसें, अयाइयां, हवाई जहाज भरे हैं. लोग तेजी से चल रहे हैं, हर जगह गति ही गति, दुर्गति की सीमा तक लोग नक्षत्रों की पड़ताल कर रहे हैं. मैं सोचता हूँ कि परिक्ष यात्राओं, 'इनसेट' ई-मेल, उपग्रहान् बगैरह पर क्या कोई कहानी लिखी गई, या कोई उपन्यास बना ? 'डिजिटल' एवं 'प्लास्टिक कैद' खान-पान की चीजों पर रचना लिखी गई. बाल मजदूरों, बंधुआ लोगों और वंशवादी नेताओं पर किसी कोई क्लैसिक रचा ? यथार्थवाद के नाम पर हमने औरत के जुलम पर तो नहीं, औरत के इलम पर बड़ी फांकाकशी की. भूखी नजरों से देखा, खाया और स्त्रीमुक्ति के नाम पर नरक द्वार तक पहुंचकर हम ने मंथन किया—जवान से, कलम से, विचार से; कौवा दरवाजे खोले. मैं समझता हूँ कि किसी क्षयिष्णु जाति का सबसे कमजोर या औरतों की नकलजनी से या छिद्रान्वेषण से संबद्ध होता है, लेकिन यदि इसमें

स्त्रियों की भी हिस्सेदारी हो तो इस पर ध्यान देने की जरूरत है। इधर कुछ पिछले साल स्त्री मुक्ति हो नहीं, स्त्री-लेखन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। लेखकीय प्रसिद्धि की दृष्टि से भी। एक ओर महाश्वेता देवी हैं, दूसरी ओर अरुंधतीराय। इन दोनों के बीच में जो चप्पा-चप्पा जगह खाली है, उसमें कहीं कृष्णा सोबती बैठी हैं, कहीं मृदुला गर्ग, कहीं चित्रा मुद्गल, कहीं राजी सेठ, ममता कालिया तो कहीं स्नेह मोहनीश, उर्मिला शिरोप और कहीं-कहीं कभी-कभी मैत्रेयी पुष्पा, यहां-वहां कमल कुमार। ये सब विचार की दुनिया के रचनाकार हैं ? इनकी संख्या लगातार बढ़ रही है, इसमें राजी सेठ, चित्रामुद्गल, मृदुला गर्ग अधिक विचारशील हैं। सबसे कम अविचारित रमणीय दुराचार की हद तक ढीठ मैत्रेयी पुष्पा शुरू हुईं और खत्म। कामुक लेखन अल्पजीवी होता है, सहवास के क्षण की तरह। लेकिन मैं मानता हूं कि मैत्रेयी ने पुरुष लेखकों को ही नहीं, स्त्री लेखिकाओं को भी उत्तेजित किया है—क्रोध एवं ईर्ष्या की सीमा तक। अब किसी जमालों के लिए क्या गद्दी कम है कि आग लगाए और दूर हो जाए, खुद खो जाए और सनसनी बनी रहे। मुझे खुशी है कि इस सनसनी का सबसे सशक्त एवं इस मित्रेनियम वर्ष का सबसे तरोताजा उपहार 'आवां' के रूप में सामने आया है। कहनेवाले कहते हैं कि जब 'चाक' चला तो डंडा किसी का, फील किसी की, माटी किसी की, कारीगरी एवं नदीसी किसी की। कुछ चर्चन हवा से टेढ़े हो गए, कुछ पानी में गल गए, कुछ बचे-बुचे राजेंद्र भार्गव की आहुति की आग में झुलस गए, पके नहीं। इसीलिए वर्ष के ऋतुरंग को पकाने के लिए चित्रा मुद्गल ने मजदूरों, कामगर दुखी लोगों की यूनियन में काम करने के पके अनुभव के साथ इस साल का सबसे पका एवं सच्चा उपन्यास 'आवां' रचा। 'आवां' संघर्ष के आतप में शोक-गीत के यम हुए सुर पर बहुत ही झीने-झीने ढंग से रचा हुआ कथ कृत्य है। इस उपन्यास पर समझदारी के साथ अलग से लिखने की जरूरत है। लिख रहा हूं। वैचारिक लेखन, या विचार में सदाचार करती हुई रचनाओं के समानांतर मुझे दो लेखिकाओं की बहुत अच्छी स्मृति है। इनकी जमीन ही अलग है। दरअसल इनके लिए आचार महत्वपूर्ण है। सदाचार की सीमा तक सच्चाई सार्थक है। अगर सभ्यता जीवन से जुड़ी हुई कोई चीज है, कपड़ा प्रसाधन, अस्तित्व जीवन के सबसे अधिक दर्शनीय पक्ष हैं तो इस सुदर्शन को भी लिखा जाना चाहिए। कपड़े उतारनेवाली कला तो जैनधर्म पर ही समाप्त हो जाती है। मैत्रेयी पुष्पा, कभी कभी मृदुला गर्ग और कई उत्साही लेखिकाएं विचार, कदाचार तक को छूट देती हैं लेकिन जीवन सभ्यता का मुरज भी है, मुद्गं भी, सारंगी भी, संगीत भी है और दुःख और यातना बहुत बार अस्वीकृत नहीं होती। इसलिए दिल्ली में रची-बसी राजनीति में पुनीत वर्ग के अधिकारी मृदुला



सिन्हा और रश्मिकुमार अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। इनके पास बहुत ही समर्थ गद्य है, दोनों बिहार की हैं। तीज त्योहार, व्रत, नौका-हकारो, सरोकार जीवन के चारों ओर खड़ी दीवारों से जायज टकराहट, संबंधों की ऊष्मा और बड़ी से बड़ी उपलब्धि के लिए चरित्र का नहीं, चरित्र का संयम इन लेखिकाओं को अलग खड़ा कर देता है। निराला में बहुत उतार-चढ़ाव है—औषधपन की सीमा तक। 'राम की शक्ति पूजा' भी है और 'अबे बे गुलाब' भी है, लेकिन मैथिली शरण गुप्त में अपने इतिहास की सारी वैचारिक क्रांति मिथक एवं सुखद संवादों में केंद्रित है। अपने को समय का सूर्य कहनेवाले दिनकर में भी एक तारतम्य है—अगर मैथिली शरण गुप्त और दिनकर हमारे इतिहास की आंखें हैं, तो मृदुला सिन्हा एवं रश्मिकुमार भी हमारे समय के नेत्र हैं। इनमें प्रयोग की छटपटाहट नहीं है, उद्वेग पैदा करने की अकुलाहट नहीं है लेकिन कहने व पढ़वा ले जाने की विलक्षण क्षमता है। प्रेमचंद ने कोई प्रेम-कहानी नहीं लिखी, कोई अश्लील प्रसंग नहीं उठाया; क्या उनसे ज्यादा कोई संघर्षशील हुआ? अपने समय का अर्थ लेकर प्रेमचंद कुल पंद्रह वर्षों के लेखन के आधार पर बहुत अधिक साक्षर लेखक जान पड़ते हैं। उनके सामने सारे प्रयोग निरक्षरों की उहा जान पड़ते हैं मैं इस बड़े लेखक की जमीन से बड़े घर की दो बेटियों मृदुला सिन्हा एवं रश्मि कुमार को जोड़ने की सुविधा ले लेता हूँ।

इस विस्तृत प्रस्तावना के बाद मुझे कुछ थोड़ी किताबों के आधार पर वर्षों तक की मुरीद तक कुछ दिये जलाने हैं। सबसे पहले पिछले पचास वर्षों की सारी कहानियों में अलग-हैसियत रखनेवाली कहानी 'तदुपरांत' और राजी सेठ की पुस्तक 'यह कहानी नहीं', चित्रा मुद्गल का 'आवा', 'जिनावर', मृदुलागर्ग की 'कठगुलाब' के साथ उनकी कई कहानियाँ, कमल कुमार की 'दरअसल प्रेम कहानियाँ'। उन्होंने अपने समकालीनों में सबसे अच्छी प्रेम कहानियाँ लिखी हैं। रश्मि कुमार आलोचना की दुनिया में बहुत नहीं जानी जाती, लेकिन उनकी पुस्तक 'कुछ पल अपने', 'मैं बोन-साधी नहीं', 'दहलीज के उस पार', 'नेपथ्य की जिदगी' को पढ़ने के लिए हिंदी के समक्षदार पाठकों का आह्वान करता हूँ। मृदुला सिन्हा की विकलांग बच्चों पर लिखी हुई रचना पिछले दस-बारह सालों की श्रेष्ठ रचनाओं में से है और उनकी सारी रचनाएं रामवृक्ष बेनीपुरी के शताब्दी-वर्ष में इस बात की याद दिलाती हैं कि बेनीपुरी जो जिस वजह से कलम के जादूगर कहे जाते थे, वे वजहें उत्तर बिहार की मिट्टी में अर्थात् 'सीता माटी' में निहित हैं। 'सीतामाटी' मतलब स्त्री की वह नियति जो जन्म से मृत्यु तक मिट्टी से जुड़ी होती है। कोई राजा चाहे जनक हो या पुष्पोत्तम राम, सीता को मिट्टी के अभिशाप से बाहर नहीं निकाल सकता। इस अभिशाप की कविता दुःख की लहरों से छू-छूकर हंसता हुआ बेनीपुरी जो ने भी लिखा था और मातृभूमि उत्तरांचल के दुःख-सुख हसी-ठठ्ठा, मस्ती और निठल्लापन का वर्णस्पर्शी, लयबद्ध गद्य मृदुला भी लिखती हैं, रश्मिकुमार भी लिखती हैं। क्षेत्रीयता की इस संस्कृति के भीतर से उठी हुई सधी-मनी खड़ी बोली के लिए मृदुला सिन्हा एवं रश्मिकुमार

विशिष्ट

और

आकर्षक

● जॉब वर्क

● स्क्रीन

● इम्बॉस

और

● ऑफसेट

प्रिंटिंग

में अग्रणी



दी कमला प्रिंटिंग प्रेस

सी. के. ३०/३७ पशुपतेश्वर

चौक, वाराणसी-२२१००१

फोन-कायस्थल : ३२०२६२

डिजाइन : ३२०१५५



को साथ-साथ एवं अलग-अलग पढ़ने की जरूरत है। बेनीपुरी जो को याद करने के लिए ये दो सुंदर रचनाकार स्मृतियाँ हैं।

बिहार की बात आई तो कहना होगा कि बिहार कभी भारती इतिहास का उत्थान बिंदु था, फिर अवसान बिंदु और अब तो प्रस्थान बिंदु है जहाँ सबसे अधिक अज्ञाति है, नरसंहार है, वध के आदिम तरीके हैं, भ्रष्टाचार का दिल्लीवादी राजनीतिक कल्चर है जिसकी शिखाएं और चोटियाँ, जवाहर लाल नेहरू के प्रति श्रद्धा, सीताराम केशरी के प्रति विनोद, और लालू प्रसाद यादव के प्रति ललितलवंग उपहास से एक साथ जुड़ी हुई हैं। क्यों इंदिरा गांधी, क्यों राजीव गांधी, क्यों सोनिया गांधी, क्यों मैनका गांधी, क्यों संजय गांधी; तो फिर पं० जवाहर लाल जी आप (जहाँ भी हों) तो क्यों नहीं सीताराम केशरी, क्यों नहीं लालू प्रसाद यादव, क्यों नहीं निशा, क्यों नहीं अखिलेश यादव, क्यों नहीं अटल जी के नातेदार, रिस्तेदार? ऐसे नकारात्मक समय में बिहार नकार का नायक है। नरसंहार में अगुआ है, लेकिन क्यों बिहार के लड़के ज्यादा आई. ए. एस. हो रहे हैं? क्यों बिहार में सबसे अधिक पत्र-पत्रिकाएं पढ़ी जा रही हैं? क्यों बिहार में रामधारी सिंह दिनकर बिना किसी विचार एवं आलोचक के 'धरातल' एवं 'माटी पानी' जैसी अनेक रचनाओं के बल पर प्रेमचंद की जमोन को छाँ की कोशिश कर रहे हैं, ऊँचाई और रचनात्मक संयम दोनों की दृष्टि से? क्यों मिथिलेश्वर बिना किसी प्रचार के फणिश्वर नाथ रेणु से कम महत्वपूर्ण नहीं हैं? क्यों वहाँ विजयकांत हैं, अनंतकुमार सिंह हैं और जननायक नातिश कुमार और रामबिलास पासवान की पूँछ पकड़कर दिल्ली का दोहन चटनेवाले मणी-फणी, बड़ी-कड़ी वगैरह प्रचार विकल्प तुच्छ रचनाकार भी हैं?

अब तो शताब्दी बीत रही है। स्वयं प्रकाश को कहानियों के लिए, संपादन के लिए ज्ञानरंजन को, सृजन व व्यवस्था दोनों की दृष्टि से पूनम देया के लिए, संपादन, निर्देशन, आलोचना और हर तरह से सुंदर विवेक के लिए प्रभाकर श्रोत्रिय को याद किए बिना शताब्दी के यह महीने व्यर्थ हो जाएंगे।

बनारस पर फिर कभी....

लेकिन इस घोषणा के साथ कि डा० नाहोद (सुलतानपुर) इन दिनों बनारस में सबसे कहीं जाने लायक कविताएं लिख रही हैं। उनकी कविताएं प्रदीप तिवारी के समानांतर अपेक्षाकृत गहरे आत्मविश्वास और उदास विद्रोह की कविताएं हैं—निडर रचनाएं हैं जिनकी तुलना में ज्ञान-विज्ञान में लिपटी संपर्क साधक रचनाएं एक दिन खुद प्रचार से उबरकर संपर्क प्रचारित उद्यम हो जाएगी। बहरहाल 'निंदक नियरे राखिए' के गम, अकारण विद्वेष और तृष्णा के तटबंध पर, अनुबंध पर, संबंध पर आधारित रिश्तों के बावजूद इस सच से इनकार करना मुश्किल है कि नये साल में 'लघुकहानी' के नायक भाई कमल गुप्त का स्मरण रचनात्मक बधाई से जुड़ा है •

(अगली किस्त रचना-निर्भर केवल रचनाओं पर आधारित)

—१७१ बी. सुंदरपुर, वाराणसी

कविता

आमों का मौसम

गरमियों के आते ही
फलों की दुकान से संतरे, मौसंबी, अनार
कहाँ चले जाते हैं
आम डलिया भर, लारी भर आते हैं
अट जाते हैं दुकानों में
दुकानदार के बैठने की भी नहीं रहती जगह
बाहर ही होती खरीद-फरोख्त

साथ ही मक्खियां, आमों के पहाड़ों में
हरहराते नदी-नाले
लू में भिनभिनाते आक्रमण

दुकानदार के सिर के पीछे
ग्राहक के सिर के पीछे
मक्खियों का दिव्य चक्र
गुठलियों से भरी पड़ी-
नालियों में पानी स्थिर/बहती मक्खियां

आमों का मौसम मक्खियों का भी मौसम
छुट्टी होते हुए भी लड़का-
दुकान पर नहीं आया/नहीं खरीदे आम

गरमी और जाड़ा है अलग-अलग
केवल कैलेंडर में

गणित में

एक खिड़की में धूप/दूसरी में बादल

चार कविताएं

एच. एस. शिव प्रकाश
अनु०-अ. कु. सिंह, शिव प्रकाश
(मूल कन्नड़ से अनूदित)

एक और मैं पहाड़ों से आ धमकती बरसात
एक ही समय एक ही कमरे की
दो खिड़कियों में तीन ऋतुएं

गरमियां मौसम मक्खियों का
आम खाने की अनिच्छा

जाड़े में मक्खियां कम
ओ मां आमों की अभिलाषा
इंतजार करो गरमी का
उसके दिलासा के शब्द

बच्चे और फल

फलों की दुकान के सामने
आंखें बिछाए बच्चे
हवा की खुजलाती उंगलियां
शरारती बच्चों के पत्थर
न गिरा पाएं कच्चे फल

खुद ही बन जाओ फलों की दुकान
मुख्य बाजार के चौक में
जहां भरी हैं जिसमें गिरवी और-
गुजरी दुकानों की धूल

फल बनना होगा तुम्हें बच्चे
जब तक कि पूर्ण विकास की सलबटें-
ढंक न ले शरीर/झुकना होगा थोड़ा
थोड़े से चटके केले की तरह

बकोतरे की तरह मोटे होओगे
या सिकुड़ोगे नीबू की तरह
भर जाएगा खट्टापन तुम्हारे भीतर
अपने स्वत्व को
लेने दो सही रूप और आकार
संतरे की तरह/मीसंबी की तरह
रसगुरिया आम की तरह

अप्राप्य हो जाओ अंजीर की तरह
तरबूजे की तरह दिखो
शोषण की झुरसी हुई आंखों को
फूले हुए कटे अनार में बन जाओ
लपलपाते कोयले के रंग की मणि
दाने-दाने में मिठास की खान

फैल जाओ अंगूर की बेल की तरह
बायु के छप्पर पर

सब के साथ उड़ता कीमतों का राकेट
हो जाओ सबके लिए बेर

रोटी की छुरी के लिए

भूमि-आकाश के मध्य
भूत-भविष्य के मध्य
भूख-प्यास के मध्य/यह क्षण
रोटी का एक टुकड़ा
और/हम केवल दो
में इस तरफ/तुम उस तरफ
सारा शरीर आंखें बन
सारी आंखें भूख बन
सारी भूख अंगारे बन/देख रहे हैं

एक दूसरे की ओर
रोटी की ओर
हम दोनों में से/कोई एक
उस रोटी को/लेता है जैसे ही
उससे भी पहले/आहार बन जाते हैं
तुम्हारे लिए हम
अथवा मेरे लिए तुम

इस तरह
तुम्हारी रोटी के लिए मेरा मांस
अथवा
मेरी रोटी के लिए तुम्हारा मांस
हम दोनों के मध्य
यह क्षण
ब्रह्मांड के इस तरफ
आकाश के उस तरफ
रोटी का टुकड़ा
रोटी का सिर्फ एक टुकड़ा.

अभिनन्दन

भूख को भी खाकर भूखा अन्न/दोवाल को
कालो करती सफेदी की पुताई/घोने-पीटने
निचोड़ने पर भी गंदा ही शुद्ध सफेद
कपड़ा/सिलने, कील ठोकने पर भी चिदी-
चिदी होती चप्पलें/अधिकाधिक उसी पर
चलने से रास्ते को भुलाता राजपथ/
तुम्हारी तई यह सब सहज-सरल
तुम्हें बधाइयां ●

साहित्य एकादमी, रवीन्द्र भवन,

३५ फिरोजशाह मार्ग, नयी दिल्ली-१



शास्त्री जी के घर पर मिलनेवालों की भीड़ लगी हुई थी. वे हिमालय की यात्रा से वापस आए थे. गंगोत्री-जमुनोत्री के बारे में जानने के लिए लोग उत्सुक थे.

शास्त्री जी के एक मित्र ने पूछा, "क्या पैदल ही इतनी ऊंचाई पर गए थे?"

शास्त्री जी ने कहा, "नहीं, कुछ दूर पिट्टू ले गए, आगे के तीस किलोमीटर घोड़े की पीठ पर दस हजार फीट की चढ़ाई तक गया. यात्रा बहुत सुखद रही. मैं प्रसन्नता का अनुभव करता रहा."

मित्र ने पूछा,—"घोड़े की दशा कैसी रही?"

शास्त्री जी ने जवाब दिया, "घोड़े ने हिनहिना कर मुझसे कहा—आप घर जाएंगे तो कुछ गद्दे मेरी दशा के बारे में पूछेंगे. उत्तर में मुस्करा दीजिएगा."

"शास्त्री जी!" दूसरे व्यक्ति ने पूछा—"आप यात्राएं बहुत करते हैं. कभी आपने विदेश यात्रा भी की है?"

"हां," शास्त्री जी ने कहा "एक बार जीवन में कामरेड बनकर चीन गया था. उस समय बड़ी मुश्किल से वहां जाने की अनुमति प्राप्त होती थी. वहां मैं एक स्कूल में गया. जानने के लिए कि वहां की शिक्षा-पद्धति कैसी है. दुभाषिये की सहायता से मैंने एक विद्यार्थी से बात की और पूछा, "तुम्हारे पिता का नाम?"

"अद्वितीय माओत्से तुंग!" उसने सीना फुलाकर कहा.

"और तुम्हारी माता का नाम?"

"अद्वितीय चीनी धरती." लड़के ने उसी जोश से उत्तर दिया.

सुनकर मैं मुस्कराया और फिर उससे मैंने पूछा—"बड़े होने पर तुम क्या होना पसन्द करोगे?"

प्रश्न सुनकर वह थोड़ी देर रुका फिर दृढ़ता से उसने जवाब दिया—"जी मैं अनाथ होना पसन्द करूंगा."

दुभाषिये ने कहा—"ये देश-भक्ति का जज्बा है महीदय! आइए किसी रेस्तरां में चाय ग्रहण कीजिए."

पीकिंग के आलीशान जलपान गृह में हम बैठे थे. बगल की टेबुल पर बैठे एक ग्राहक ने बेयरे से भुना हुआ घोड़े का मांस मांगा तो प्लेट में गारागरम टायर का टुकड़ा परोसा गया."



"क्या मैं रबड़ खाऊँ ?" ग्राहक झल्लाया.

"चीखो नहीं कामरेड." बेयरे ने समझाते हुए कहा, "प्रगति जिंदावाद ! अब हम मोटर कार के युग में हैं ! घोड़ा-गाड़ी का जमाना खत्म हो चुका है."

थोड़ी देरी बाद मिलनेवाले चले गए. सिर्फ शास्त्री के पड़ोसो बर्मा जी रह गए.

शास्त्री जी कुछ उलझन में दिखाई पड़े. बर्मा जी ने पूछा, "शास्त्री जी क्या सोच रहे हैं ?"

"क्या बताऊँ बर्मा जी !" शास्त्री जी ने कहा—"मेरी पत्नी एक महीने के लिए मायके गई है."

"तो इसमें अफसोस की बात क्या है ?"

"अफसोस की बात यह है कि आज मायके में उनका आखिरी दिन है कल धाक पड़ेगी."

"होली मुबारक !" बर्मा जी ने हंसकर कहा.



फोन—३५४१८१

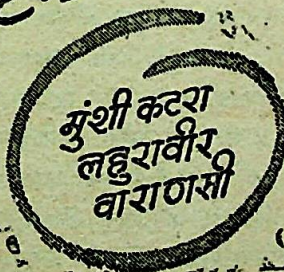
क्या
टुकड़ें

* आकर्षक व्यक्तित्व के लिए

* आकर्षक सिलाई

का

विशेष योग्यता प्राप्त प्रतिष्ठान



कटारवाडी कपड़ा

गोष्ठी प्रसंग

सहस्राब्दी के अंत में हिंदी की स्थिति और अनुवाद साहित्य—

आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य शोध संस्थान, दुर्गाकुंड में आयोजित 'सहस्राब्दी के अंत में हिंदी की स्थिति और अनुवाद साहित्य' विषयक गोष्ठी की अध्यक्षता करते हुए 'कहानीकार' के संपादक डा. कमल गुप्त ने कहा कि अनुवाद साहित्य देश और संस्कृति को जोड़ता है, अनुवाद के द्वारा साहित्य और भाषाएं संपन्न होती हैं, इससे भावात्मक एकता को बल मिलता है क्योंकि भाषाएं समाज का अंतर्गामी सूत्र होती हैं, डा. गुप्त ने कहा कि दक्षिण भारतीय भाषाओं के साहित्यकार हिंदी और अन्य भाषाओं को अनुवाद द्वारा संपन्न कर रहे हैं किंतु ऐसा कार्य हिंदी के लेखकों द्वारा नहीं हो रहा है, हिंदी के साधनदेशिक समर्थन के लिए अनुवाद में पहल करने के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं के सामान्य बोलचाल के शब्दों को रोजमर्रा के प्रयोग में लाने, और उन भाषाओं के साहित्यकारों को पुरस्कृत और सम्मानित करने का कार्य हिंदी के साहित्यकारों और संस्थाओं को करना होगा क्योंकि हिंदी का हित राजनीति से नहीं, साहित्यनीति से ही संभव है, हिंदी की सर्वव्यापकता के लिए यह भी जरूरी है कि हम 'हिंदी दिवस' के स्थान पर 'राष्ट्र भाषा दिवस' का आयोजन किया करें, डा. गुप्त ने कहा कि राजनीतिक उदासीनता के कारण ही आज सहस्राब्दी के अंत तक भी हिंदी पूरे हिंदुस्तान में राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित न हो सकी और हिंदी बहुभाषी राष्ट्र मारीशस में भी फ्रांसीसी भाषा के व्यापक राजनीतिक प्रोत्साहन के आगे संकुचित हो रही है, सारा देश कभी हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहता था किंतु आज वह वोट के राजनीतिक कुचक्र का शिकार हो गई है, इस पड्यंत्र के खिलाफ हिंदी सेवियों और हिंदी सेवी संस्थाओं को आगे आना होगा,

गोष्ठी के मुख्य अतिथि गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद की हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो० मालती दूवे ने अपने स्वागत के प्रति आभार प्रकट करते हुए कहा कि गुजरात में प्रशासनिक कार्यों में हिंदी बहुतायत से प्रचलित है, उच्च शिक्षा संस्थाओं में हिंदी की उच्च शिक्षा और उसमें शोधकार्य संपन्न हो रहे हैं, उन्होंने कहा कि गुजरात में 'हिंदी साहित्य परिषद' उस दिशा में अग्रणी है, सरकारी संस्था हिंदी एकादमी भी साहित्यिक आयोजन और हिंदी की पत्रिकाओं का प्रकाशन करती है, राजभाषा समितियां भी वहां की जनता की अभिरुचि और लोकप्रियता की परिचायक हैं किंतु



सरकार की ओर से अपेक्षित प्रोत्साहन और सहयोग का विशेष अभाव है जिसे दूर करना आवश्यक है. प्रो. दूबे ने कहा कि राजनीतिक कारणों से गुजराती भाषी हिंदी से दूर हो रहे हैं. अनुवाद का कार्य अपेक्षाकृत कम हो रहा है, यह चिंता का विषय है.

आचार्य शुक्ल संस्थान के अध्यक्ष प्रो. श्याम सुंदर शुक्ल ने कहा कि गुजरात में छठवें और सातवें दशक में उनके हिंदी अध्यापन के दौरान लोगों में हिंदी के प्रति अत्यधिक लगाव था किंतु बाद में 'हमारी गुजराती' और 'हमारी मराठी' के आंदोलन के कारण हिंदी के प्रसार-प्रचार को घटका लगा. हिंदी की अनिवार्य स्थिति समाप्त हो गई और हिंदी संकुचन होने लगी.

आचार्य शुक्ल संस्थान की मंत्री एवं साहित्यकार श्रीमती कुसुम चतुर्वेदी ने कहा कि हिंदी के विकास में हिंदीतर राज्यों का अत्यधिक योगदान रहा है जिसमें गुजरात का विशेष स्थान है. प्रेमचंद, प्रसाद, अमृत लाल नागर, भीष्म साहनी आदि शीर्ष रचनाकारों के उन्म्याओं का बहुतायत से अनुवाद हुआ है किंतु गुजराती पर अन्य भाषाओं में समालोचना साहित्य का अनुवाद नहीं हुआ है, यह कमी खटकती है.

शुक्ल संस्थान की मह-निदेशक एवं कवि-कथाकार डा० मुक्ता ने कहा कि साहित्यिक अनुवाद सांस्कृतिक आदान-प्रदान में सहायक होता है. अपनी अनेकानेक कहानियों और कविताओं के विभिन्न भाषाओं में हुए अनुवाद की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि विविध संस्कृतियों के लोगों को अनुवाद साहित्य के द्वारा एक-दूसरे को समझने में आसानी होती है किंतु इस बात पर उन्होंने अफसोस व्यक्त किया कि अनुवाद परिपक्व दिल्ली द्वारा पुरस्कृत एवं विभिन्न संस्थाओं द्वारा सम्मानित गुजराती एवं अंग्रेजी की प्रख्यात अनुवादिका श्रीमती सरला जगमोहन के निधन पर साहित्यिक पत्रिकाएं खामोश रह गईं. डा० मुक्ता ने अनुवादिका सरला जगमोहन की स्मृति में अपनी कविता 'अनुवादिका' की दो पंक्तियां उद्धृत कीं—'जीवन के अनुवाद वे दूसरी भाषा में कर रही होंगी. दो भाषाओं और दो नदियों के बीच बँटा रहा उनका जीवन.

मेजर ओंकार नाथ द्विवेदी ने कहा कि भाषा एक दूसरे को जोड़ने का प्रथम माध्यम है. आज भी भारतीय फाज में प्रचलित मुख्य भाषा का नाम हिंदुस्तानी है. विभिन्न प्रदेशों के फीजियों के बीच एक राष्ट्रीय संबेदना की जो भाषा है, वह हिंदी ही है.

गुजरात से आई हिंदी सेवी प्रो० मालती दूबे का स्वागत करते हुए डा० मोहन लाल तिवारी ने कहा कि हिंदी के विकास में नरसी मेहता, बल्लभाचार्य, दशानंद सरस्वती, महात्मा गांधी, के एम. मुंशी प्रभृति महात्माओं और साहित्यकारों का विशेष योगदान रहा है. संचालन डा० मोहन लाल तिवारी और धन्यवाद ज्ञापन पूर्व जिला जज श्री ज्ञानदत्त चतुर्वेदी ने किया ०

प्रस्तुति—राजेंद्र चौधरी

खबर (मि) ली है

● खबरदार

यह खबर नहीं, सच्चाई है कि जब 'वाटर' फिल्म की शूटिंग हो रही थी तो शबाना आज़मी ने उसी दिन बाल मुड़वाया जिस दिन आजमगढ़ में दंगे शुरू हो गए थे। किसी बदमाश ने यह भी उड़ा दिया कि विरोधियों ने शबाना के बाल काट दिए। प्रशासन चुस्त था और बनारस की जनता दुरुस्त थी वरना बवाल का रूप कुछ दूसरा ही होता। आजमगढ़ की बेटी—'कैफ़ी' साहब की पुत्री, कलाकार, राज्यसभा सदस्य और मुसलमान। अस्सी पंडितों का मुहल्ला। भगवान शंकर जी और चंदन शहीद की दुआ कि गंगा जल को 'वाटर' कहनेवाले विदेशी मानसिकता के निर्माताओं की चाल नहीं पाई। वैसे यह सच है कि वे प्रचार ज़ाहते थे, न कि दुष्प्रचार पर किस्मत देखिए कि बिना पैसे के करोड़ों की मीडिया और अखबारों पब्लिसिटी अपनी झोली में बटोर ले गईं। खबरदार की ओर से दीपा मेहता को बग़ाई में बनारसी गोलगप्पे और अगर ये खबरें गप्प नहीं हैं तो ये गप्पें भी उन्हें ही मुबारक।

● वाटर फिल्म के पदों के पीछे से जो खबर पलेश बैंक होते खाकसार ने सुनी है वह यह कि अब यह फिल्म नोट का, वोट का और कामरेड के कोट का त्रिकोण बन गई है—दीपा मेहता के लिए नोट का, अशोक सिंहल के लिए वोट का और हरकिशन सिंह सुरजीत के लिए 'कामरेड के कोट' का। इस बिजनेस त्रिकोण में चौथा कोण भी जुड़ गया है, बनारस के अखाड़ों का अर्थात् नोट, वोट, कोट के बाद लंगोट भी।

● बेखबर को यह खबर दी गई कि 'वाटर' फिल्म के विरोध का सेहरा अशोक सिंहल ने यूँही ले लिया। उनकी समर्थक सरकार ने तो हरी झंडी दिखा दी थी फिर भी काली टोपी ने इसे रोक दिया, दूसरी ओर यह दलितों और पिछड़ों का 'रामहल्ला' बना कि हम अठारह सौ साठ ईस्वी के किसी बंगाली रिवाज के कारण हिंदुओं को वर्ण-सवर्ण के बोच नहीं बाँटने देंगे। यह इसलिए कि 'विधवाएं' तो प्रायः ब्राह्मणों एवं ऊँची जातियों में होती थीं। 'वाटर' के पीछे जनवादी से ज्यादा कोई बहुजनवादी संगठन है, इससे बचने के लिए ही सत्ता-विरोधी ताकतों ने और जाति-विरोधी संगठनों ने 'वाटर' का विरोध किया। इसके लिए खास तरह से 'यादव' और 'दलित नेताओं' का गठजोड़ हुआ तोड़ के लिए और फोड़ के लिए भी।

● बनारस में 'वाटर' के विरोध का कारण यह भी कहा जा रहा है कि वाटर फिल्म की पटकथा में खलनायक का नाम बनारस से संबंधित एक राजकुल के संस्थापक का नाम है। इसे कहते हैं आसमान पर थूकना। जब 'जवाहर छाप बीड़ी' और 'कबीर छाप



जहाँ बिक सकता है और 'वाटर छाप' ठंडई और सुर्ती का बनारस में 'मार्केट' बन सकता है तो नाम के मामले में बनारस इतना संकीर्ण क्यों होगा. 'वाटर' के विरोधियों को सबसे पहले लज्जा गौरी का दर्शन करना चाहिए. बनारस में ही उनका एक मंदिर प्रहलाद घाट के पास है, एक रामनगर में. हम तो काली को भी देवी मानते हैं और गौरी को भी देवी मानते हैं. काले-गोरे का झगड़ा तो कनाडा में है, जहाँ रहकर दीपा मेहता ने काले चमड़े पर गोरा चमड़ा चढ़वा लिया है. कुछ लोगों का कहना है कि भारत की पोल बेचकर अपनी खोल और खाल को मजबूत करने का उनका पुस्ता इरादा है.

● बनारस से सद्यःस्नाता की तरह की एक पत्रिका में कथाकार काशीनाथ सिंह पर एक संस्मरण एक दूसरे सिंह ने लिखकर पोल की ढोल पीटी. इसकी प्रतिक्रिया में वामनाथी नामक किसी ~~किसी~~ राज ने संस्मरणकार के अकेलेपन और दुहरे चरित्र पर 'ज्ञानगढ़ की लड़ाई' नामक एक वृत्तान्त लिखकर जंगलराज के दो राजाओं की शौर्यगाथा के गुब्बारे में पतली सूई भोंक दी—ताकि छेद दिखाई भी न पड़े और गुब्बारों की हवा भी निकल जाए और दोनों में उखाड़-पछाड़-दहाड़ भी शुरू हो जाए.

● ताजा खबर है कि ग्वालियर में कुछ ग्वाल प्रगतिशील साहित्यकारों ने काशीनाथ सिंह का 'लेखन-स्वीकार' किया. क्यों न हो—होली का मौसम, ग्वालों का मजेदार त्योहार और जहाँ राजेंद्र यादव और पुन्नी सिंह यादव जैसे साहित्यकार हों वहाँ यह फाल्गुनी स्वीकार बाज्रब है. अतिथि वक्ता के रूप में निश्चित तिथि को नामवर जो पधारे और उन्होंने फामाया कि जो मैं नहीं कर सका वह काशी ने कर दिया. अब पछताए होत क्या जब चिड़ियां चुग गईं खेत. बनारस भी नहीं मिला और बांवरे पंछी भी उड़ गए. इसी को कहते हैं 'नहीं हाथ मुद मोदक मोरे.'

● हां, मुखबिर ने खबर दी है कि 'वाटर' फिल्म की शूटिंग के लिए हरिकिशन सिंह सुरजीत ने प्रगतिशीलता के नाम पर सी. पी. एम. की सरकार को निर्देश दिया है कि फिल्म की शूटिंग का न्योता पश्चिमी बंगाल की ओर से दिया जाए. मुख्य मंत्री ज्योति बसु ग्राह्यण नहीं हैं और विघ्ना समस्या ग्राह्यणों से संबंधित है इसलिए उन्होंने अपने उप मुख्य मंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य को निर्देश दिया है कि वे दीपा मेहता को निर्मंत्रण भेजें. इसी को कहते हैं. चाणक्य राजनीति अगर फिल्म बन गई तो बुद्धदेव भट्टाचार्य के पांव तले से बिरादरी की जमीन खिसक जाएगी और नहीं बनी तो ये बात तय हो जाएगी कि सी. पी. एम. की पोल और पोलिंग में केवल आमार सोनार बांगला ही नहीं, जातिवाद भी अपनी जड़ें जमाए हुए है. ज्योति बसु की चित्त भी, पट भी और बुद्धदेव भट्टाचार्य की पिटापिट नहीं तो उठापटक तो होगी ही.

● मुजफ्फरपुर की 'अविद्या', दिल्ली की 'समकालीन साहित्य' और नयी दिल्ली की

‘बहुवचन’, भीपाल की ‘बसुधा’ और नेपाल की ‘मनीषा’ को अगली शताब्दी के द्वार पर दस्तक देने के लिए बधाइयाँ, ‘मनीषा’ को इसलिए कि वे सचित्र और सुचित्र भी हैं।

● खबर है कि डा० नाहीद नामक कवयित्री ने स्त्री-जाति खास तरह से स्त्री-जाति के बंधनों पर खूब कविनाएं लिखी हैं। उन्होंने तसलीमा नसरीन को भी याद किया है। इसलिए कुछ कठमुल्लों/हिंदुओं ने डा० नाहीद का विरोध शुरू कर दिया है। उनका कहना है कि कोई तसलीमा-वसलीमा बनारस में नहीं चलेगी।

● यह बात उड़ाई गई है कि दिल्ली के बाद अब बनारस में इन दिनों स्त्री लेखन का वर्चस्व है डा० रश्मि कुमार, प्रतिमा वर्मा, डा. मुक्ता, डा० नीरजा माधव और डा० कौशल्या गुप्त के लेखन ने बनारस को नये सिरे से प्रतिष्ठित कर दिया है। इलाहाबाद में ‘ममता कालिया’ अकेली हैं। लखनऊ में ‘कात्यायनी’ भी अकेली है, और तोएडा में मैत्रेयी पुष्पा भी अकेली हैं। दिल्ली में इस खबर से खलबली के बीच खलबली है और संपादक बताव है।

● बी० पी० सिंह जब से राजनीति में लीटे हैं, तब से डा० कर्ण सिंह ने तेवर बदल लिया है। डा० कर्ण सिंह जानते हैं कि बी० पी० सिंह न संस्कृत जानते हैं न व्याख्यान कला में ही वे निपुण हैं। इसलिए बी. पी. सिंह कविताओं के एक ऐसे संकलन का संपादन कर रहे हैं जिसका उद्घाटन चंद्रशेखर करेंगे और इस उद्घाटन में मुख्य वक्ता अजुन सिंह होंगे तथा धन्यवाद ज्ञापन दिग्विजय सिंह करेंगे। इस खबर से सबसे व्याकुल मुलायम सिंह यादव हैं और वे लालू यादव से तो नहीं लेकिन विद्वान एवं वयोवृद्ध नेता श्री चंद्रजीत यादव से संपर्क कर रहे हैं। उनको पता नहीं कि राज-नेताओं में अच्छी कविताएं श्रीमती मीरा कुमार भी लिखती हैं। अटल जी, जोशी जी की पुत्री, मोरा कुमार और गिरिजा व्यास सभी एक दूसरे होड़ लेते हैं।

बहरहाल, कविता और नेतृत्व को लेकर प्रधानमंत्री बनने की मुहिम जारी है। लोगों का कहना है कि सोनिया जी कविताएं नहीं लिखती इसलिए संविधान परिवर्तन में वे इस प्रस्ताव का समर्थन करेंगी कि भव्य में किसी कवि को प्रधानमंत्री नहीं होना चाहिए क्योंकि प्रधानमंत्री का पद और कवि का कद गुणात्मक रूप से छत्तीस का होता है - एक पेंचीदा तो दूसरा सीधा। खाकसार का कहना है कि ये बातें सच हैं क्योंकि पं० नेहरू के प्रधानमंत्री बनने पर जार्ज बर्नाड शा ने प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा था— ये अच्छा है कि बैरिस्टर मोती लाल नेहरू के बेटे प्रधानमंत्री हो गए हैं, यह भी अच्छा है कि महात्मा गांधी के योग्य अनुयायी प्रधानमंत्री हो गए हैं, यह और भी अच्छा है कि जवाहर लाल नेहरू प्रधानमंत्री हो गए हैं पर यह अच्छा नहीं है कि एक कविमत्ता व्यक्ति प्रधानमंत्री हो गया है ■

सहस्राब्दी पर शताब्दिक आकलन



काशी ने हिंदी को नया क्षितिज और

नयी ऊंचाई दी

—डा. विश्वनाथ प्रसाद

काशी निरंतर हिंदी साहित्य के केंद्र में रही है। यहां की जीवनदृष्टि, चिंतन-धारा, सौंदर्यबोध और भाषा के स्वरूप से हिंदी काव्य निरंतर प्रभावित होता रहा है। रैदास, कबीर, तुलसी, भारतेन्दु, प्रेमचंद, प्रसाद, और रामचंद्र शुक्ल का साहित्य हिंदी का आधार है। आज भी डा. नामवर सिंह और डा. विद्यानिवास के बिना हिंदी का बात पूरी नहीं होती। काशी से ही प्रश्न उठे और काशी ने ही उसका उत्तर दिया। लोक और शास्त्र, मौलिकता और पारंपरिकता यानी सृजन और अनुसरण दोनों की जड़ें काशी में हैं। कबीर ने शास्त्रों को इनकार किया तो तुलसी ने उन्हीं के बीच से रास्ता निकाला। भारतेन्दु ने आधुनिकता का सूत्रपात किया तो रत्नाकर ने मध्यकालीन काव्य-प्रवृत्ति का चरम सौंदर्य उद्घाटित किया। प्रसाद ने सौंदर्य के सूक्ष्म रूप और सांस्कृतिक समरसता की तलाश की तो रामचंद्र शुक्ल ने भाव, दशा और लोकमंगल की प्रतिष्ठा की। आज भी डा. नामवर सिंह का जनपक्ष और डा. विद्यानिवास मिश्र की जिजीविषा, समर्पण और लोक संदर्भ हिंदी की चर्चा के केंद्र में हैं। आज लोग दिल्ली में हिंदी साहित्य की तलाश करते हैं, लेकिन काशी ने जिसे स्वीकार कर लिया वह हिंदी का सिरमौर बन गया।

काशी की दृष्टि जनोन्मुखी रही है। कम से कम हिंदी का रचनाकार अंध-परंपरा, रुढ़ि और शास्त्र की चपेट से बचता रहा है। कबीर हाथ में लुकाठी लेकर खड़े थे, घर यानी हर तरह की हदबंदियों को तोड़कर वे एक इंसान का रास्ता बनाना चाहते थे। तुलसीदास केवल राम का नाता मानते थे। कोई किसी वर्ण या जाति का हो, राम को प्रिय है तो तुलसी को प्रिय है। रैदास का भी लक्ष्य गोविंद या राम की

१७४

'भाव भगति' है। रैदास, कबीर और तुलसी सद्कर्म पर जोर देते हैं। इन भक्तों का राम जनता के निर्मल चित्र और निर्मल कर्म में निवास करता है। यह निर्मलता है-श्रम की निर्मलता। कपड़ा धुनने, जूता सीने और राम नाम जपने में मन की निर्मलता होनी चाहिए। इसी से समर्पण का भाव जगता है और यह समर्पण भाव भगति का एक सोपान है। प्रसाद की समरसता में भी मन की यही निर्मलता है। चोट खाई हुई संवेदना मन को विकल कर देती है। जब चित्त में समरसता हो जाती है तो जीवन में विषमता कहीं रह ही नहीं जाती। भारतेन्दु ने अपने नाटकों और निबंधों में जिस तरह से जनपक्ष को रखा, वही आधुनिकता का सूत्रपात करनेवाला बन गया। प्रेमचंद की लोक-दृष्टि में मध्यवर्ग और सामान्य जन दोनों की समस्याएं हैं। प्रेमचंद ने हिंदी में पहली बार दलितों और शोषितों का पीड़ा को केंद्र में रखा है। डा. शिवप्रसाद के कथा-साहित्य में प्रगतिवादियों द्वारा भी भुला दिए गए उस जन के शोषण और उत्पीड़न को दिखाया गया है जो ठहरी हुई सामंतवादी व्यवस्था के दमन के शिकार है। घूमिल ने गांव के आम आदमी को नयी कविता के केंद्र में रखा है। नामवर सिंह ने द्वंद्वों और समस्याओं के अंतर्विरोधों से हटकर उनके समाधान को खोजने को कोशिश की है। रामचंद्र शुक्ल की समीक्षा में लोकमंगल और हजारी प्रसाद द्विवेदी की समाज शास्त्रीय समीक्षा पद्धति तथा मानवतावादी दृष्टि का भी यही लोकपक्ष है। प्रखर समीक्षक डा. शुक्रदेव सिंह ने लुप्त, सुप्त और उपेक्षित प्रतिभाओं को खोजकर उन्हें सही जमीन पर स्थापित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

काशी के हिंदी साहित्य सेवियों की दृष्टि प्रायः समग्र दृष्टि है। कबीर ने अपने समय के पूरे समाज की विसंगतियों पर चोट की है। वे हिंदू-मुसलमान, जाति और कुल से ऊपर उठकर एक समग्र मानव का निर्माण करना चाहते हैं। तुलसीदास ने समूचे भारतीय चित्तन के बीच से एक समग्र दृष्टि निकाली है। इस समग्रता की झलक भारतेन्दु, प्रेमचंद और रामचंद्र शुक्ल में भी मिलती है। एकांगी होकर सोचनेवाला रचनाकार काशी की संपूर्ण अस्मिता को व्यक्त ही नहीं कर पाता है। वादों और विवादों के कारण वह चाहे जितना चर्चित हो जाए, लेकिन उसका साहित्य एकांगिता के कारण काल की छोटी-सी सीमा में बंधकर रह जाता है। नामवर सिंह का साहित्य चर्चित होकर भी एक पक्षीय और अस्थायी है। इसी समग्र दृष्टि के कारण तुलसीदास, भारतेन्दु, प्रेमचंद और प्रसाद में भावों के साथ विचारों का गहन संतुलन है। कबीर में विचार कुछ प्रबल हो गए हैं तो रत्नाकर में भाव प्रबल हो गया है और विचार दब गए हैं। अपनी संतुलित समग्र दृष्टि के कारण तुलसीदास विश्व के श्रेष्ठतम कवियों में गिने जाते हैं। प्रेमचंद और प्रसाद भी विश्व के श्रेष्ठ रचनाकारों में से एक हैं।



काशी के महान साहित्यकारों में कबीरदास और प्रेमचंद ने

जीवन के यथार्थ को निकट से देखा था। भाव से अधिक इनमें यथार्थबोध है। कबीर में आक्रोश, प्रेम और शांतचित्त की स्थिरता भी है। कबीर का साहित्य यथार्थ बोध, विचारों की प्रखरता और संवेदनाओं के उद्वेलन के कारण भी आकृष्ट करता है। प्रेमचंद में यथार्थ का गहन विश्लेषण, समस्याओं की ठीक पकड़, मनोदशाओं की सही पहचान, चरित्रों की गहरी परख और शोषकों की सही पहचान है। जीवन की हर दशा से गुजरते हुए उनके विचार मन को गहराई से छूते हैं। तुलसीदास ने अपने युग के सांस्कृतिक संकट को व्यक्त करने के लिए जिस मिथक को लिया वह जनता के बीच बहुत पहले से रमा हुआ था। भारतेंदु के समय का समाज उनके गद्य में है। मध्यकाल की क्षयी प्रवृत्तियोंवाले समाज में जन्म लेकर भी भारतेंदु ने अपने विवेक से एक नया समाज बनाना चाहा था। उनके स्वदेशी वस्त्र और मातृभाषा से संबंधित विचार उन्हें पुनर्जागरण का प्रतीक बना देते हैं। भारतेंदु का आधुनिकता बोध और भाषा नीति काशी के परिवेश में ही विकसित हुई थी। कबीर, तुलसी, भारतेंदु और प्रेमचंद ने समूचे हिंदी साहित्य को नयी दिशा दी है। इनके व्यक्तित्व, साहित्य और विचार काशी में ही विकसित हुए थे। भाषा के मामले में भी काशी बेजोड़ है। कबीर की भाषा का प्रतिस्पर्धी कोई नहीं। तुलसी की अवधी प्रतिनिधि अवधी है। भारतेंदु की खड़ी बोली को ही सबने स्वीकार किया और प्रसाद की भाषा का सौंदर्य अन्यत्र दुर्लभ है।

साहित्य में काशी का सौंदर्यबोध भी अद्वितीय है। शरीर नहीं बल्कि आत्मा और मन के सौंदर्य का वह कायल है। चाहे तुलसीदास हों या जयशंकर प्रसाद दोनों के सौंदर्यबोध में मन और आत्मा के रंग अधिक गहरे हैं। प्रसाद का सौंदर्यबोध मुझे तो कालिदास से भी अधिक संयत और मानसिक जटिलताओं को उभारनेवाला दिखाई पड़ता है। यहां की गंगा, यहां के तट, यहां के देवालय और यहां का प्राचीन गौरव भी यहां के रचनाकारों को प्रेरित करते हैं। प्रसाद के साहित्य में काशी का समूचा स्वरूप किसी-न-किसी रूप में प्रतिबिंबित होता है। यहां के रचनाकार अपने मन के राजा रहे हैं। वे दरबारी नहीं बन पाए। हिंदी की कविता दरबारी-राग हो गई थी। देह के बखान में लिखी जानेवाली कविताओं में लोगों की रुझान नहीं थी। रीतिकाल में न तो यहां रहकर लिखनेवाला बड़ा कवि हुआ और न यहां से जाकर कहीं राज्याश्रय में रचना करनेवाले किसी बड़े कवि की चर्चा सुनाई पड़ती है। रीतिकालीन मानसिकता से काशी का मेल नहीं बैठ पाता है। शास्त्रवाद की संकीर्णता और कला के रुढ़ मानदंडों में यहां के रचनाकार का विश्वास नहीं है। हिंदी साहित्य के रीतिकाल का समय काशी में साहित्यिक ठहराव का समय है।

काशी राज्य की स्थापना के बाद कुछ कवियों को राज्यश्रय की प्राप्ति हुई। बाबू देवकीनंदन का परिवार भी साहित्य का पोषक था। काशी में नायिका भेद, अलंकार शास्त्र, नख-शिख, पिंगल, चित्रकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक काव्य, कोश, टीका, अनुवाद आदि के ग्रंथों की रचना हुई। इन कवियों में रघुनाथ बंदीजन, कृष्णलाल, घनश्याम, लाल कवि, गुलाब कवि, ऋषिनाथ, ठाकुर, घनोराम, सेवक, गोकुलनाथ, गोपीनाथ, मनियार सिंह, सुखचाल कायस्थ, रामसहाय आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें लाल कवि के पुत्र गुलाब कवि थे और गुलाब के पुत्र गणेश प्रसाद थे। दरबार से अलग रत्नकुमारी और गजराज उपाध्याय जैसे रचनाकार थे।

भारतेंदु काल में काशी नगरी संपूर्ण हिंदी साहित्य का प्रेरणास्रोत थी। भारतेंदु जी की भक्ति और शृंगार कविता से सभी प्रभावित थे। गद्य के क्षेत्र में शिव प्रसाद सितारे हिंद और राजा लक्ष्मण सिंह के बीच भाषा के स्वरूप पर विवाद हो चुका था। भारतेंदु ने जिस प्रकार की हिंदी का प्रयोग किया, वही सबको मान्य हो गई। प्रेमधन प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट जैसे रचनाकार बाहर के होकर भी काशी से हो जुड़े हुए थे। इसी समय दोनदयाल गिरि, काष्ठ जिह्वा स्वामी, गिरधरदास, परमानंद भट्ट आदि पुरानी परिपाटी के रचनाकार भी सक्रिय थे। गिरधर दास ने अलंकार ग्रंथ की रचना की है। सरदार कवि और वंशीधर कवि ने भी साहित्यशास्त्र के ग्रंथों की रचना की। ठाकुर जगमोहन सिंह ने पिंगलशास्त्र के ग्रंथ को लिखा। भारतेंदु के बाद किशोरी लाल गोस्वामी ने कथा के क्षेत्र में, सुवाकर द्विवेदी ने टीका और संपादन के क्षेत्र में तथा राधाकृष्ण दास ने संपादक के रूप में महत्वपूर्ण कार्य किया। भारतेंदु के समय में समस्यापूर्ति शुरू हो गई थी। 'काशी कवि समाज' में जो समस्या पूर्तियां होती थीं, उनका समस्यापूर्ति नाम से कई खंडों में प्रकाशन हुआ। इसी समय काशिका बोली के चर्चित रचनाकार तेग अली हुए थे। 'जानकी मंगल' के रचनाकार शीतला प्रसाद त्रिपाठी भी इसी समय हुए। रामकृष्ण वर्मा प्राचीन साहित्य के मर्मज्ञ थे। मन्ना लाल द्विज भारतेंदु के दरबारी थे। भारतेंदु काल में माधवी, मल्लिका और हुस्ना नाम की तीन कवयित्रियां भी थीं।

भारतेंदु के बाद होनेवाले काशी के तीन साहित्यकार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। बाबू देवकीनंदन खत्री ने तिलस्मी उपन्यासों को लिखकर हिन्दी के उपन्यास शिल्प को सुगठित किया। 'चंद्रकांता संतति' और 'भूतनाथ' आज भी लोकप्रिय हैं। बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर का 'हरिश्चंद्र', 'गंगावतरण' और 'उद्धवशतक' हिंदी की श्रेष्ठ रचनाएं हैं। भ्रमरगीत परंपरा की अंतिम रचना 'उद्धवशतक' खंडन-मंडन की भावात्मक प्रवृत्ति, अनुभावों की चित्रात्मक योजना और भाषा के बलात्मक स्वरूप के



कारण निरंतर स्मरण किया जाएगा. लाला भगवानदीन कवि और टीकाकार थे. इन्होंने सूर, तुलसी और दीनदयाल गिरि पर आलोचनाएं लिखीं, लेकिन इनका विशेष महत्व 'राम चंद्रिका' की टीका के कारण है.

काशी में न तो आदिकालीन साहित्य का विकास हुआ और न रीतिकालीन साहित्य का. न यहां दरबार था और न दरबारी मानसिकता के लोग थे. काशी में भक्तिकाल के तीन शीर्षस्थ कवि हुए—रंदास, कबीर और तुलसीदास. इस गरिमा का आधुनिक काल में फिर उदय हुआ. कविता, कथा, समीक्षा, नाटक, निबंध आदि सभी क्षेत्रों में काशी के साहित्य का उत्थान हुआ. प्रेमचंद और प्रसाद की साहित्यिक मान्यताओं में अंतर था. यही अंतर संपूर्ण हिंदी साहित्य का प्रवृत्तिमूलक अंतर बन गया. प्रसाद की दृष्टि स्वछंदतावादी थी, प्रेमचंद की यथार्थपरक थी. प्रसाद जो सौंदर्य-बोध के कवि थे और प्रेमचंद में जीवनानुभव की सहजता थी. प्रसाद ने सौंदर्य और प्रेम की खोज की है, प्रेमचंद ने जीवन की समस्याओं का निरूपण किया है. प्रसाद और प्रेमचंद की तरह बाबू श्यामसुंदर दास तथा रामचंद्र शुक्ल में भी अंतर है. श्यामसुंदर दास संगठक और अध्यापक होने के बाद समीक्षक थे. शुक्ल जी पहले समीक्षक और चिंतक थे, उसके बाद और कुछ थे. श्यामसुंदर दास केवल वस्तुनिष्ठ समीक्षक थे. शुक्ल जी की समीक्षा में परिवेश, मनोविज्ञान और रस के निरूपण की प्रवृत्ति है. वे निबंधकार और इतिहासकार भी हैं. श्यामसुंदर दास अध्यापकीय शैली से ग्रस्त हैं और रामचंद्र शुक्ल युग की प्रवृत्तियों के साथ कवि की विशेषताओं का भी विश्लेषण करते हैं. फिर भी प्रेमचंद, प्रसाद, श्यामसुंदर दास और रामचंद्र शुक्ल काशी में न होते तो शतप्रतिशत वैसे न दिखाई पड़ते जैसा आज उन्हें हम देखते हैं.

प्रेमचंद युग के कथाकारों में विनोद शंकर व्यास और शिवरानी जी का नाम खल्लेखनीय है. विनोद शंकर व्यास की कहानियों के विषय तो प्रसाद जी के होते थे, लेकिन शैली अपनी थी. शिवरानी जी ने 'प्रेमचंद घर में' नामक प्रेमचंद की जीवनी लिखी थी. राय कृष्ण दास ने कल्पनापरक कहानियों तथा परम प्रिय की प्रेमानुभूतियों से संबंधित विविध चित्रों को उभारनेवाले गद्यगीतों की रचना की है. पं. भदनमोहन मालवीय ने हिंदी के विकास के लिए बहुत कार्य किया. रामनारायण मिश्र, श्यामसुंदर दास तथा शिवकुमार सिंह ने मिलकर सं. १९५० में नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना की थी. डा० संपूर्णानंद 'चिद्विलास' तथा 'समाजवाद' जैसी गद्य रचनाओं के लिए प्रसिद्ध हैं. गंभीर विषयों के विवेचन में आपकी विश्लेषणात्मक शैली सक्षम है. बाबूराव बिष्णु पराङ्कर ने अपनी संपादकीय टिप्पणियों से पत्र-

कारिता का एक मापदंड स्थापित किया। उन्होंने हिंदी को अनेक नये शब्द दिए।

काशी के जीवन की एक बहुत बड़ी विशेषता है खुलापन। इस खुलेपन के कारण बनारस के जीवन में मौज और मस्ती है। इन विशेषताओं को लेकर पहले काशी में हास्य और व्यंग्य के तीन तिलंगे पैदा हुए—पांडेय बेचन शर्मा उग्र, अन्नपूर्णानंद और बेदब बनारसी। उग्र जी की गुदगुदी और चुटौली भाषा काशीवासियों को निरंतर याद रहेगी। अन्नपूर्णानंद की कहानियां तथा 'महाकवि चच्चा' हिंदी के हास्य की निधि हैं। उनके कहानी संग्रहों के नाम हैं—मगन रहू चोला, मंगल मोद, मेरी हजामत, मनमयूर। बेदब ने कविता, कहानी, नाटक, निबंध आदि सब हास्य और व्यंग्य में लिखा। लफटट पिगसन की डायरी, जब मैं मर गया था, गांधी जी का भूत, बेदब की बानी, बिजली आदि आपकी रचनाएं हैं। तीन तिलंगों के बाद काशी में हास्य के पंच महाभूत हुए—बेदब, भैयाजी बनारसी, कांतानाथ पांडेय चौंच, रुद्र काशिकेय, बेधड़क बनारसी। बड़े गुरु की हास्य एचनाएं भी स्मरणीय हैं। भैयाजी बनारसी पत्रकार पहले, फिर कवि, कथाकार और निबंधकार थे। मखमली जूती, चिरकुमारी समा, दो काली-काली आंखें, बनारसी रईस आदि आपकी चर्चित रचनाएं हैं। चौंच जी ने 'हुंस' उपनाम से गंभीर रचनाएं भी लिखी हैं। बेधड़क के हास्य में मौलिकता है। आपके दो काव्य संग्रह हैं—सुंदर और असुंदर, आधा इधर आधा उधर। रुद्र काशिकेय ने काशिका में हास्य की कविताएं लिखी हैं। हास्य-व्यंग्य के इन कवियों के बाद चकाचक बनारसी ने काशिका में हास्य और व्यंग्य को बहुत ऊंचाई दी। आम आदमी के संघर्ष और पीड़ा को मुहावरेदार भाषा में कहने की उन्हें महारथ हासिल थी। डा. श्याम तिवारी ने मुहावरेदार और नाद व्यंजनावाले शब्दों के माध्यम से अपने युग के अंतर्विरोध को हास्यरस में कहा है। सांड़ बनारसी, घर्मशील चतुर्वेदी, घूत बनारसी, अजीत श्रीवास्तव, कमल नयन मधुकर, चकाधक बनारसी, झगड़ू, भइया आदि अन्य हास्य व्यंग्य के रचनाकार हैं। कमलनयन मधुकर में युग की विसंगतियों पर चोट करने की ताकत है। चकाचौंघ ज्ञानपुरी ने हास्य व्यंग्य में अपनी अच्छी स्थिति बनाई है।

प्रसाद जी के बाद के कवियों और गीतकारों में डा. शंभुनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, त्रिलोचन शास्त्री, केदारनाथ सिंह, सुदामा पांडेय 'धूमिल', श्रीकृष्ण तिवारी, बुद्धिनाथ मिश्र, प्रवासी जी, सुरेंद्र कुमार श्रीवास्तव, देवनाथ पांडेय रसाल, गणेश प्रसाद सिंह मानव, वशिष्ठमुनि भोष्ठा, डा. विश्वनाथ प्रसाद, डा. देवी प्रसाद कुंदर डा. अशोक सिंह, सुरेंद्र कुमार राजपेयी, भूषण त्यागी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। शंभुनाथ सिंह के गीतों में सौंदर्य, युग चेतना, विसंगतियां और सांस्कृतिक संक्रमण



की पीड़ा है। ठाकुर प्रसाद सिंह के गीतों में आंचलिक सौंदर्य, संघालों के समाज की आभा, नये प्रतीकात्मक बिंबों की गतिशीलता और नाद व्यंजन से भरे शब्दों का संगीत है। डा. केदारनाथ सिंह पहले स्वच्छंदतावाद और बिंबवाद से प्रभावित थे, फिर युग का बोध और समाज की पीड़ा उनकी कविताओं में प्रधान हो गई। घूमिल नयी कविता के चर्चित रचनाकार हैं। उन्होंने गांधी के आम आदमी को कविता के केंद्र में रखकर उसकी गथा और समाज की विसंगतियों को अपनी कविता में रखा है। श्रीकृष्ण तिवारी सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक संक्रमण को बहुत मधुरता से कहते हैं। डा. बुद्धिनाथ मिश्र में सौंदर्य, प्रेम और नारी देह का उत्साह है। सांस्कृतिक बोध भी इनके गीतों में है। रसाल जो स्वच्छंद धारा के गीतकार थे। प्रवासी जो पुरानी परंपरा के प्रबंधकार और मुक्तकार थे। मानव जो प्रगतिशील कवि थे। वशिष्ठमुनि ओझा नयी कविता के कवि हैं। अशोक सिंह और सुरेंद्र कुमार वाजपेयी काशी की नयी पीढ़ी के नवगीतकार हैं। दोनों में अपने युग की गहरी परख है। देवी प्रसाद कुंवर नयी कविता तथा भूषण त्यागी राष्ट्रीय धारा के कवि हैं। युवा मन का आक्रोश और चटपटाहट देवी प्रसाद कुंवर की कविताओं में है। सुरेंद्र कुमार श्रीवास्तव प्रगतिवादी धारा के कवि हैं। स्वच्छंदतावादी तत्व भी आपके काव्य में हैं। मजदूर, जागरण के गीत, अनागत आदि आपके संकलन हैं। भूषण त्यागी मंच के समर्थ रचनाकार हैं। दानिश और कपिलमुनि पंकज अच्छे कवि हैं जगदीश तिवारी नये और पुराने के बीच के रचनाकार हैं। राजशेखर नयी कविता के कवि और काव्य नाटिका के रचनाकार हैं। आपकी दृष्टि और भाषा का गहन प्रभाव होता है। काशी की कवित्रिणी में प्रतिमा वर्मा, मुक्ता, बीरबाला, चंद्रकला त्रिपाठी, सुषमा पाल, सविता चमन, सावित्री गौड़ आदि हैं। प्रतिमा वर्मा का काव्य संग्रह 'कागजी अनुबंध' इसी वर्ष प्रकाशित हुआ है। मुक्ता अपने काव्य संग्रह 'प्रेम खुदे हुए शब्द तो नहीं' से चर्चित हुईं। बीरबाला पारंपरिक गीतकार हैं। सुषमा पाल के गीतों में कहीं नयापन और कहीं पारंपरिकता है। नारी का विद्रोह, प्रेम, आत्मविश्वास, प्रकृति का सौंदर्य आपके गीतों के विषय होते हैं। सविता चमन और सावित्री गौड़ ने काव्य मंचों पर सम्मान पाया है।

अनिरुद्ध त्रिपाठी और कुमार हेमंत नयी कविता के कवि हैं। अनिरुद्ध त्रिपाठी का एक काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ है। महेंद्र सिंह नोलम पुरानी पीढ़ी के गजलकार हैं।

प्रसाद और प्रेमचंद के बाद आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने काशी के यश को राष्ट्रीय फलक पर उभारा था। वे सांस्कृतिक उपन्यास, ललित निबंध, अनुसंधानात्मक तथा सामाजिक संदर्भों में भरी हुई समीक्षा के लिए हिंदी में अमर रहेंगे। बाणभट्ट की आत्मकथा, चारु चंद्रलेख, पुनर्नवा, अनामदास का पोथा, कबीर, हिंदी साहित्य का

उत्तर प्रदेश

नयी सहस्राब्दी में
प्रगति की ओर...



“नव सहस्राब्दी के प्रथम गणतंत्र दिवस के शुभ अवसर पर मैं प्रदेशवासियों की ओर से समस्त अमर शहीदों को श्रद्धासुमन अर्पित करता हूं, सभी स्वतंत्रता सेनानियों को नमन करता हूं और प्रदेशवासियों से राष्ट्रीय मूल्यों के अनुरूप प्रदेश के सर्वांगीण विकास में सक्रिय सहभागिता निभाने की अपील करता हूं.”



आइए, इस पावन राष्ट्रीय पर्व पर हम सभी अपने देश की एकता एवं अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रखने का संकल्प लें.

राम प्रकाश गुप्त;
मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश

सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, उ. प्र. द्वारा प्रसारित



आदिकाल, अशोक के फूल और कुटज हिंदी में स्मरणीय रहेंगे.

द्विवेदी जी ने कुछ बहुत आकर्षक नारियों और पुरुषों की कल्पना करते हुए हर्षवर्धन से लेकर राजपूत युग तक के अंधकार को हटाकर इतिहास के अंतराल में देखना चाहा है

रुद्र काशिकेय का 'बहती गंगा' हिंदी का पहला आंचलिक उपन्यास है. बनारस के कई युगों की कथा एक नयी शैली में कही गई है. द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निगुण' के दस कहानी संग्रह और चार उपन्यास हैं. निगुण जी की कहानियों में निम्न वर्ग उभरता है,

डा. शिवप्रसाद सिंह हिंदी के श्रेष्ठ कथाकार हैं. उन्होंने नयी कहानी की शुरुआत 'दादी मां' लिखकर की. 'कर्मनाशा की हार' लिखकर एक नयी सामाजिक समरसता का दरवाजा खोला, 'विदे महाराज' लिखकर एक उपेक्षित हिजड़े का दर्द उभारा, 'आरपार की माला' लिखकर एक दलित वर्ग की नारी की पीड़ा के साथ अपनी भाषा की संवेदना को भी नया रूप दिया और 'मुर्दा सराय' लिखकर अस्तित्ववाद की कहानी में ढालने की कोशिश की. उन्होंने सामाजिक और इतिहासाश्रित दोनों प्रकार के उपन्यासों को लिखा है. सामाजिक में 'अलग-अलग वंशरणी' और इतिहासाश्रित में 'नीला चांद' हिंदी की महत्तम उपलब्धि हैं. जीवनी, निबंध, रिपोर्ताज और समीक्षा में भी शिव प्रसाद सिंह की उपलब्धियां उल्लेखनीय हैं. शिवप्रसाद सिंह और नामवर सिंह का काशी का द्वंद्व अंत में हिंदी का द्वंद्व बन गया.

डा. काशीनाथ सिंह अपने कथ्य से अधिक शैली और भाषा के लिए चर्चित हैं. उपन्यास तो केवल एक लिखा, वह भी लघु उपन्यास 'अपना-अपना मोर्चा'. आपकी कहानियों में जनवादी रुझान बहुत स्पष्ट होती है. समाज के अंतर्विरोधों का भौतिक द्वंद्ववाद से विदलेषण करनेवाली कहानियां कथ्य से अधिक अनेक प्रकार की शैलियों के कारण आकर्षित करती हैं. इधर अपने रेखाचित्रों की भाषा के लिए आप बहुत चर्चित हुए हैं. एकदम बाजार और लफंगों की भाषा को आपने साहित्य में रचनात्मक रूप देना चाहा है.

प्रतिमा वर्मा के पांच उपन्यास और छः कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं. नारी का परिवेश, नारी की पीड़ा और नारी के विचार ही अधिकांश कहानियों के केंद्र में हैं. पति-पत्नी के बनते-बिगड़ते संबंध, दोनों के बीच की टकराहट, पुरुष का अहंकार, अपनी अस्मिता के लिए जूझती नारी को प्रतिमा जी अपनी कहानियों में उभारती हैं.

कथाकार डा. सूर्यबाला मूलतः काशी की हैं. नारी का परिवेश, नारी के संघर्ष के अतिरिक्त समाज के अन्य सदस्यों को भी सूर्यबाला देखना चाहती हैं. इसीलिए इनके

कवि कथाकार डा० मुक्ता का साहित्य

● इस घर उस घर (सद्यः प्रकाशित बहुचर्चित कहानी संग्रह)

पूर्वांचल प्रकाशन, १९८० ए ब्लॉक सोनिया विहार, दिल्ली-११००९९

‘मुक्ता’ ‘स्कालर राइटर’ है। वह किताबों से लेकर मंदिर, मठ, देश-विदेश, स्त्रीवाद, तमाम विषयों को कहानी का विषय बनाती है। वस्तु और संरचना की विविधता की दृष्टि से मुक्ता हिंदी की अकेली लेखिका होती जा रही है—डा. शुक्रदेव सिंह (‘कहानीकार’ १३९)

‘मुक्ता’ के इस संग्रह में पिछले कुछ वर्षों में जितनी १२ कहानियां संकलित हैं जिनमें से शीर्षक कहानी ‘इस घर उस घर’ और ‘चल खुरो घर आपने’ दोनों के निशान पहले से ही गहरे बने हुए हैं, “विष्णु प्रभाकर की कहानी ‘एक और कुंती’, शिव प्रसाद सिंह की ‘नन्ही’ मुक्ता की ‘इस घर उस घर’ जीवन की स्त्री विडंबना और उसके छले जाने पर आधारित है। शिव प्रसाद सिंह और विष्णु प्रभाकर स्त्री की त्रासदी का गहरे जाकर आविष्कार करते हैं पर यह आविष्कार अधूरा है क्योंकि वे स्त्री के पक्ष में होकर सोचते हैं, स्त्री के मनोविज्ञान, स्त्री की आंख से नहीं देखते। इसके बरबस मुक्ता एक स्त्री की त्रासदी को एक स्त्री की दृष्टि से देखती है, इसलिए वह एक स्त्री की निरुपायता को ही नहीं, उस निरुपायता से उसे बाहर आते भी देखती-दिखाती है।’

डा० माहेश्वर—(‘हिंदुस्तान’, दिल्ली.)

● पलाशवन के घुंघरू (कहानी संग्रह)

अभिरुचि प्रकाशन, ३/९१४ कर्णगली, विश्वास, नगर दिल्ली-३१

‘संग्रह की कहानियां जीवन के रुग्ण पहलुओं पर अंगुली ही नहीं रखतीं, अपितु सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उनको सजंरी करने का प्रयास करती हैं’—‘साप्ताहिक हिंदुस्तान’ न. दि.

‘पलाशवन के घुंघरू’ की कहानियों की मुख्य विशेषता चरित्रों की विविधता है... और कथा लेखिका किसी के साथ नहीं, सिर्फ कथा के साथ होती है, ‘हंस’ नयी दिल्ली.

‘पलाशवन के घुंघरू’ पात्रों की विशिष्ट मानसिकता से हमें आश्चर्य ही नहीं करता, प्रश्नाकुल अणों से साक्षात्कार कराता है—‘जनसत्ता’, नयी दिल्ली.

● आधा कोस (कहानी संग्रह)

वाणी प्रकाशन, २० ए दरियागंज, नयी दिल्ली-२

‘मुक्ता की कहानियां अपने खरे रूप में समकालीनता की कहानियां हैं। वे भावना का सहारा लेकर चलती हैं। लेकिन यह भावनाशीलता उनके निकट यथार्थ को भेदने का हथियार भी है .. उनकी हर कहानी एक नये विषय या नयी जमीन की तलाश भी है’—प्रकाश मनु, हिंदुस्तान टाइम्स नयी दिल्ली

● प्रेम खुदे हुए शब्द तो नहीं (कविता संग्रह)

सारथक प्रकाशन, १०० ए चौतम नगर. नयी दिल्ली-११००४९



कथा का फलक अधिक विस्तृत है। इनकी कहानियाँ और उपन्यास निम्नवर्ग और गांव को भी छूते हैं। भापा और शैली का नयापन भी आपमें है। आपने उपन्यास और कहानियों के अतिरिक्त व्यंग्य भी लिखे हैं।

डा. मुक्ता का एक काव्य संग्रह और तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। नारी की घुटन, अकेलापन और उसकी विवशता को तोड़कर उसके अंदर से निकलती हुई एक संघर्षशील नारी मुक्ता की अधिकांश कहानियों में दिखाई पड़ती है। वर्जनाओं और रुढ़ियों को तोड़ते हुए भी मुक्ता की नारी, जीवन के सार्थक घटकों को स्वीकार करती है। मुक्ता की कहानियों का फलक अत्यंत विस्तृत है जिसमें पुरुष आग्रह और दुराग्रह से नहीं बल्कि अपने यथार्थ रूप से चित्रित हुआ है। मुक्ता की भाषा बहुत रचनात्मक है। इनकी अनेक रचनाएं अंग्रेजी तथा हिन्दीतर भाषाओं में प्रकाशित हुई हैं।

डा. नीरजा माधव काशी की नयी पीढ़ी की कथाकार हैं। नीरजा माधव के अब तक तीन कहानी संग्रह आ चुके हैं। नीरजा की कहानियाँ केवल नारी के घेरे तक ही नहीं सिमटी हैं। वे राष्ट्रीय समस्याओं को छूती हैं। राष्ट्रीय एकता, विभाजित मन, आतंकवाद जैसे विषयों को वे अपनी कहानियों में कहीं संकेत से और कहीं स्पष्ट कहती हैं। फ्लैश बैक, कैमरा तकनीक, वृत्तचित्र आदि का प्रयोग कर वे अपनी कहानियों के लिए नयी शैली गढ़ना चाहती हैं।

डा. कमल गुप्त ने कहानी, व्यंग्य और लघुकहानी लिखे हैं। 'मैकाले का भूत' व्यंग्यों का और 'सिजाव' लघुकहानियों का संग्रह है। आदमी के खोललेपन को उजागर करने वाली कमल गुप्त की रचनाएं तीखा व्यंग्य करती हैं। यथार्थ का गहरा बोध, अंत-विरोधों की पहचान, संवेदनात्मक संस्पर्श और मुहावरेदार भाषा इनकी रचनाओं की विशेषताएं हैं। ये प्रचलित मुहावरों का सटीक प्रयोग करने के साथ ही मुहावरों को गढ़ते भी हैं। आपकी रचनाओं का एंटीक्लाइमेक्स मानवीकरण की एक सशक्त प्रक्रिया है।

रमाकांत मिश्र काशी के नये कथाकार हैं। रमाकांत मिश्र के तीन उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। जीवनी और उपन्यास में ये फर्क नहीं कर पाते हैं। किसी वास्तविक घटना को रचनात्मक रूप देना कथाकार का दायित्व होता है।

ललित निबंधों के क्षेत्र में हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र और विश्वनाथ प्रसाद के नाम उल्लेखनीय हैं। द्विवेदी जी के निबंधों में उनके व्यक्तित्व की छाप, उनका सांस्कृतिक मन और मानवतावादी विचार है। उन्होंने प्रतीकों और मिथकों की उद्भावना की है। विद्यानिवास मिश्र ने लोक संदर्भों के साथ आधुनिकता को भी सहज ही ग्रहण किया है। इनकी भाषा लयात्मक है।

समीक्षा के क्षेत्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त

BK

बर्तन कोठी
ज्वैलरी गार्डेन



चाँदी के बर्तन के निर्माता व विक्रेता
भैरोनाथ, दाराणसी-221002

फोन : प्रतिष्ठान-३३५०९५

निवास-३३०६४६, ३३४०७८

मोबाइल- (९८३९०) ५५६४६

पेजर-(९६१०) ६३३०



आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डा. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, शांति-
प्रिय द्विवेदी, डा० वचन सिंह, डा० त्रिभुवन सिंह, डा० शुकरदेव सिंह, डा० विश्वनाथ
प्रसाद आदि उल्लेखनीय हैं। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भक्तिकाल और रीतिकाल
का गहन विवेचन किया है। इनकी समीक्षा का आधार रामचंद्र शुक्ल के विचार हैं।

पं० सीताराम चतुर्वेदी नाटककार और समीक्षक दोनों हैं। डा. वचन सिंह,
'क्रांतिकारी कवि निराला' लिखकर हिंदी समीक्षा में चर्चित हुए। आपने हिंदी के
नये सौंदर्य-बोध से लेकर आज तक के साहित्यकारों पर समीक्षा लिखी है। 'आधुनिक
हिंदी साहित्य का इतिहास' और 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' आपकी चर्चित
पुस्तकें हैं। आप पर प्रगतिशीलता का प्रभाव है। चंद्रबली सिंह मार्क्सवादी समीक्षक हैं।

मनु शर्मा और डा. युगेश्वर पौराणिक उपन्यासकार हैं। मनु शर्मा ने महाभारत-
कालीन पात्रों, चाणक्य, कर्ण, द्रौपदी, कृष्ण आदि की आत्मकथा लिखी है। आपने
सामाजिक उपन्यासों, व्यंग्य और कविताओं की भी रचना की है। युगेश्वर ने रामायण
के पात्रों—रावण, हनुमान, भरत आदि के जीवन पर उपन्यास लिखे हैं। आपने अपना
क्षेत्र अधिक व्यापक बनाया है। मनु शर्मा का आठ खंडों में प्रकाशित 'कृष्ण की
आत्मकथा' उन्हें श्रेष्ठ पौराणिक उपन्यासकार बनाता है। पात्रों का मनोवैज्ञानिक
विश्लेषण, परिस्थितियों के संदर्भ में उनके मन को परखने की क्षमता, कथा का
आकर्षक विन्यास, जीवन संघर्ष के बीच से उभरती हुई आस्था और सबसे ऊपर
मानवीय दृष्टि मनु शर्मा के उपन्यासों की विशेषताएं हैं।

श्रीप्रसाद और डा. श्यामलाकांत वर्मा काशी के बाल साहित्यकार हैं। श्रीप्रसाद
ने बालमन के अनुरूप प्रकृति के संदर्भों और कथाओं को बालकों की कोमल भाषा में
लयबद्ध किया है। डा. श्यामलाकांत ने पहले आदर्शों को और उसके बाल-बच्चों के
मन को छूनेवाले संदर्भों को और अंत में खनकती हुई भाषा को बाल कविताओं में
स्थान दिया है। बाल व्यक्तियों के अलावा आपने बाल कहानियां, गति और समीक्षा
की रचना की है।

डा. बद्री प्रसाद कपूर काशी के शब्द कोशकार हैं। काशी में रहकर साधना
करनेवाले रामचंद्र वर्मा की कोशकला और व्याकरण शास्त्री रूप को आपने उत्तरा-
धिकार में पाया है।

जौनपुर, गाजीपुर, बलिया, आजमगढ़, मिर्जापुर आदि काशी के ही अंग माने
जाते थे। राहुल सांकृत्यायन, लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिऔध, श्यामनारायण पांडेय,
विवेकीराय, श्रीकृष्ण राय हृदयेश, कुबेरनाथ राय, जगदीश ओझा सुंदर, रूपनारायण
त्रिपाठी, डा. श्रीपाल सिंह क्षेम, राही मासूम रजा, डा. रवींद्र भ्रमर, डा. जितेंद्र नाथ

विविध स्वादिष्ट

व्यंजनों—

डोसा, रवाडोसा

छोले, भठूरे

चाइनीज डिश

इडली, पनीर पकौड़े

आइसक्रीम, कोल्ड ड्रिंक

स्प्रेसो कॉफी का

आनंद-स्थल—



टी-पार्टी, बर्थडे-पार्टी

मैरेज-पार्टी की

कुशल मेजबानी में

सुविख्यात—

दी कॉफी हाउस

जैन मंदिर, भेलूपुर

वाराणसी

फोन—प्रतिष्ठान : ३१४३१३

निवास : ३९३८९०





पाठक, डा. उमाशंकर तिवारी आदि किसी न किसी तरह से काशी के क्षेत्र में ही आते हैं। राहुल सांकृत्यायन महापंडित थे। उन्होंने अनेक क्षेत्रों में कार्य किया है। कथा के क्षेत्र में वे अमर हैं। लक्ष्मीनारायण मिश्र अपने कर्ण काव्य, समस्या-मूलक और पौराणिक-ऐतिहासिक नाटकों के लिए प्रसिद्ध हैं। हरिऔध जी ने पौराणिक आख्यानों को युग के अनुरूप नये ढंग से प्रस्तुत किया है। विवेकी राय ने ग्राम-जीवन के अनुभवों को सड़न भाषा में रखा है। श्री कृष्णराय हृदयेश ने कई प्रयोग किए। जैसे वे द्विवेदी युगीन काव्य से प्रभावित थे। कुवेरनाथ राय के ललित निबंधों में परंपरा और शास्त्र को लोक से जोड़ा गया है। जगदीश ओझा सुंदर प्रगतिशील धारा के कवि थे रूपनारायण त्रिपाठी के गीतों में युग संदर्भ और जनभाषा है। श्रीपाल सिंह क्षेम की प्रेम व्यंजना और सांस्कृतिक दृष्टि उल्लेखनीय है। रवींद्र भ्रमर के गीत नये और पुराने के बीच की कड़ी हैं। राम कथा से संबंधित उनके गीत विशेष उपलब्धि हैं।

श्यामनारायण पांडेय ने ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से राष्ट्रीयता को व्यक्त किया है। ऐतिहासिक पात्रों की भियकों के रूप में कल्पना, ओज का मुक्त प्रवाह, एकदम जन-सामान्य की प्रवाहमयी भाषा आपको विशेषता है।

राही मासूम रजा ने 'आधा गांव' लिखकर गाजीपुर के आंचलित संदर्भ से पूरे राष्ट्र के विभाजित मन की ओर संकेत किया है। भारत के मुसलमानों का देश भारत ही है। यह देश जितना हिंदुओं का है, उतना मुसलमानों का है। उर्दू-मिश्रित चटकदार भाषा आपके कथ्य को आकर्षक बनाती है।

डा. जितेंद्र नाथ पाठक के अब तक नौ काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। दंपत्य जीवन, व्यक्ति का निजत्व और प्रकृति के बिंब इनकी कविताओं में अधिक हैं। डा. उमाशंकर तिवारी के तीन गीत संग्रह आ चुके हैं। युग की त्रासदी, नगरों की भयावहता और सांस्कृतिक गिरावट के साथ मुक्त मन का स्वछंद भाव भी इनके गीतों में है।

काशी में रचे गए हिंदी के इस विपुल साहित्य और उसके समृद्ध चिंतन को देखकर लगता है कि आदिकाल, रीतिकाल और नयी कविता को छोड़कर हिंदी का साहित्य काशी का ही साहित्य है। काशी की काव्य प्रवृत्ति, जीवन दृष्टि और भाषा ने संपूर्ण हिंदी जगत के लिए मानक का कार्य किया है। आदिकाल, रीतिकाल और नयी कविता का काव्य शायद काशी के मन के अनुरूप नहीं था। भक्ति, गीत, कथा और समीक्षा यहां की मानसिकता के अधिक अनुकूल था ०

पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष, उदय प्रताप पी. जी. कालेज,
निवास— एस २/१४१ डिठोरी महाल, अदली बाजार, वाराणसी।

इतिहास के गवाक्ष से



सन् १९११-१२ ई० में जार्ज पंचम के भारत आगमन पर 'मर्यादा' का संयुक्तांक विशेषांक प्रकाशित हुआ था। इसमें राजभक्ति से प्रेरित उस समय भारतीयता और भारत की स्वतंत्रता का समर्थन करनेवाले सभी महान लोगों ने जार्ज पंचम के भारत आगमन के अवसर पर 'राजेश्वर' का स्वागत किया। चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने संस्कृत में बिष्टर, पाद्यम, अर्घं, अचमनीयम, मधुपर्क, गो, आशिष शीर्षक से सत्कार करते हुए संस्कृत में कविता लिखी है और यह बताया है कि घर में आए राजा, आचार्य, ऋत्विक्, स्नातक, बर और प्रिय का इसी तरह से सत्कार किया जाता है और अंत में आशीर्वाद दिया जाता है। इसी अंक में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने दोहा, रोजा, बरवै, हरिगीतिका, 'भुजंग प्रयात' नाराच इत्यादि छंदों में प्रायः छः पृष्ठों में अर्थार्थना का गीत लिखा है और जार्ज पंचम को धर्मराज रघु और राम के बराबर महत्त्वपूर्ण बताया है गुलेरी जी ने राजव्यवस्था पर लंबा लेख भी लिखा है। 'राजसूय यज्ञ' पर फिर उन्होंने 'अवधमेव' पर भी निबंध लिखा है। श्यामबिहारी मिश्र ने इसी अंक में 'माध्यमिक कालीन राजागण' नामक लंबा लेख लिखा है। श्री देवी प्रसाद ने 'मुगलबादशाहों' की तख्तनशीनी पर निबंध प्रस्तुत किया है। गुलेरी जी ने पुनः आशीर्वाद के रूप में एक लंबी कविता लिखी है जिसमें जय, स्थिरता, अमरपक्ष, सुबदत्त, यश, इंद्रत्व, आशिष और प्रार्थना से जुड़े छंदों का सूत्रन किया है। अश्वत्थामिह उवाचय ने दादरा, कौवालो के अनेक छंदों में राजाधिराज जार्ज की वंदना की है। चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने फिर 'शुनः-शेष' की कहानी लिखी है और राजधर्म का बार-बार स्मरण कराया है। एक बार फिर गुलेरी जी ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र का उल्लेख करते हुए मनु और पृथु से 'जार्ज पंचम' के आगमन को जोड़ा है। बालकृष्ण भट्ट ने 'बड़ों का बड़प्पन' नाम से जार्ज पंचम को समर्पित एक लेख लिखा है। शिवाधार पांडेय ने 'आदर्श राज्य प्रणाली' नामक एक गतिमान रचना भी लिखी। शायद इसी वर्ष रवींद्रनाथ टैगोर की 'जनगण मन अधिनायक' नामक कविता भी लिखी गई थी। और 'भारत माय विधाता' के रूप में शायद जार्ज पंचम की वंदना करते हुए पंजाब, सिंध, गुजरात, महाराष्ट्र, द्रविड़ देश, उत्तराल और बंगाल का स्मरण किया था। 'अखंड भारत' की कल्पना 'विशाल भारत' नामक पत्रिका के रूप में भी सामने आई थी। यह पत्रिका किस साल निकली, यह स्मरण नहीं है। लेकिन इसके सूत्र 'जार्ज पंचम' की वंदना से संबद्ध हो जाते हैं। इस



सरह संपूर्ण भारत जिस 'जय जयकार' में लगा था, उसमें भारत के सभी राजा-महाराजा अपने श्रृंगार के साथ समर्पित होने गए थे। तत्कालीन काशी नरेश भी जब जाने लगे तो उन्होंने अपने मंत्रियों से पूछा था कि मैं क्या करूं ? काशीराज हूं लेकिन मेरे पास अनमोल हीरे, मोती नहीं हैं। क्या दिखाऊं ? तभी किसी चतुर मंत्री ने सलाह दी कि आप साक्षात् शिव के रूप में गेरुआ वस्त्र पहनकर 'भभूत' लगाकर वेद-पाठियों के साथ मंत्ररव के साथ जाए, क्योंकि शिव की विभूति से बड़ी कोई 'विभूति' हो ही नहीं सकती। कहा जाता है कि 'काशी राज' को सबसे अधिक सम्मान दिया गया। लेकिन इससे भी बड़ी घटना यह हुई कि 'मर्यादा' में बड़े साहस के साथ छंद आल्हा में 'आदित्य इंग्लीशिया सरकार' का संदर्भ देते हुए नाथूराम शंकर ने 'हिजड़ों की मजलिस' नामक एक लंबी कविता लिखी थी। पराजित प्रजा की कटाक्ष-व्यंजना के रूप में यह कविता न केवल एक बड़ी जाति-स्मृति का प्रतीक है, बल्कि बहुत बड़े भारतीय साहस का संकेत भी है। शताब्दी के अंतिम वर्ष में इस कविता का स्मरण आवश्यक है—

हिजड़ों की मजलिस



पं० नाथूराम शंकर शर्मा

(वीर छंद आल्हा)

नाम नपुंसक है शंकर का
ब्रह्म सनातन मंगल मूल
मन को भी हिजड़ा कहते हैं
इसमें नहीं नेक भी भूल।

ब्रह्म और मन का होता है,
जब तक नहीं निरंतर योग
तब तक दूर न होगा हमसे
जीवन, जन्म, मरण का रोग। १

जिसके मारे सीता त्यागी
रामचंद्र ने प्रेम बिसार
जिसके आगे गंगा सुत ने
रण में खोल घरे हथियार।

जिसको पाकर हम लोगों के
बुचरी* पीर बने सरदार
उस अनुभूत नपुंसकपन को
करिए बारंबार जुहार। २

बाल ब्रह्मचारी हम सब हैं
सहते नहीं मार की मार
नर के कंठ नहीं लगते हैं
करते नहीं नारि पर प्यार।

डाढ़ी मूँछ नहीं रखते हैं
उर पर उकसे नहीं उरोज
शुक्र और रज रहित हमारे
अंग अछूते उगलें ओज। ३

* युचरायी—हिजड़ों के पूज्य पुरोहित

पहले हम करते रहते थे
कुल बनिता के से शृंगार
अब तो अंगरेजी अंकुश ने
सबके लहंगे लिये उतार.

आज अंगूठा दिखलाने की
कोई करता नहीं पसंद
उद्यम डूबे हाथ हमारे
सारे द्वार हो गये बंद.४

बस व्याहों में मिल जाते हैं
पैसे कभी-कभी दो चार
भूखे संकट काट रहे हैं
कोई देता नहीं उधार.

ढोलक और मजीरे फूटें
इनसे क्या निकलेगा काम
काल कुचाली मेट रहा है,

हाथ नपुंसकता का नाम.५

छोटे दिन बीते सो बीते,
अब तो ऐसा करो उपाय
जिसके द्वारा हम दोनों का
दारुण दुःख दूर हो जाय.

“उन्नति की सीढ़ी पर बोलो
पहले पाय घरेगा कौन ?”

इतना कहकर षंड अभागा
आंसू थाम गया हो मौन.६
सुनते ही प्रस्ताव सभा में
मचा भयानक हाहाकार
ज्यों त्यों घोरज धार जतीले
हिजड़े करने लगे विचार.

उन्नति की सुन्नति करने को
टांग अड़ाय. टिकाई टेक
सबकी सम्मति का प्रति योगी
कहने लगा सभासद एक.७

उन्नति उन्नति हांक रहे हो
हमकी उन्नति से क्या काम
क्या हिजड़े भी हो सकते हैं
उन्नतिशीलों में सरनाम.

“कोई नृप होय हमें का हानी”

इस पर कर बैठो विश्वास

“चेरी छाड़न होउब रानी”

कह गये बाबा तुलसीदास.८

जो अवनति ने दे पटका है,

क्या उठ सकता है वह देश.

तो भी तुमको दे सकता हूं,

पेट पालने का उपदेश.

अब जयचंद महाराजा को,

देकर घन्यवाद का दान.

नकफुल्ली छूकर छिगुनी से,

सुन लो खोल-खोलकर कान.९

धर्म सुधारो तो घर बैठे,

आटा पीसो कातो सूत,

धन चाहो तो विधवा दल के,

बन जाओ विट् नैशिक दूत.

जो तुम चाहो हम लोगों को

आदर मान मिले सब ठौर.

तो अब दाई के हुथकड़े,

सीखो उद्यम करो न और.१०

जो बाबरची बन जावेंगे,

रह कर भटियारों के साथ.

उनकी रोटी दाल भात से,

रीते नहीं रहेंगे हाथ,

दरजी बनो सिलाई लेना

बंद बीबियों से चौचंद.

नाप नाप बेसीन सिपिस्ताँ,

सीना सब के सीने बंद.११

फच्चे बच्चों को पालो तो,
 क्या कुछ लग जावेगा पाप,
 तुमको मीठा बदला देंगे,
 उन मासूमों के मां बाप.
 देशी परदेशी लोगों से,
 उनका हो जावेगा मेल.
 जा नाटक में परियों के से,
 खुलखुल कर खेलेंगे खेल. १२

सुन कर बोल उठे सब श्रोता,
 बस बकवाद न करिये आप.
 लो लानत लेकर जा बैठी,
 अपने चिथड़े पर चुपचाप.
 जिस की अंड बंड बातों से,
 फैल गया संगत में शोक,
 बैठ गया पाकर बदनामी,
 वह बूढ़ा बकता डरपोक. १३

थू-थूकर पहले लीडर को,
 रोने वालों को समझाय.
 तड़क तीसरा हिजड़ा बोला,
 झुर शिखंडो के गुणगाय.
 हिम्मत बांधो उन्नति होगी,
 हरगिज होना नहीं हताश.
 जो मेरा मत मानोगे तो,
 दूर रहेगा सत्यानाश. १४

बूढ़े वेदों की बातों का,
 कुछ कुछ कर लेवें अभ्यास,
 फिर स्वामी जी बन जावेंगे,
 लेकर काशी से सन्यास,
 भगवा काछकमंडलु काला,
 मुंडित मुंड गठीला दंड.
 ठौर ठौर आदर पावेगा,
 ब्रह्मरूपधारी पाखंड. १५

बच्चे जाकर कालेजों में,
 सीखें अंगरेजी भरपूर.
 और जवानों में भी कर लें,
 काफी इस्तेदाद जुरूर.
 हिजड़ी हिजड़ों से भी आगे,
 लौट पड़ें ले लेकर पास.
 फिर पाकर पद ऊंचे ऊंचे,
 करें यथासुचि भोगविलास. १६

आरजदल में जाय जवानों,
 वैदिक विधि से होकर पाक.
 रखलो नाम कुलीनों के से,
 पहनों मरदानी पोशाक.
 नकली दाढ़ी मूँछ लगा लो,
 छाता बेंत बगल में मार
 उद्यम के कीड़े बन जाओ
 रहना कमी नहीं बेकार. १७

आदत ले लेकर लोगों से,
 बेचो और खरीदो माल.
 नाम करो नामो नगरों में,
 होकर हरजाई दलाल.
 तीरथ पंडों की प्रभुता के,
 मारग पोड़े चारो ओर.
 दान दक्षिणा हरिभक्तों से,
 लेते रहो बटोर बटोर. १८

यार वकीलों के बन आओ,
 खातिर खूब करेंगे लोग.
 आप चहाहम लेकर उनसे,
 मेजा करो कड़े अभियोग.
 दिया करो दिलबोर गवाही,
 खा खाकर सौ-सौ सींगब.
 मुफ्त किसी के काम न आना,
 मुफलिस हो या दीलतमंद. १९

१९२

करो कमाई उन कामों से,
जिनमें घर के लग न दाम.
खाओ खरचो मीज उड़ाओ,
देकर अपनों को आराम.

पूरी पूजी हो जावे तो,
कर लेना दिल को मसदूद.
सी पर तीन रूपे दो आना
खाना कंगालों से सूद. २०

आमद आधी एक तिहाई,
या उसका चौथाई खंड.
देना इस जातीय सभा को
बढ़ता रहे नपुंसक फंड.

सबसे पहले करना अपने,
तालिबइल्मों की इमदाद
ताकि न होवे हम लोगों की,
होनहार हस्ती बरबाद. २१

गरमी, नरमी नहीं बढ़ाना,
ज्यों के त्यों रहना निरदम.
इस पंचायत के चंदे में,
करना बड़े-बड़े आरंभ.

भांति भांति की कारीगरियां,
खोज-खोज कर लेना सीख
छोड़ो पहली परिपाटी को,
कल से नहीं मांगना भीख. २२

छोड़ काहिली को उठ बैठो,
पकड़ो मुस्तेदी के कान.
यों न किया तो हो जावेगा,
हिजड़ों का मलिया मैदान.

बैठ गया अगुआ गुदड़ी पे,
देकर सबको नेक सलाह.
गूँज उठी वह महफिल सारी,
कह कर बाह बाह जी बाह. २३

खूब खूब क्या खूब सबों की,
सुनता रहा मसोसे मार.
आखिर को अंखियां मटकाता,
मीर मुखन्नस उठा पुकार.

मुश्किल को आसां समझे हो,
देने लगे मुबारकबाद.
हमको खाक सुधार सकेगा,
इसका बेहूदा बकवाद. २४

जोश दिलाना ठीक नहीं है,
कांटों को बतला कर फूल.
जिन बातों पर फूल रहे हो,
उनमें एक नहीं माकूल.

अब तो हंसते हो पर आगे,
चलकर निकल पड़ेगी लीद.
नहीं मानते तो लो सुन लो,
सारे मसलों की तरदीद. २५

नकली बाबा जो बन जावें,
लाकर वेदों पर ईमान.
हिंदू ऐसा कर सकते हैं,
नहीं मुसलमां को आसान.

घर-घर अलख जगाते डोलें,
भीख मांग कर पालें पेट.
इस लीला से इन बुद्धों को
सुख से कभी न होगी भेट. २६

हिजड़े तुलवा के पढ़ने को
कोई कहीं नहीं कालेज
हैं तो उसमें दाखिल कर दे
बच्चों को वाइज का हेज.

आलिम होकर ऐंड रहे हैं
कोरी, कंजर, डोम, चमार
हम लोगों को नहीं पढ़ाती
आदिल इंगलिशिया सरकार. २७

पाक बहो होगा समझा है
जिसने अपने को नापाक
ऐसा है तो पड़ जावेगी
हिजड़ों का हुरमत पर खाक.

दुर-दुर छी-छी जाति पांति का
जिनको लगा हुआ है रोग
हमको नहीं मिला सकते हैं
अपने में वे आरज लोग. २८

आढ़त की हेरा-फेरी में
बात-बात पर होगी झोड़
काम कड़ा है बल्लाली का
हमसे कब होगी घुड़दौड़.

पंडे और बकीलों से भी
अपना नहीं मिलेगा मेल
क्या कुछ माल जमा कर लेना
समझा है लड़कों का खेल २९

खंडन खड्ग न कुंठित होगा
छूटेगी न अकड़ की मूँठ
क्या कोई मेरे कहने को
साबित कर सकता है झूठ.

फूट गया बम का गोला सा
भीर महोदय का मजबूत
सातम टूट पड़ा मजलिस पै
कर डाला उलफत का खून. ३०

सन्नाटा छा गया सभा में
सबके सब हो गये उदास
रही न साहस की सामग्री
कायर कापुरुषों के पास.

रो रोकर रंजूर पुकारे
बेशक हमसे हुआ कुसूर
अब जैसा करना हो वैसा
फरमाते क्यों नहीं हुजूर. ३१

मान मित्रों की मिनत को
फिर बोला मजलिस का भीर
थोड़े से फिकरे कहता हूँ
बहरं तरक्की पुरतासीर.

आरतमात की जय बोलो
पकड़ो पवनपुत्र की पूँछ
बालस उल्लू के पर काटो
मूँडो डर केहरि की मूँछ. ३२

पाँच घड़ो सामर विक्रतो हूँ
पाँच सेर का बिके पिसान
पैदावार बढ़े तो रोवे
घट जायें तो हंसें किसान.

ऐसे मन्जर इनकिलाब का
करते हैं काफी इजहार
जोत रहेगी नामरदां की
होगा मरदों की अब हार. ३३

(प्रस्तुति-डा० शुक्रदेव सिंह)

विगत अंकों पर मिलीजुली प्रतिक्रियाएँ

पूर्णिक १३८

‘कहानीकार’ के ताजा अंक १३८ में डा० शुक्रदेव सिंह का डा० शिवप्रसाद सिंह पर संस्मरण बहुत हृदय-द्रावक है। उन्होंने जो सुझाव दिए हैं, उन पर काम होना चाहिए,

आप ‘कहानीकार’ की जीवंतता और जीभट को बनाए हुए हैं, यह देखकर अच्छा लगता है, बधाई।

पुनश्च—प्रगतिशील आंदोलन पर डा० प्रकाशचंद गुप्त के विचार प्रभावित किए। यह प्रशंसनीय है, प्रासंगिक भी है।

—डा० विश्वंभर नाथ उपाध्याय, सात-ड-पच्चीस, जवाहर नगर, जयपुर-४
पूर्णिक १३८ मिला। इस अंक में प्रकाशित हिमांशु जोशी का उपन्यास अंश काफी प्रभावोत्साहक एवं समकालीन परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक है। इसके द्वारा आजादी की लड़ाई में अपना सर्वस्व अर्पित कर देनेवाले वैसे वीर सपूतों का संघर्ष और यातना पूर्ण जीवन का वह दुर्लभ चित्र है जो पाठकों को उस काली अंधेरी रात की ऐसी भयानक दानवी क्रूरता से साक्षात्कार कराता है, जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकते, आज के सत्तासीन तथाकथित देश के भ्रष्ट पहरए, परजीवी शोषक सत्तालोलुप राजनेता, अंग्रेजी और जापानी हुकूमत द्वारा दी गई क्रूर यातनाओं का वर्णन पढ़कर मानव आत्मा कांप-कांप जाती है। काश ! ऐसे बहादुर शहीदों के त्याग, तपस्या और देशभक्ति की भावना का शतांश भी ये लोग (आज के राजनेता) महसूस कर पाते और महाघोटालों के समुद्र में गोते लगाने के बदले देश की मर्यादा और आम जनता की आकांक्षाओं, आशाओं की ओर ध्यान देते।

‘कुछ स्याह : कुछ सफेद’ में प्रकाशित आपकी लघुकहानी ‘विगुल’ के लिए बधाई ! बहुत अच्छी लगी यह कहानी मुझे। कहानी के माध्यम से आए आपके विचारों के साथ सहमति-सी लगी। आज इस देश का परिवेश यही मांग रहा है। लेकिन भूमंडलीकरण और उत्तराधुनिकतावाद के झंडाबरदार लेखक विचारक इसे अस्पृश्यता के हथ



तक ठंडे बस्ते में डालने को तैयार हैं, उन्हें क्या कहेंगे आप ?

कबीर हिंदुस्तान ही नहीं इस धरती के वैसे गिने-चुने अखण्ड कवियों में हैं जिन्होंने पहली बार इतनी दृढ़ता और गंभीरता से इस समाज के तमाम प्रपंचों और पाखंडों पर, चाहे वे किसी धर्म से संबंध रखते हों, जोरदार प्रहार किया और मानवता के पक्ष में एक प्रगतिशील धारा को जन-जन तक पहुंचाया। उन्हें मात्र धार्मिक संत के रूप में चिन्हित मूल्यांकित करना हमारी बौद्धिक दरिद्रता के अलावा और क्या हो सकता है। इस पर आगे भी विचार आने चाहिए, बहस चलनी चाहिए, स्थितियां तभी साफ हो सकेंगी।

—सुरेश कांटक, कांट (ब्रह्मपुर) बक्सर, बिहार-८०२११२

‘कहानीकार’ के पूर्णांक १३८ में स्वतंत्रता की अर्धशती पर आपकी पेशकश बेहतर है। हिमांशु जोशी के उपन्यास ‘कालापानी : जाना और जाना’ के विशिष्ट अंशों को देकर आपने पाठकों को अवगत कराया है कि हमारे देश में ऐसा भी जग है जो कि आजादी के पचास सालों बाद भी वहीं का वहीं रह गया है। क्या हम इन्हें बदल नहीं सकते ?

‘शिवप्रसाद सिंह के निधन और मेरे अंतिम दिन’ डा० शुक्रदेव सिंह की ईमानदारी एवं संपन्नता का परिचायक है। कई बातों में वे शिवप्रसाद जी से सहमत नहीं थे पर मृत्यु के बाद वे शिवप्रसाद जी के गुणों का मूल्यांकन करते हैं पर उनके लेख में झूठी प्रशंसा या बेवाक आलोचना नहीं है।

—प्रो० बी. डी. कृष्णन नंपियार, प्राध्यापक (हिंदी) श्री शंकराचार्य संस्कृत वि० वि० तिरुवला केंद्र, तिरुवला-६८९१०१

हिमांशु जोशी का उपन्यास अंश ‘कालापानी-जाना और जाना’ पढ़ने से मुझे अपने जीवन के पुराने दिन याद आए। जब देश आजाद हुआ तब मैं १७ साल का लड़का था। स्वतंत्रता आंदोलन चलानेवाले देशभक्त नेताओं के साथ मैं भी आंदोलन में भाग ले रहा था। उस जमाने के नेता देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे थे। आज के नेता पैसे जुटाने के लिए होड़ लगा रहे हैं।

आपकी रचना ‘बिगुल’ अत्यंत सराहनीय है, इसकी ये पंक्तियां ‘जनता की आंख में धूल झोंककर देश के घन को लूटना....हमारे देश-भक्तों ने सीने पर गोलियां खाईं थीं ? फांसी पर लटक गए। शहीद हुए थे ?’....आजादी के पहले के जमाने की याद दिलाती हैं। आपकी कहानी का संकेत सही है कि अंग्रेजों को इस देश से मार भगाने के लिए नेताओं ने जिस तरह आंदोलन चलाया, उसी प्रकार आज के भ्रष्ट नेताओं को मार भगाने के लिए नया आंदोलन चलाने की जरूरत है।

—वाई. सी. पी. वेंकाटारेड्डी, यरावंकापल्ली, पट्टनम-५१५५०१ (आ. प्र.)

१९६

पूर्णिका १३७

‘कहानीकार’ का अंक १३७ पढ़ा, अच्छा लगा। आपकी रचना ‘जोंक और जोंक’ आपके चिर परिचित अंदाज का परिचय देते हुए सपाज पर वेदाक और पैनी नजर डालती हुई चलकर मंजिल तक पहुंची है। रवींद्र नाथ त्यागी की तीन गद्य रचनाएं त्रिताल में बद्ध गद्य का आकर्षक रूप प्रस्तुत करती हैं तथा पाठकों को बांधने में सक्षम हैं। लतीफ घोषी अपनी लच्छेदार शैली के साथ ‘उनके टेपरिकार्डर के साथ’ में प्रस्तुत होते हैं। वितकजी का व्यंग्यपूर्ण व सफल चित्रण ‘अव्यवस्थित चित्रायाम्’ की प्रस्तुतिकरण का सफल प्रयास है। अपनी कृति ‘पिटारी में बंद अखिल भारतीय संस्थाएं’ में डा० वालेंदु शेखर तिवारी ने काफी हद तक पाठकों को बांधा है। बलराम का निबंध ‘दिल्ली का दिल और कमल का खिलना’ शब्द चातुर्य से भरा होने के कारण उत्तम बन पड़ा है। विनायक ने मोनालिसा की अंतिम मुस्कान में अध्यापकवर्ग का जो चित्र उपस्थित किया है, उसे ठीक-ठीक केवल एक आदर्श अध्यापक ही समझ सकेगा। इसकी तह तक हर कोई नहीं पहुंच सकता। डा० वेद प्रकाश अमिताभ ‘पचास सालाना आजादी का जश्न’ में एक साधारण भावभूमि पर एक ऐसा अंत प्रस्तुत करते हैं जो विचारों के लिए प्रेरित करता है। ‘देशी कट्टे की कथा में’ ज्ञान चतुर्वेदी ने बड़ी चतुराई और स्पष्ट भूमि पर पुलिस की मिलीभगत से पनपते अपराधीकरण का सचित्र प्रस्तुतिकरण किया है। वर्तमान युग के वास्तविक चित्र का प्रस्तुतिकरण ‘मेरी गली के लोग’ में बड़ी बेबाकी से बन पड़ा है, डा० रामनारायण सिंह ‘मधुर’ द्वारा। चंद्रमोहन प्रधान की ‘महिमा उपनाम की उर्फ एक रिसचं का रिहसल’ मनोरंजन से भरी रचना है, जिसमें बहुत सारी रोचक एवं संग्रहणीय जानकारीयां भरी पड़ी हैं। ‘शवयात्रा में शामिल लोग’ में डा. गोपाल बाबू शर्मा सामाजिक परिपाटी का वह व्यंग्यात्मक चित्र खींचते हैं जो स्पष्ट कर देता है कि आज सहानुभूति मर गई है बची है फर्ज अदायगी की रस्म। कवि ‘रहीम की प्रासंगिकता’ में डा० कश्मीरी लाल ने रहीम के दोहों का आधुनिकीकरण कर डाला है और उसे सार्वकालिक और सार्वभौतिक की पदवी से हटाकर तात्कालिक बना दिया है। ‘तुम्हारे साथ’ में कहानी सपाट घरातल पर अबाध गति से चलती रहती है किंतु अंतिम अनुच्छेद व्यंग्य की तल्लो को ज्यादा करारे ढंग से उभार देती है। पाठक भोचका भी होता है और पात्र की हिम्मत की दाद भी देता है। ‘कहानीकार’ के व्यक्तित्व से मेल खाती सफल कहानी है। ‘सावधान : हम ईमानदार हैं’ जिसमें लतीफ घोषी ने ईमानदारी व ईमानदारों को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उभारा है।

बाकी के स्थाई स्तंभ रोचक व प्रभावी हैं। कहीं कहीं प्रूफ की अशुद्धियां व टाइप की त्रुटियां ही खटकती हैं। बहुपक्षीय एवं उपयोगी अंक १३७ हेतु संपादक महोदय



बघाई के पात्र हैं।

—सुभाष चंद्र शुक्ला, ४ बीडी बाग (पूर्व) ११ स्टीफेन हाउस, कलकत्ता-७
 पूर्णांक १३७ 'आजाद देश के गुलाम हम' शीर्षक अच्छा लगा। इस अंक में प्रकाशित सभी रचनाएं श्रेष्ठ व्यंग्य प्रस्तुत करती हैं—उनके टेपरिकार्डर के साथ (लतीफ घोंघी), दिल्ली का दिल (बलराम), पचास सालाना आजादी (डा. अमिताभ) देसी कट्टे की आत्मकथा (ज्ञान चतुर्वेदी) मेरी गली के लोग (डा० मधुर) और सबसे ज्यादा तेज असर दर्द निवारक गैस हरण हाजमोला की तरह चंद्रमोहन प्रधान का व्यंग्य रहा। 'महिमा उपनाम की' वंश प्रणाली खूब खीची है प्रधान जी ने, नंबर दो पर रही डा. गोपाल बाबू की रचना 'शवयात्रा में शामिल लोग'

प्रस्तुत अंक में संपादक की रचना सबसे ऊपर व्यक्ति विशेष की याद ताजा करती है। गुरुवचन सिंह का आत्मविश्लेषण एक कर्मठ और योग्य लेखक की पहचान कराता है। इस बार व्यंग्य रचना संयोजक सहज और सुंदर रहा।

—पद्म, ए-८७, सैक्टर-१४, चंडीगढ़-१६००१४

'कहानीकार' १३७ में श्री गुरुवचन सिंह की 'रचना प्रक्रिया' बहुत अच्छी लगी। आपने इस स्तंभ के जरिये रचनाकारों के स्पष्ट अभिव्यक्तियों को संजोने का प्रयास किया है, इसके लिए साधुवाद !

आपकी लघुकहानी 'तुम्हारे साथ' जीवंत लगी। वस्तुतः साहित्य का कद्र करने के लिए साहित्यिक दिल होना चाहिए।

—उमेश पंडित 'उत्पल', चूनापुर रोड, मधुबनी, पूर्णिया-८५४३०१

'कहानीकार' का पूर्णांक १३७ पढ़ा। इसके पूर्व का अंक भी मुझे मिला था। पूर्ववर्ती अंक की कुछ रचनाएं पढ़ने के पश्चात ही मैं अगले अंक के लिए वेचैन हो उठा था। मैं अपने भाग्य को कोस रहा था कि यह पत्रिका मुझे पहले क्यों न मिली। इस अंक की सभी रचनाओं को दो-तीन बार पढ़ चुका हूँ। सभी रचनाएं अच्छी लगीं। विशेषकर डा० वेद प्रकाश अमिताभ की 'पचास सालाना आजादी' डा० रामनारायण सिंह मधुर की 'मेरी गली के लोग' चंदमोहन प्रधान की 'महिमा उपनाम की' रवींद्रनाथ त्यागी की 'नोबिल प्राईज' डा० बालेंद्रु शेखर तिवारी की 'पिटारी में बंद अखिल भारतीय संस्थाएं' आदि पसंद आईं। इसके अतिरिक्त 'मेरी रचना प्रक्रिया' विशेष रुचिकर लगी। स्थाई स्तंभों में 'कुछ स्थाह : कुछ सफेद' अच्छी लगी। डा. शुक्देव सिंह की 'समकालीन कहानी' के अंतर्गत 'मंजुल भगत की याद में एक खाली तारीख' पढ़ते वक्त ऐसा लगा जैसे डा. शुक्देव सिंह मंजुल भगत की अच्छादियों का वर्णन करते-करते उनकी भिन्न-भिन्न परिस्थितियों से तुलना करने के क्रम में कुछ बहक-से गए हैं। ऐसा लगा जैसे वे तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत न कर मंजुल भगत पर फट्टियां कस रहे हैं, उन्हें गाली दे रहे हैं। डा० शुक्देव सिंह जैसे लेखक के लिए यह अच्छी बात नहीं है। उन्हें तुलनात्मक अध्ययन जरा संतुलित संयमित और उचित तरीके से करना चाहिए था। अन्य स्तंभ में 'प्रगतिशील आंदो-

१९८

लन का पुनर्मूल्यांकन' एक सराहनीय कार्य लगा। इस पर बहस होना जरूरी है। अहमद नदीम कासमी की गजल अच्छी लगी। परिशिष्ट पढ़ने के उपरांत ऐसा लगा जैसे 'हंस' पत्रिका के साथ आपका द्वंद्व-युद्ध चल रहा है। मिथी लाल जायमवाल की क्षणिकाएं और मंजुला उपाध्याय मंजुल की कविताएं पसंद आईं। 'कविता फलक' के अंतर्गत यदि नयी-नयी कविताओं का समावेश हो तो ज्यादा अच्छा रहेगा।

—बी० आर० मांझी, मलखाचक, दिधवारा सारण (छपरा) बिहार-८४१२०७

पूर्णांक १३७ में आपके संपादकीय से प्रभावित हुआ। देश की इस दशा में दिशा प्रदान करने में वास्तव में सक्षम लेखक, पत्रकार और समाज-सेवी हैं। जिस तरह सभी राजनीतिक दल अक्सर के मुताबिक अपने विचार और कार्यक्रम बदल रहे हैं, उससे सभी दल एक जैसे दिखने लगे हैं, थोड़ा हेर-फेर के बावजूद। आम लोगों को इनसे कोई आशा नहीं रह गई है। वे विवशता में इसे ढो रहे हैं क्योंकि उन्हें मालूम ही नहीं कि क्या किया जा सकता है? खासतौर से ऐसे माहौल में जहां राजनीतिज्ञ, गुंडे और पुलिस में फर्क मिटता जा रहा है।

मेरा मानना है कि यह धरती अब फिर एक बार बलिदान चाहती है और यह बलिदान होगा ईमानदार और प्रबुद्ध लोगों का।

—विश्वजीत कुमार, सिरसिया बाजार, सीतामढ़ी-८४३३२४ (बिहार)

पोलेथिन द्यूब्स

शीट्स

फैसी बैग्स

एवं

पी. पी. की

चमकीली थैलियों के

निर्माता एवं विक्रेता

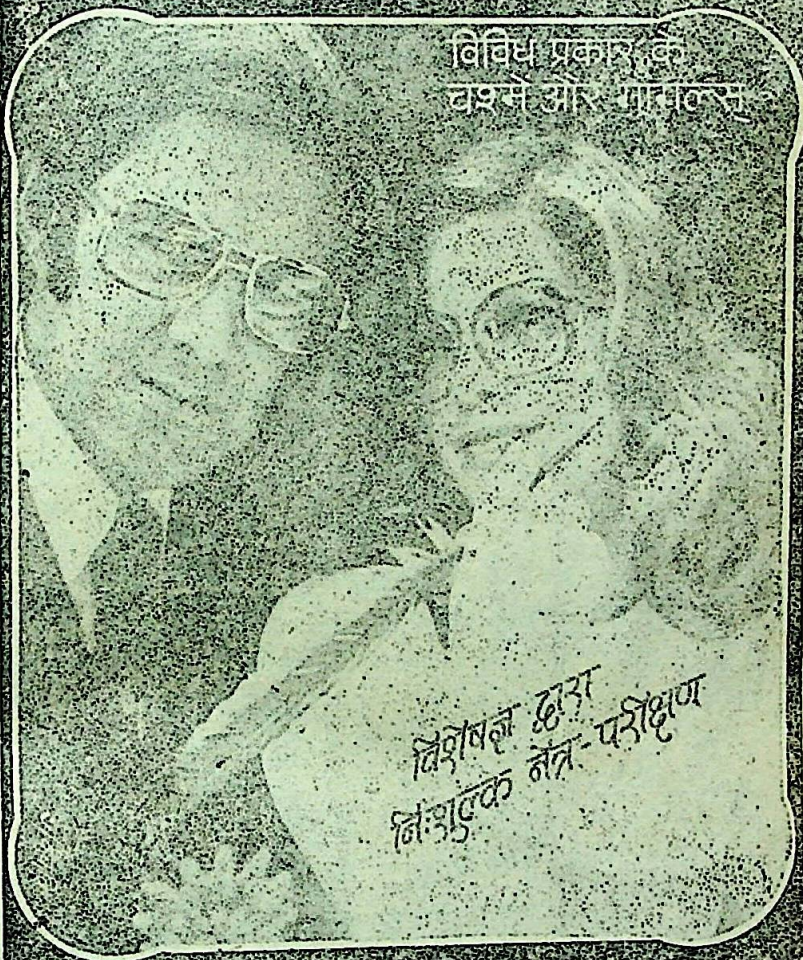
श्याम पोलेथिन वर्क्स

प्रधान कार्यालय डी. ३७/९० बड़ादेव, वाराणसी. फोन—३१२८४३

फैक्ट्री : बी. २/१०८ भदौनी, वाराणसी. फोन—३११०४७

कॉन्टैक्ट लेंस से
आँखों में बड़ी ज्योति नया रूप देना /

विविध प्रकार के
वर्णम और मासक



विशेषज्ञ द्वारा
निःशुल्क नेत्र-परीक्षण

न्यू आइको ऑप्टिशियन्स

रतन कट्टरा (पब्लिक रेटेल परम्प), मोदौलिया, वाराणसी

फोन-प्रतिष्ठान : ३५३१०१ (पी. पी.) निवास : ३६२१२१



दृष्टि-दृष्टांत

प्रदीप लिब्ररी



गद्य की ओर कविता की दाड़

चार साल पूर्व इतालवी कवि इयुजेनियो मोंताले की जन्मशती बीती है. वे इस सदी के प्रखर कवियों में एक रहे हैं. मोंताले ने काव्य लेखन के साथ-साथ काव्य चिंतन भी किया. वे कविता को मानवीय स्थितियों का चश्मदीद मानते थे—उनकी नजर में कविता ऐतिहासिक बनने की कोशिश न करे तभी उसकी निर्मिति सही मानी जाएगी. उनकी चिंता यह भी रही कि आज मनुष्य की दिलचस्पी मनुष्यता में कम हो गई है. इस मुद्दे पर वे निरंतर सोचते रहते थे. उनके गद्य में यह चिंता बार-बार मुखर हुई है.

मोंताले की एक चर्चित कृति 'इट डिपेंडेंस-ए पोएट्स 'नोटबुक' रही है. अपनी इस कृति में उन्होंने डायरी शैली में काफी कुछ लिखा है. इस डायरी में एक जगह वह लिखते हैं—'नया मनुष्य बहुत बड़ा पैदा हुआ है. वह नयी दुनिया को झेल नहीं सकता. हम बहुत तेजी से दौड़ते हैं, मगर फिर भी कहीं पहुंचते नहीं.' मोंताले की यह धारणा अति सूचना केंद्रित समाज के भविष्य को लेकर बनी है. वे यह मानते हैं कि आज के मनुष्य की चिंता कोई मंजिल नहीं है. बहुत से आविष्कारों ने उसे मंजिलों से घेर रखा है ऐसे में वह तृप्त स्थितियों से दो-चार है. उसे जब अतृप्ति हो तब तो उसकी सक्रियता सार्थक बने. उसकी निरर्थक सक्रियता ने उसे कहीं का नहीं छोड़ा है. मोंताले की नजर में आज के मनुष्य की दौड़ का मतलब एकदम अलग है. वे कहते हैं—तेजी से दौड़ने का मतलब है अपनी स्वयं की संस्कृति के बोझ से मुक्त होना, पुरानी दुनिया से अपने संबंध तोड़ना.' जिसे मोंताले स्वयं की संस्कृति कह रहे हैं—'वह मनुष्य की भीतरी परिष्कृत अवस्थाएं हैं. इनके बारे में उपेक्षा भाव और किसी नये अज्ञात लक्ष्य की ओर लगाई जानेवाली दौड़ उचित नहीं ही सकती.' पुरानी दुनिया से मोंताले का आशय परंपरागत संस्कृति से जुड़ाव रखने का है. कोई भी अनावश्यक विकासवादी दाँड़ परंपरा से संबंध विच्छेद करा सकती है.

बीत रही सदी में सामाजिक प्रतिबद्धता का सवाल कई बार मुखरित किया

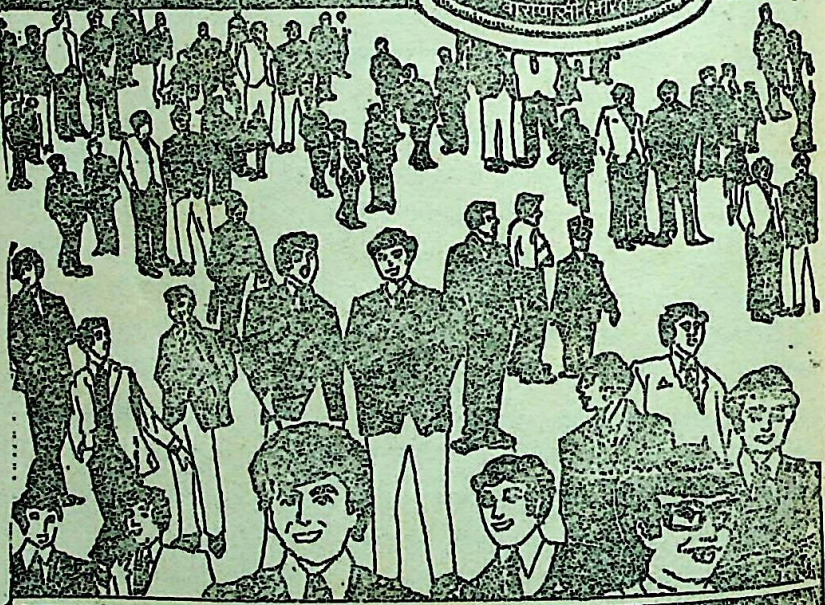
मशाल

जर्दी

सुगंध
बेहतरीन
स्वाद
बेमिसाल



नं.
77
377



मलिक केमिकल वर्क्स • वाराणसी • भारत •



गया. मोंताले की धारणा इस संदर्भ में बिल्कुल अलग रही। वे मानते थे कि कोई कवि किसी राजनीतिक विचारधारा में आस्था रख सकता है, मगर वह इसी कारण राजनीतिक कविताएं लिखने के लिए बाध्य नहीं है। इनका यह भी मानना था कि सामाजिक प्रतिबद्धता कभी भी संकीर्ण अर्थों में घटित नहीं होती। उनको यह सोच इस मायने में भी महत्त्वपूर्ण है कि वे सामाजिक प्रतिबद्धता को एक व्यापक अर्थ में रखना चाहते थे। वे लिखते हैं—‘अब ऐसे कवि नहीं हैं जो इस अर्थ में अपनी बात कहते हों कि उनकी पहुंच ‘जनता’ नाम के किसी अमूर्त प्रत्यय तक है,’ यानी छद्म जनपक्षधरता की उन्हें पहचान थी। मोंताले को इटली के फासीवादी शासन से हमेशा असहमत देखा गया। वे दुनिया में बढ़ते औद्योगीकरण को भी पहचान रहे थे। कविता के बारे में उन्होंने बहुत पहले यह मान लिया था कि कविता उपन्यास की तरह एक औद्योगिक उत्पाद बनती जा रही है। इसलिए बाजार की मांग-पूर्ति के संबंधों का असर उस पर पड़ेगा, ऐसा अनुमान उन्होंने लगा लिया था। बाजार की चपेट में साहित्य के आने की शंका उनके मन में रही और काव्यचिंतन में उन्होंने इसे बार-बार प्रकट किया।

कविता के संबंध में मोंताले का एक प्रसिद्ध वाक्य है—‘कोई कविता अपने समय में प्रचलित प्रतिबद्धता के अर्थ को पूरा करे या न करे पर वह अपने समय का प्रत्युत्तर जरूर होती है।’ कविता की इस शक्ति को वह काफी अरसे से पहचानते थे। मोंताले एक ऑपेरा गायक बनना चाहते थे, मगर उन्हें कवि बनना था। सन् २७ में वे पलोरेंस में रहे, जहां उन्होंने एक प्रकाशक के लिए काम किया। बाद में मोंताले ने पत्रकारिता का पेशा अपना लिया—१९४६ में वे कलाकार के रूप में भी सक्रिय हुए और इस क्षेत्र में भी अपनी पहचान बनाई। मोंताले ने दुनिया के कई देशों की यात्राएं भी कीं। वे इटली में सिनेटर भी रहे। मोंताले की कविताओं का अनुवाद विश्व की कई भाषाओं में हुआ है। काव्य शिल्प के गद्य के निकट पहुंचने से लेकर उनका वक्तव्य विलक्षण है—‘कविता और गद्य की सीमा रेखाएं एक दूसरे के बहुत निकट आ गई हैं। कविता कई बार एक चाक्षुष भ्रम लगती है।’ मोंताले जिसे चाक्षुष भ्रम कह रहे हैं—उसे आज की भारती कविता में भी घटित होते देखा जा सकता है। मोंताले ने इसी क्रम में एक भविष्यवाणी भी की है—‘कविता हमेशा गद्य से जन्मी है और वह उसी में दोबारा लौट जाना चाहती है।’

क्या यह भविष्यवाणी सच होनेवाली है ? —बी. २/२०१ ए, भदौनी, वाराणसी

कमल गुप्त द्वारा, कहानीकार प्रकाशन के लिए, कहानीकार मुद्रण संस्थान, के. ३०/३७ अरविंद कुशोर (निकट भैरवनाथ) वाराणसी से संपादित, मुद्रित एवं प्रकाशित

सही फोटो के
लिए
सही सामानों
का
होना जरूरी
है
और
सही फोटो के
सही सामानों
के
लिए
आप यहां आमंत्रित
हैं
●

फोटो डील्स

जगतगंज, वाराणसी

फोन-प्रतिष्ठान : ५११११५

निवास : ३११६६८

ॐ ऐं ह्रीं ॐ

—इफितखार आरिफ़

मेरे खुदा मुझे इतना तो मोतबर¹ कर दे
 मैं जिस मकान में रहता हूँ उसको घर कर दे.
 ये रोशनी के तआकुब² में भागता हुआ दिन
 जो थक गया है तो अब उसको मुस्तसर³ कर दे.
 मैं जिंदगी की दुआ मांगने लगा हूँ बहुत
 जो हो सके तो दुआओं को बे-असर कर दे.
 सितारा-ए-सहरी⁴ डूबने को आया है
 जरा कोई मेरे सूरज को बा-खबर⁵ कर दे.
 कबीला-वार कमानें कड़कने वाली है
 मेरे लहू की गवाही मुझे निडर कर दे.
 मैं अपने खाव से कट कर जियूँ तो मेरा खुदा
 उजाड़ दे मेरी मिट्टी को दर-ब-दर कर दे.
 मेरी जमीन मेरा आखिरी हवाला है
 सो मैं रहूँ न रहूँ इसको बार-बार कर दे.



समंदर इस कदर शोरीदा-सर⁶ क्यों लग रहा है
 किनारे पर भी हमको इतना डर क्यों लग रहा है.
 वो जिसकी जुअंते-परवाज⁷ के चर्चे बहुत थे
 वही ताइर⁸ हमें बे-बालो-पर⁹ क्यों लग रहा है.
 वो जिसके नाम सेरोशन थे मुस्तकबिल¹⁰ के सब खाव
 वही चेहरा हमें ना-मोतबर¹¹ क्यों लग रहा है.
 बहारें जिसकी शाखों से गवाही मांगती थीं
 वहीं मौसम हमें अब बे-समर क्यों लग रहा है.
 दरो-दीवार इतना अजनबी क्यों लग रहा है.
 खुद अपने घर में आखिर इतना डर क्यों लग रहा है.

1. विश्वस्त 2. पीछा करना 3. संक्षिप्त 4. प्रातः कालीन तारा 5. सचेत
 6. दीवाना 7. उड़ने का साहस 8. पक्षी 9. बिना वालों और पंखोंवाला, 10. भविष्य
 11. भविष्यसनीय.

डा. कमल गुप्त द्वारा प्रस्तुत

लघुकहानी स्थापना का पहला कदम

तेजाब और अन्य लघुकहानियाँ

संग्रह का आकर्षण ०४० प्रभावोत्पादक एवं मार्मिक लघुकहानियाँ

● लघुकहानी : इतिहास, चिंतन, स्थापना ● लघुकहानी : संदर्भ

संभावना और मूल्यांकन ● लघुकहानी स्थापना : कुछ प्रतिक्रियाएं

● लेखक ने लघुकहानी को परिभाषित करते हुए लिखा है—

“लघुकहानी वर्णन का विस्तार न होकर एक परिभाषा है—परिभाषा की तरह ही वह चुस्त-दुरुस्त और नयी-तुली होती है और अपने सीमित कलेवर में मन की गहराइयों को छू जाती है—एक छाप छोड़ जाती है। उसका संबंध समग्रतः जीवन के विस्तार से होने के बदले, विस्तार को नापते हुए मील के पत्थरों से है; और यह स्पष्ट है कि हर मील का पत्थर दूरी के बीच एक पारिभाषिक घटना है जो हमें पैमाइश के संकेत देती है—संपूर्ण विस्तार के अस्तित्व का पारिभाषिक बोध कराती है लघुकहानी जीवन के अस्तित्व का कुछ ऐसा ही पारिभाषिक बोध है जो घटनाओं की स्वतंत्र इकाइयों के रूप में प्रकट होकर संपूर्ण जीवन के विस्तार की अनुभूति देती है।

रंग सभी हो सकते हैं पर आवश्यक नहीं कि एक बड़ा कैनवास ही लिया जाए कैनवास के कटपीस पर भी चित्र खींचा जा सकता है जिसका प्रभाव दिल और दिसाग पर क्षणिक न होकर स्थायी हो क्षणिक प्रभाव तो लघुकथा, चुटकुला, लतीफा छोड़ता है जो कलेवर में तो लघुकहानी-सा दोखता है पर अभिव्यक्ति स्तर पर सर्वथा भिन्न है।”

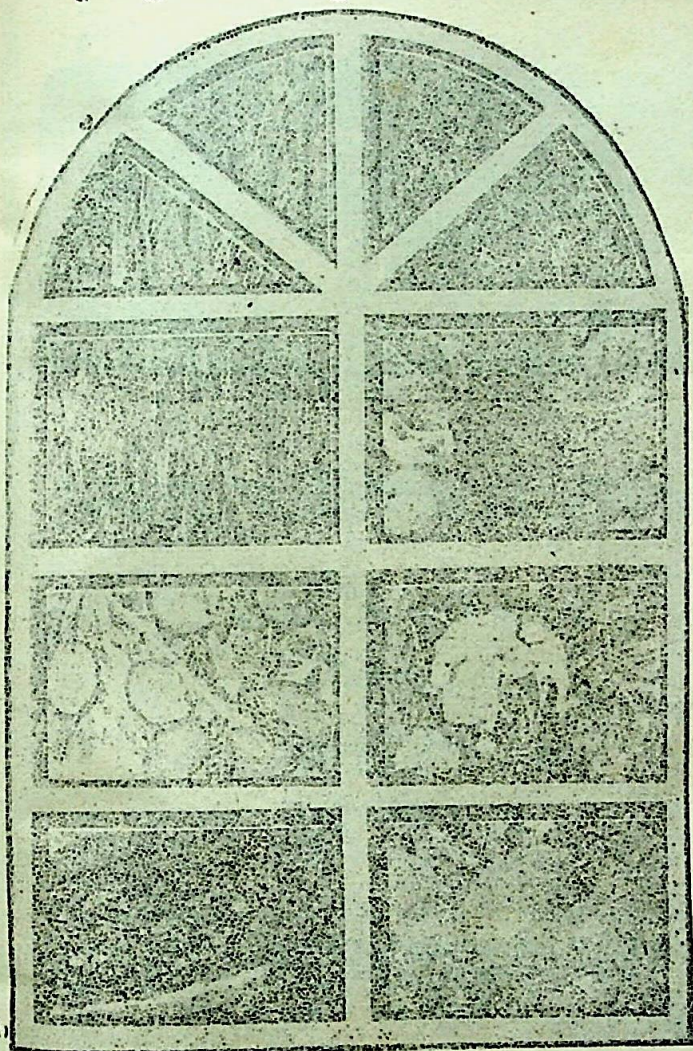
● स्व० ठाकुर प्रसाद सिंह के शब्दों में—

“लघुकहानी कहानी का संक्षिप्तीकरण नहीं है। उसकी प्रजाति एक हो सकती है पर पहचान अलग होगी। शेर और बिल्ली की प्रजाति एक कही जाएगी पर बिल्ली और शेर में अंतर भी बहुत होता है। तितली बस कीड़ों जैसी उपजती है पर जितनी देर वह फूलों पर थिरकती है, उतनी देर वह तितली होती है। उसका मोहक व्यक्तित्व अपने परिवेश में पूर्ण व्यक्तित्व बनकर उभरता है; इसे न तो पक्षियों का संक्षिप्त संस्करण कहा जा सकता है, न घरती पर रंगनेवाले कीड़ों का वंशधर। लघुकहानी को स्वतंत्र विधा के रूप में विश्वास के साथ रचा जाना चाहिए तभी हम एक स्वस्थ परंपरा की स्थापना कर सकेंगे”

प्रकाशक : जनवाणी प्रकाशन

३०/२२-ए. गली नं. ९ विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

हरी भरी फसलों को रखता पैदावार बढ़ाता
भूमि सुरक्षा फसल सुरक्षा खैरा पीला रोग भगाता



MULTISAL (DUST)
HIGH POWER ZINC BIO TEACH FERTILIZER
BOREX-60 ● UARDHAN

बजरंग केमिकल्स

प्लांट हारमोन्स तथा अन्य एग्रो केमिकल्स के निर्माता एवं मांगपूर्तिकर्ता—
कार्यालय—बी. ५/११ प्रथम तल, मिट हाउस कालोनी (ताज होटल के सामने)
नदेसर, वाराणसी. फोन—५११५८१
फैक्ट्री—महगांव, गरथमा (सिंधोरा रोड) वाराणसी—२२१२०८ फोन—६२५२५८

हिंडाल्को इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड

भारत के अग्रणी अल्युमिनियम उत्पादक

- प्राइमरी मेटल के उत्पादक
- प्रापर्जी रॉड्स
- रोल्ड प्रॉडक्ट्स
- एक्सट्रूजंस

पोस्ट : रेणुकूट-२३१२१७

जनपद : सोनभद्र (उत्तर प्रदेश)

फोन : पिपरी ०५४४६-५२०७६

फैक्स : ०५४४६-५२१०७, ५२४२७

ग्राम : हिंडाल्को, रेणुकूट

FUJI IMAGE SERVICE

30 MIN. SPL. SERVICE

Give

The

ROLL

Get

The

GOAL



UNIQUE COLOUR LAB

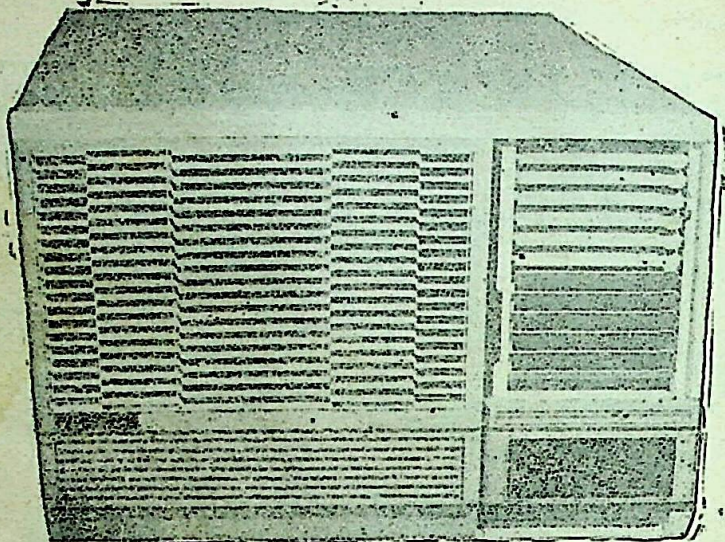
यूनीक कलर लैब

KRISHI EXPORT PLAZA

SIGRA, VARANASI (U.P.)

Phone : 363111





पायनियर एयरकंडीशनर

१.५ टन का

लै जाइए

आसान किस्तों में

नियम और

शर्तों के अनुरूप

विशेष जानकारी के लिए संपर्क करें

PIONEER AIRCONDITIONER

B 38/47-K Mahmoorgang, Varanasi

Phones : 362926, 363926

362816, 363816

‘ज्ञान प्रकाश’

द्वारा

वाराणसी में

पुस्तक क्रांति के लिए

एक मजबूत पहल

- दशहरा के अवसर पर
हर दूसरे वर्ष बृहत पुस्तक मेले का
आयोजन
- देश भर से ख्यातिप्राप्त
प्रकाशन संस्थानों का जमघट
- ५०० से भी अधिक
प्रकाशकों की महत्वपूर्ण पुस्तकों की
सप्ताह व्यापी प्रदर्शनी
- सेंट्रल हिंदू स्कूल, वाराणसी
के विशाल परिसर में
आयोजित करने का निर्णय

श्री शांतिलाल जैन

(अध्यक्ष-जैन श्वेतांबर तेरा समाज)

३० सहांवीर बिहार

भगवान नगर कालोनी

रथयात्रा, वाराणसी के

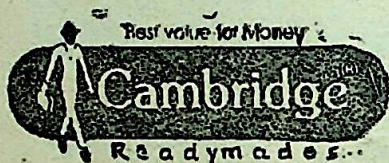
सौजन्य से

फोन-३५८६५५, ३५८६५६

३६३८८२, ३६३७७६

३९ वर्षों से
 रेडीमेड गारमेंट्स के
 निर्माण में संलग्न
 उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल
 वाराणसी में
 प्रथम एक्सक्लूसिव शो-रूम—

BEST VALUE FOR MONEY



शर्ट्स, डी-शर्ट्स
 ट्राउजर्स, जीन्स
 पैजामा-कुर्ता तथा
 अन्य पुरुष परिधान

Sahil Creation

मंडल प्लाजा, मलदहिया, वाराणसी

फोन : ५११२४०, ५११६२०

शुक्लाज

पावर विजन प्रस्तुत करते हैं.....

● मात्र रु० १५०० देकर ४०० बाँट का MOSFET तकनीक पर आधारित STAR VISION STELLAR इनवर्टर EXIDE बैटरी सहित लगवाइए, और

● साथ में पाइए काठमांडू की मुफ्त सैर का मौका !

● स्कीम—

—यह स्कीम कुल सात माह की होगी.

—प्रतिमाह रु० १५०० की किस्त देनी होगी.

—स्कीम में कुल ५० सदस्य होंगे.

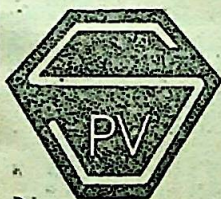
—२५ सदस्यों को इनवर्टर प्रथम माह में दिया जाएगा और बाकी २५ सदस्य दूसरे माह में इनवर्टर प्राप्त कर सकेंगे.

—काठमांडू की यात्रा आठवें महीने में वस द्वारा मुफ्त कराई जाएगी. रहने और भोजन की व्यवस्था स्वयं करनी होगी.

—केवल वही सदस्य जिनकी सभी किस्त समय पर जमा रहेगी, काठमांडू पर जाने योग्य माने जाएंगे.

—वार्यरिंग चार्ज अलग से देय होगा.

—काठमांडू की यात्रा न करनेवाले सदस्यों के लिए किसी छूट का प्रावधान नहीं है.

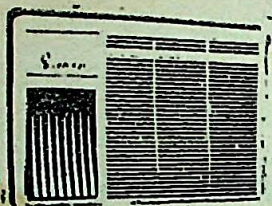


शुक्लाज

पावर विजन

● प्रधान कार्यालय : अशोक कांप्लेक्स, महमूरगंज, वाराणसी
दूरभाष : ०५४२-३६०३९८, ३६२४११

● शाखा कार्यालय : ९९ बी०, अशोक नगर, इलाहाबाद
दूरभाष : ०५३२-४२२००४, मोबाइल : ९८३६०५६४११



एयरकंडीशनर

सिर्फ २२०० रुपये में

- यह एक लकी ड्रा स्कीम है.
- इसमें ५० (पचास) सदस्यों का ग्रुप होगा.
- आपको रु० २२००) प्रतिमाह की दर से १० महीने तक किस्त जमा करनी है.
- प्रतिमाह एक लकी ड्रा निकाला जाएगा.
- यदि आप भाग्यशाली हुए तो आपको अगले महीनों की किस्त नहीं देनी होगी.
- प्रत्येक सदस्य को 1.5 TON ICEBERG Airconditioner मिलेगा.

iceberg

AIR CONDITIONER

a challenge to heat

SHUKLA AIRCONDITIONER

अशोक कम्प्लेक्स, महमूरगंज, वाराणसी

फोन : ०५४२-३६०३९८, ३६२४११

शाखा : ९९ बी. अशोक नगर, इलाहाबाद

फोन : ०५३२-४२२००४, मोबाइल : ९८३९०५६४११

‘गंगा माता सेवा मंच’

का आह्वान

निर्मल गंगा का अभियान
देगा सबको जीवन दान.

सुंदर औ स्वच्छ होकर घाट
काशी के होंगे गौरव ठाट.

आओ मिलकर बीड़ा उठाएं
मां गंगा की पीड़ा मिटाएं.

जो दे अमृत-सा जल जीवन
करें आरती उसका वंदन.

श्री शान्ति लाल जैन

(अध्यक्ष-जैन स्वैतांबर तेरा पंत समाज)

३० महावीर विहार

भगवान नगर काछोनी

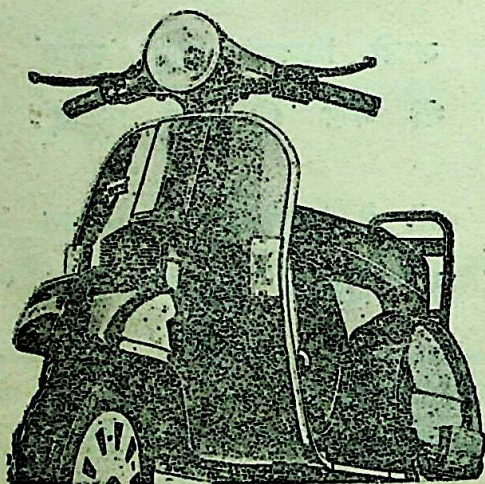
रथयात्रा. वाराणसी के

सौजन्य से

फोन : ३५८६५५, ३५८६५६

३६३८८२, ३६३७७६

सबसे तेज़ रफ़्तार एन्टी-स्किड ब्रेक मज़बूत बाँड़ी

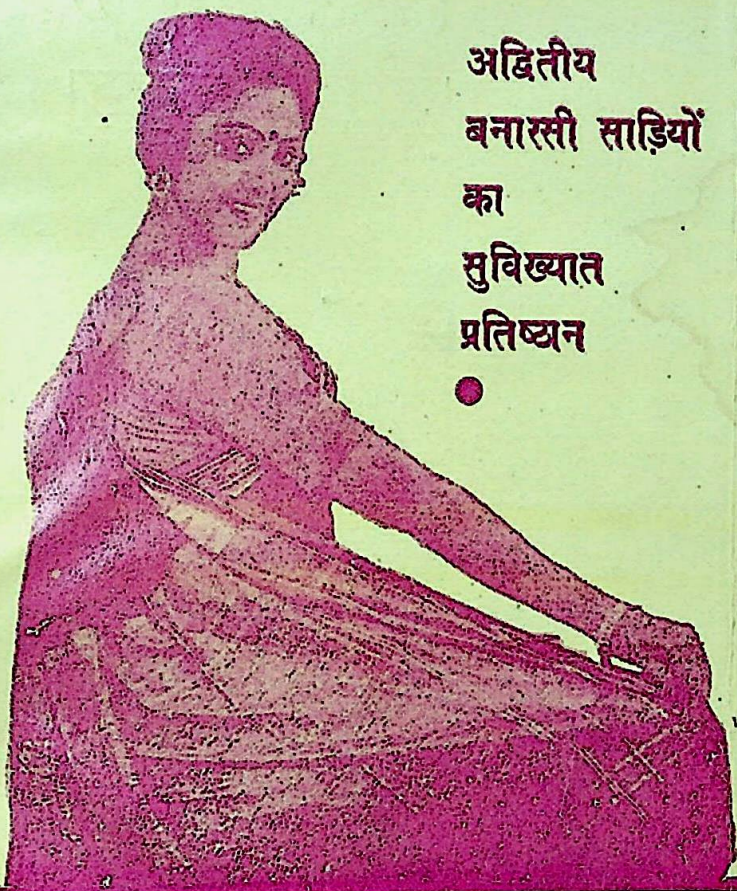


मेसर्स समर्थ आटो मोबाइल्स

२-गुलाब बाग, सिगरा,

वाराणसी-२२१००२

फोन-प्रतिष्ठान : ३५६७७३, ३५०८०८



अद्वितीय
बनारसी साड़ियों
का
सुविख्यात
प्रतिष्ठान



दाम और क्वालिटी में विश्वसनीय

मे. भैरव प्रसाद एंड कंपनी

आदृत प्रतिष्ठान -

के. ३७/१३२, गोलघर (निकट टाउन रेलवे बुकिंग आफिस),
वाराणसी - २२१ ००१ • फोन : ३३३२८६, ३३२६६९



Heritage

HOSPITALS

DIAGNOSTICS • PATIENT CARE • RESEARCH

Temple of Humanity Service

SPECIALITIES : ♦ CARDIOLOGY ♦ INTERVENTIONAL CARDIOLOGY ♦ GENERAL MEDICINE ♦ NEUROLOGY ♦ NEUROSURGERY ♦ NEPHROLOGY ♦ UROLOGY ♦ GENERAL SURGERY ♦ PLASTIC SURGERY ♦ PAEDIATRICS ♦ PAEDIATRIC SURGERY ♦ ORTHOPAEDICS ♦ GYNAECOLOGY ♦ RESPIRATORY MEDICINE ♦ E.N.T. ♦ ANESTHESIOLOGY ♦ RADIOLOGY ♦ PATHOLOGY ♦ BIO-CHEMISTRY ♦ PHYSIOTHERAPY ♦ BLOOD BANK ♦ M.R.I.



HERITAGE HOSPITALS LTD.

Lanka, Varanasi - 221 005

Ph. # 313977, 313978, 312726, 312728

Fax # 91-542-313979

Regd. Off. : B-4/34, Ashok Vihar-II, Delhi-110052